कादम्बरी गद्य
का
साहित्यिक मूल्याङ्कन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी०फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध-सार

❖ पर्यवेक्षिका ❖
डॉ०(श्रीमती) किश्वर जबीं नसरीन
प्रोफेसर
संस्कृत-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

❖ प्रस्तोत्री ❖
श्रीमती ममता गुप्ता
संस्कृत प्रवक्ता
राजकीय बालिका इन्टर कालेज
फतेहपुर, उ0प्र0

संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद
2004

शोध–प्रबन्ध सार

इस दृश्यमान प्रकृत विराट जगत् में मानव ही जगन्नियन्ता जगदीश्वर की वह सर्वश्रेष्ठ लोकोत्तर कलाकृति है जिसे उस अहेतु की कृपालु सत्ता का स्पष्ट एवं मुखर वाक् तत्त्व का दुर्लभ एवं अनमोल वर मिला है। इसी क्रमोपक्रम में सृष्टि के आदि में ही देवदुर्लभ मानव–मनीषा–पटल पर अपौरूषेय वेदों का अविर्भाव हुआ। अतः यह नितरां सिद्ध है कि मानव–जाति के पास अद्यावधि जो भी तथा जितनी भी वाङ्मयी न्यास राशि उपलब्ध है उसमें गीर्वाणगीः का स्थान सर्वोपरि है। भाषा की दृष्टि से यह वाङ्मय द्विधा है – वैदिक वाङ्मय, लौकिक वाङ्मय वैदिक वाङ्मय में यजुर्वेद गद्यात्मक है। लौकिक वाङ्मय तो अन्याय विद्याओं यथा गद्य, पद्य, नाटक, कथा, आख्यान–आख्यायिका से परिपूर्ण है। ज्ञान और मनोरञ्जन का जैसा मञ्जुल समन्वय संस्कृत कथा–साहित्य में उपलब्ध होता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इसी परिप्रेक्ष्य में **कादम्बरी** कथा का कथानक रहस्य और रोमाञ्च से परिपूर्ण कथानक अद्भुत है। 'कादम्बरी गद्य का साहित्यिक मूल्याङ्कन' इस अनुसन्धान के विषय में इसके साहित्यिक सभी पक्षों का सुविस्तार से उल्लेख करना प्रमुख उद्देश्य है। अतः अध्ययन की सुविधा के लिए इसको अधोलिखित अध्यायों में विभक्त किया गया है –

विषय - 'कादम्बरी गद्य का साहित्यिक मूल्याङ्कन'

१. प्रथम अध्याय :

'गद्य साहित्य का उद्भव और विकास'

२. द्वितीय अध्याय :

'बाणभट्ट का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व'

३. तृतीय अध्याय :

'कादम्बरी का वस्तु- विन्यास'

४. चतुर्थ अध्याय :

'कादम्बरी के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण'

५. पंचम अध्याय :

'कादम्बरी में प्रकृति-चित्रण'

६. षष्ठ अध्याय :

'कादम्बरी में रस-परिशीलन'

७. सप्तम अध्याय :

'कादम्बरी में प्रयुक्त विविध अलङ्कारों का विवेचन'

८. अष्टम अध्याय :

'शैली -विमर्श'

उपसंहार

शोध–प्रबन्ध का **प्रथम अध्याय** गद्य साहित्य का उद्‌भव एवं विकास रखा गया है। ईसा के पहले की शताब्दियों में गद्य का उपयोग कथाकथन और राजाज्ञाओं के प्रसारण के लिए होता रहा। कथा कहने की परम्परा में ही गद्य को अधिक से अधिक काव्यात्मक बनाकर प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता रहा होगा। प्राचीन काल से गद्य साहित्य का उद्‌भव निम्न रूपों में मिलते हैं– १. **वैदिक गद्य**– इसका प्राचीनतम रूप हमारे कृष्णयजुर्वेद के गद्यात्मक भागों में मिलता है। २. **शिलालेखीय गद्य-** यह रूद्रदामन के गिरनार, प्रयाग के हरिषेण की समुद्रगुप्त की प्रशस्ति में मिलता है। ३. **शास्त्रीय गद्य-** यह यास्क, पतञ्जलि के ग्रन्थों में मिलता है। ४. **वार्तालाप की शैली** – उपनिषदों की

संवादशैली में मिलता है। लौकिक संस्कृत के गद्य को दो भागों में विभक्त किया गया है –

१. **अनलंकृत गद्य शैली** - इसमें बोलचाल और संवादपरक शैली के दर्शन होते हैं। यह पतञ्जलि, शबरस्वामी, शङ्कराचार्य, वाचस्पति मिश्र, जयन्तभट्ट की रचनाओं से प्राप्त होता है।

२. **अलंकृत गद्य शैली** –यह शताब्दियों के प्रयास तथा अभ्यास का परिणाम है। इसमें **कात्यायन, दण्डी, वररुचि** ने आख्यायिकाओं का उल्लेख किया है। इस शैली के पूर्ण विकसित रूप हमें दण्डी, सुबन्धु तथा बाल की कृतियों में मिलता है।

संस्कृत गद्य साहित्य में कथासाहित्य की अपनी पृथक् विशिष्टताएं हैं जो इसी अध्याय का विषय है। कथा साहित्य की उत्पत्ति में कथा का उद्भव इतना प्राचीन है जितना मानव। कथा साहित्य का उद्भव वैदिक काल से मिलता है, भले ही इन्हें कथा की संज्ञा न दी जाये पर इन संवाद सूक्तों में कथा के मूल तत्त्व सुप्तावस्था में अवश्य पाये जाते हैं। **पुरुरवा-उर्वशी, यम-यमी** का उल्लेख आख्यान रूप में है। ब्राह्मण ग्रन्थों में कथा के रूप **शतपथ, ऐतरेय, तैत्तिरीय** में मिलता है। आरण्यक और उपनिषद् , पुराण, रामायण, महाभारत, जातक तथा परवर्ती साहित्य में भी कथाओं का उल्लेख मिलता है। कथा के स्वरूप में प्राचीन काल से अद्यतन कथा कैसे ऋग्वेद के संवाद–सूक्तों से आज परिष्कृत रूप में परिणित हुई इसका वर्णन किया गया है। इसी श्रङ्खला में **बाणभट्ट** ने अपनी रचना **कादम्बरी** को कथा कहा है, जा **वासवदत्ता** और **वृहत्कथा** दोनों का अतिक्रमण करने वाली कथा है। भामह ने अपनी कृति **काव्यालङ्कार** में कथा की

जो विशेषताएं दी हैं वह **कादम्बरी** के लिए उक्ति पूर्ण है। कथा–आख्यायिका का स्वरूप एवं भेदक तत्त्व के अन्तर्गत कथा की परिभाषा और विभिन्न मनीषियों द्वारा दिये गये कथा के लक्षण निर्देश का तथा आख्यायिका से भेद का सविस्तार से वर्णन किया गया है। यूं तो आख्यायिका एवं कथा शब्द समानार्थक से प्रतीत होते हैं किन्तु साहित्य में वे दोनों भिन्न रचना शैली के द्योतक है। काव्य–शास्त्रियों ने विविध रूपों में स्वरूपगत एवं उद्देश्यगत भेद की उद्भावना की है। इस प्रकार कथा और आख्यायिका के विभाजन को लेकर विद्वानों का दो वर्ग सम्मुख आता है –

प्रथम वर्ग जो कथा और आख्यायिका के भेदों को मानते हैं जिसमें **भामह, दण्डी, वामन, रूद्रट, आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, विद्यानाथ** एवं **विश्वनाथ** आदि है। **द्वितीय वर्ग** जो इन दो भेदों के अतिरिक्त भी कई भेदों का उल्लेख करता है। इसमें **अग्निपुराण** और **हेमचन्द्र** हैं। उपर्युक्त रचनाकारों ने अपने कथा और आख्यायिका के विवेचन में कथा के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण के रूप में **बाणभट्ट** की **'कादम्बरी'** तथा आख्यायिका के लिए **'हर्षचरित'** को माना है। कथा और आख्यायिका नामक दो भेदों की चर्चा सर्वप्रथम **'उ[illegible]'**, **'अग्निपुराण'**, रूद्रट–**'काव्यालंकार'**, दण्डी **'काव्यादर्श'** तथा विश्वनाथ के **'साहित्य-दर्पण'** में प्राप्त होती है। इन आचार्यो ने कथा आख्यायिका इन संज्ञाओं के अभिधान के साथ ही इनके भेदक तत्वों का भी प्रतिपादन किया है। इन आचार्यों के कथा और आख्यायिका की परिभाषाओं में कादम्बरी और हर्षचरित कथा और आख्यायिका के रूप में निर्विरोध निर्वाचित होते हैं । इनके विभेद में निम्न निष्कर्ष निकलता है कि कथा में कथानक कविकल्पित एंव आख्यायिका में ऐतिहासिक होता है। कथा में वक्त्र तथ अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग नहीं होता

आख्यायिका में होता है। कथा में कन्याहरण, संग्राम, विप्रलम्भ, सूर्योदय, चन्द्रोदय, आदि विषयों का वर्णन रहता है, पर आख्यायिका में नहीं आदि।

शोध–प्रबन्ध का **द्वितीय अध्याय** बाणभट्ट का व्यक्तित्व एवं कृतित्व के रूप में रखा गया है। इस अध्याय में सरस्वती के वरदपुत्र **'वश्यवाणी कविचक्रवर्ती', बाणभट्ट** के जीवन–वृतान्त उनका हर्ष के दरबार में जाना, राजा हर्ष का उनके विषय में भ्रम एवं उसका निस्तारण एवं बाण की कृतियों का सविस्तार पूर्वक चर्चा है। बाण वात्स्यायन वंश के ब्राह्मण थे उन्होंने अपने इतिवृत्त के विषय में **हर्षचरित** के आरम्भिक दो उच्छ्वासों एवं कादम्बरी के प्रारम्भिक भूमिका के कुछ श्लोकों में वर्णन किया है।

बाणभट्ट का वंशानुक्रम **हर्षचरित** में निम्नलिखित रूप में वर्णित है।
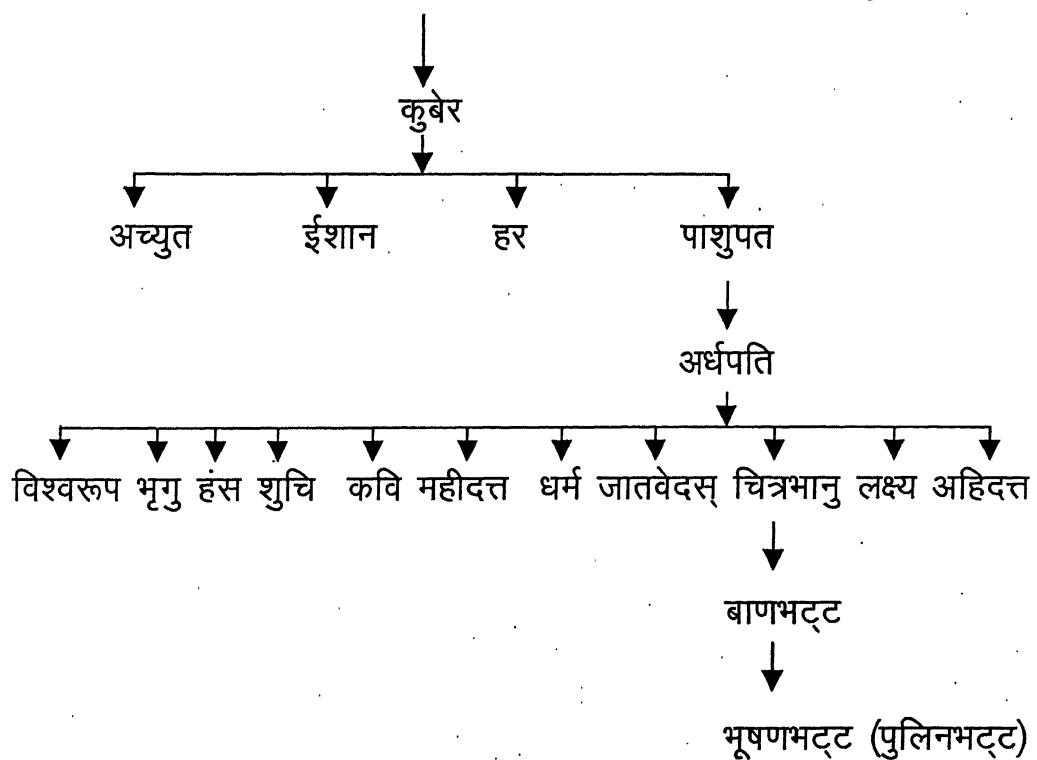
बाणभट्ट के पिता का नाम **चित्रभानु** तथा माता का नाम **राजदेवी** था। जननी का स्वर्गवास बाल्यावस्था में हो जाने पर पिता ने ही उनका पालन–पोषण किया था। बाण यायावर प्रकृति के थे। बाण का व्यक्तित्व चार प्रकार की प्रवृत्तियों से मिलकर बना था। एक तो उनके स्वभाव में रईसी का पुट था, दूसरे वंशोचित विद्या की प्रवृत्ति थी, तीसरे साहित्य और विविध कलाओं से अनुराग था, चौथे मन मे वैदग्ध या छैलपन का पुट था। बाण के स्वभाव की सजीवता, स्नेहता की पटरी हरिश्चन्द्र के साथ बैठती है। बाणभट्ट की मित्र मण्डली काफी विस्तृत थी। इसमें चवालीस व्यक्तियों के नाम हैं।

बाण विवाहित थे। बाण के एक पुत्र था जिसका नाम **भूषण भट्ट** या **पुलिनभट्ट** था। **डॉ० बूलर** का कथन है कि उनके पुत्र का नाम भूषणभट्ट था। बाण की असमय मृत्यु होने पर कादम्बरी कथा अपूर्ण रह गयी थी। उत्तर भाग कादम्बरी का पूरा करने का श्रेय पुलिनभट्ट को है। **'नीरस-तरुरिह विलसति पुरतः'** से ही पुलिन की पात्रता सिद्ध हुई थी। पिता की भांति इनकी भी विलक्षण प्रतिभा और प्रखर पाण्डित्य जैसा व्यक्तित्व था।

जहाँ तक बाणभट्ट के स्थिति काल का सम्बन्ध है वह तो ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वथा निश्चित ही है। बाण ने अपने आश्रयदाता सम्राट **हर्षवर्धन** का जीवन वृत्तान्त अपने आख्यायिका ग्रन्थ हर्षचरित में किया है। हर्षवर्धन एक ऐतिहासिक नृप हैं इनका शासनकाल ६०६–६४६ ई० तक है। बाणभट्ट के समय में विद्वत समाज में परस्पर विरोध नहीं है। बहिः साक्ष्य तथा अन्तः साक्ष्य के आधार पर भी बाण का यही समय निश्चित होता है। सर्वप्रथम बहिःसाक्ष्य में **प्रकाश-वर्ष, वामन, अभिनन्द, धनञ्जय, आनन्दवर्धन, धनपाल, सोद्ऽल, त्रिविकमभट्ट, क्षेमेन्द्र, रूद्रट, भोज** इत्यादि में बाणभट्ट तथा उनकी रचनाओं

कादम्बरी, हर्षचरित का उल्लेख है। ये सब बाणभट्ट के परवर्ती हैं अतः बाण का समय सातवीं शताब्दी का पूर्वाद्ध सिद्ध होता है। इन सब का वर्णन द्वितीय अध्याय में सविस्तार से हुआ है। अन्तःसाक्ष्य में कादम्बरी, हर्षचरित में रामायण, महाभारत, इत्यदि तथा हर्षचरित के प्रारम्भिक पद्य में जिन कवियों तथा कृतियों का उल्लेख किया है। इनमें से कोई भी सातवीं शताब्दी के पश्चात् नहीं हुए हैं। अतः दोनों साक्ष्यों के आधार पर **बाणभट्ट** का समय छठीं या सातवीं शती के मध्य रहा है।

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत ही **बाण** और **मयूर** विषयक वर्णन है। इसमें अनेक ग्रन्थों और विद्वतजनों के मत प्रस्तुत किये गये हैं। किंवदन्तियों के अनुसार बाण मयूर के साले थे। किसी बात पर कुपित होकर बाण ने मयूर को कोढ़ी हो जाने का शाप दे दिया। मयूर ने इससे मुक्ति के लिए मयूर–शतक या सूर्यशतक की रचना की।

द्वितीय अध्याय में ही बाणभट्ट की कृतियों एवं उनके टीकाकारो तथा कथानकों का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। बाण की प्रथमकृति हर्षचरित है। अन्य रचनाएं **कादम्बरी, चण्डीशतक, पार्वतीपरिणय, ॣकुटताडितक** तथा पद्य कादम्बरी है। **मुकुट ताडितक** इस नाटक का संकेत नलचम्पू के टीकाकार **चण्डायाल** और **गुणविनय** के व्याख्या में इसका एक श्लोक उद्धृत है पर यह रचना सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। इसी प्रकार **पद्य कादम्बरी** के विषय में भी मत प्रस्तुत किये गये हैं।

तृतीय अध्याय में कादम्बरी के वस्तु विन्यास के अन्तर्गत कादम्बरी का कथानक, पुलिनभट्ट द्वारा रचित उत्तरभाग, कादम्बरी कथा का मूलस्त्रोत एवं कथा सरित्सागर का कथानक दिया गया है।

कथानक दृष्टि से कादम्बरी का संस्थान उस वसुधान कोश के समान है जिसमें ढ़क्कन के भीतर ढ़क्कन खुलता हुआ पद–पद पर नया रूप, नया विधान अविष्कृत करता है। यहाँ पात्रों के चरित्र एक जीवन में नहीं तीन–तीन जीवन पर्यन्त हमारे समक्ष आते हैं। इस जन्म में जिसे हम शूद्रक के रूप में देखते हैं वही पूर्व जन्म में चन्द्रापीड था और चन्द्रापीड के रूप में भी शापवश चन्द्रमा ने अवतार लिया था। कादम्बरी के कथानक को हृदयगम करने के लिए निम्नलिखित दो समीकरणों का स्मरण रखना आवश्यक है–

१. चन्द्रमा = २. राजकुमार चन्द्रापीड = ३. राजाशूद्रक

१. ऋषिकुमार पुण्डरीक = २. मंत्रीपुत्र वैशम्पायन = ३. वैशम्पायन तोता

बाणभट्ट द्वारा रचित कादम्बरी का पूर्वाद्ध भाग शूद्रक नामक अत्यधिक प्रतापी राजा के वर्णन से प्रारम्भ होकर पत्रलेखा द्वारा कादम्बरी का सन्देश चन्द्रापीड के प्रति लाने से समाप्त हो जाता है। बाण तनय द्वारा रचित उत्तरार्द्ध भाग में चन्द्रापीड द्वारा कादम्बरी की अत्यधिक प्रवृद्ध काम–जनित पीड़ा को दूर करने का उपाय करने के विचार से प्रारम्भ होकर, कादम्बरी का चन्द्रापीड के साथ और महाश्वेता का पुण्डी के साथ शुभ–विवाह सकुशल सम्पन्न होता है। इस प्रकार सुखान्त कथा की समाप्ति होती है। इसका इसी अध्याय में सविस्तार पूर्वक वर्णन है।

कादम्बरी कथा मूलतः कल्पना प्रसूत एवं मौलिक है तथापि यह पूर्णरूपेण बाणभट्ट की कल्पना नहीं कही जा सकती है, क्योंकि कादम्बरी का आधार या प्रेरणा स्त्रोत **वृहत्कथा** का **'मकरन्दि कोपाख्यान'** है। सम्प्रति बृहत्कथा मूलरूप में उपलब्ध नहीं है। इसके दो रूपान्तर **सोमदेव प्रणीत 'कथासरित्सागर'** तथा **क्षेमेनद्रकृत 'वृहत्कथा मञ्जरी'** मिलते हैं। इसमें राजा सुमनस् की कथा ही रूपान्तरित होकर कादम्बरी की कथा है। इस प्रकार **कथा-सरित्सागर** की कथा तथा **कादम्बरी** की .कथा का तुलनात्मक विवेचन करने पर हम प्राप्त करते हैं कि कवि बाण ने काव्य सौन्दर्य की समुज्ज्वल प्रभा से अपनी कथा को अलंकरण किया है। उन्होंने कथा सरित्सागर की कथा के विभिन्न पटलों को काव्यत्व का परिवेश पहनाकर राजसी ठाट–बाट से अलंकृत करके मानवीय भावों का प्रकृति के उदान्त चित्रों का चित्रण प्रस्तुत किया है। कथासहित्सागर में दो जन्मों की योजना हुई है, जबकि कादम्बरी में तीन जन्मों की कथा निबद्ध की गयी है। बाण ने कथासरित्सागर से पात्रों की संख्या में वृद्धि करके पात्रों के सभी नामों को परिवर्तित कर दिया और नवनवोन्मेष शालिनी प्रतिभा का परिचय प्रस्तुत किया है।

चतुर्थ अध्याय में कादम्बरी के प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण किया गया है। कादम्बरी के पात्र कुछ दूसरी ही तरह के परिलक्षित होते हैं। वे केवल मर्त्यलोक ही नहीं चन्द्रलोक और गन्धर्व लोक में भी भ्रमण करने वाले दिव्यपात्र हैं। पात्रों की रूपरेखा उन्होंने **गुणाढ्य** की **बृहत्कथा** से ही ग्रहण की है। किन्तु अपनी कल्पना से उनकी संख्या काफी बढ़ा दी है, दिव्य होते हुए भी उनमें मानव हृदय की धड़कन स्पष्ट सुनाई पड़ती है। **कादम्बरी** के सभी पात्र सजीव हैं। बाण ने अपने पात्रों के माध्यम से प्रेमतत्व की गहनता का परिचय दिया है।

उनके द्वारा प्रतिपादित प्रेम उद्दाम और कुल तथा समाज की मर्यादा का विध्वंसक नहीं है, उसमें अश्लीलता की गन्ध नहीं है। कादम्बरी कथा का नायक **चन्द्रापीड** है। जो धीरोदात्त नायक है। इसकी नायिका परमसुन्दरी, सुकोमल प्रकृतिवाली मुग्धा कादम्बरी है। अन्य पात्रों में सौम्य युवक हारीत, प्राचीन भारत के ऋषि जाबालि, उदार राजा तारापीड, आदर्श अमात्य शुकनास, सुकोमल रानी विलासवती, स्नेहयुक्त परन्तु कठोर कपिञ्जल, धवलवर्णा महाश्वेता, वैशम्पायन, कामपीड़ित पुण्डरीक, आर्याछन्द का वक्ता वैशम्पायन शुक, पत्रलेखा इत्यादि है। परिहास, कालिन्दी तथा इन्द्रायुध, इन्द्रायुध अश्व के वर्णन से ही बाण को 'तुरङ्गबाण' की उपाधि प्राप्त हुई। इन सभी का सविस्तार पूर्वक वर्णन इस अध्याय का विषय है।

पञ्चम अध्याय के अन्तर्गत कादम्बरी में प्रकृति–चित्रण के बारे में वर्णन किया गया है। प्रकृति वर्णन के माध्यम से ही कवि की मौलिकता, अन्तःकरण के उद्गार एवम् उसकी कल्पना शक्ति का आभास पाठकों को अवश्य हो जाता है। संस्कृत वाङ्मय के **वाल्मीकि, कालिदास, बाणभट्ट, माघ** आदि ने प्रकृति के माध्यम से मानव को नैतिकता का पाठ पढाया है। बाणभट्ट का प्रकृति–वर्णन साहित्यिक उत्कर्ष को उत्पन्न करने में अतिशय सहायक सिद्ध हो चुका है। बाण प्रकृति के परम प्रेमी थे। अनेक स्थानों का परिभ्रमण करने के कारण वह प्रकृति के रंगीन, मधुर, मृदु, रूद्र आदि विभिन्न स्वरूपों से भली–भॉति परिचित थे। बाण के प्रकृति प्रेम के परिचायक प्रकृति के मनोहर और भयावह दोनों प्रकार के चित्र पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं। इसके पवित्र एवं रमणीय उदाहरण जाबालि आश्रम एवं आच्छोद सरोवर के वर्णन में प्राप्त होते हैं तथा भयानक एवं कठोर वर्णन विन्ध्याटवी के वर्णन में प्राप्त होता है।

बाणभट्ट के प्रकृति चित्रण कालिदास के प्रकृति चित्रणों के समकक्ष नहीं है। इसका मुख्य कारण परिलक्षित होता है बाणभट्ट की अलङ्कार प्रियता। बाण के रमणीय प्रकृति चित्रणों में आलम्बनरूप का ही चित्रण प्राप्त होता है यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि उद्दीपन–चित्रों का भी चित्रण सरस रूप में प्राप्त होता है। जब महाश्वेता स्नानार्थ सरोवर पर जाती है उस समय प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन किया गया है। कवि बाण ने अप्रस्तुत रूप में भी प्रकृति का चित्रण किया है। इस प्रकार के चित्रण में प्रकृति के पदार्थ उपमान–रूप में आते हैं। जिस समय विद्याध्ययन के उपरान्त चन्द्रापीड नगरी में प्रविष्ट होता है, उस समय ललनाएं उसे देखने के लिए दौड़ती हैं । कवि ने इसका बहुत ही सुन्दर वर्णनं किया है। बाणभट्ट का प्रकृति चित्रण सजीव, अलंकृत, विस्तृत और वर्ण्य विषय के अनुकूल शब्दावली से सुसज्जित है। जो बाणभट्टकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति एवं अद्भुत प्रतिभा का परिचायक है।

षष्ठ अध्याय के अन्तर्गत कादम्बरी में रस परिशीलन का वर्णन किया गया है। प्रारम्भ में रस की महत्ता एवं उपयोगिता का वर्णन है।साहित्यकारों ने रस को काव्यात्मा के रूप में स्वीकार किया है। काव्यजगत् में रस शब्द का प्रयोग मुख्यतः श्रृङ्गारादि रस और रस के अन्तर्गत समाविष्ट किये जाने वाले भावादि के लिए किया जाता है। **उपनिषद** में " *'आनन्दो वैरसः'। रसो वैसः।*" आनन्द एवम् रस को पर्याय के रूप में स्वीकार किया गया है। रस परिशीलन के परिप्रेक्ष में विभिन्न विद्वानों **जैसे आचार्य भरत, आचार्य मम्मट, भोजदेव, वेदव्यास, आचार्य विश्वनाथ** के कथनों का सविस्तार पूर्वक वर्णन इस अध्याय में किया गया है। बाणभट्ट की कादम्बरी में विवेचित विभिन्न रसों की परिभाषा एवं उनका कहाँ पर अङ्कन किया गया है इसका सोदाहरण विस्तृत उल्लेख किया

गया है। **कादम्बरी** श्रङ्गाररस – प्रधान रचना है। कादम्बरी मानव–हृदय की मूक प्रणयगाथा है जो कि वेदना तथा करुणा से अनुप्राणित होकर मर्मस्थल का भेदन कर देती है। **डॉ० डे** ने लिखा है – "बाण के रोमांस का मुख्य मूल्य कथा–वर्णन, चरित्र–चित्रण एवं आलंकारिक योजना के उपस्थापन में नहीं है। अपितु कवित्व और रस की अभिव्यञ्जना में है।" **कादम्बरी** के कथानक में श्रृङ्गार के दोनों पक्षों की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। विप्रलम्भ का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। काम की सम्प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता अवस्था का वर्णन किया गया है। चूंकि विप्रलम्भ श्रृङ्गार में मरण का वर्णन निषिद्ध है क्योंकि इससे रस विच्छिन्न हो जाता है। इसलिए इसका वर्णन नहीं किया गया है। **कादम्बरी, चन्द्रापीड** एवं **महाश्वेता, पुण्डरीक** के वियोग की अवस्था का वर्णन विप्रलम्भ श्रृङ्गार का विषय है। हास्य रस के निरुपण में द्रविड धार्मिक के शारीरिक संरचना एवं उसके कार्यों से हास्यरस की उत्पत्ति होती है। कादम्बरी के कथानक में करुण रस का प्रसङ्ग शुक–वृतान्त में आया है। शुक के पिता की मृत्यु, शुक की असहायावस्था, शुक का जलान्वेषण के लिए प्रयास करना इनके द्वारा करुण रस की धारा सतत प्रवाहित की गयी है। **चन्द्रापीड** की दिग्विजय यात्रा वीररस पूर्ण है। शबर–मृगया, शबर–शैन्य के वर्णन में भयानक रस का वर्णन है। **कादम्बरी** में रक्तध्वज वर्णन और चण्डिका वर्णन वीभत्स रस का सुन्दर उदाहरण है। कादम्बरी की कथा ही अद्‌भुत रसमय है। प्रारम्भ में ही शुक का वर्णन आता है वह स्वयं आर्या पढ़ता है। राजा के कौतूहल को दूर करता है कादम्बरी के पात्र तीन–तीन जन्मों में जन्म ग्रहण करते हैं। जो विस्मय और रहस्य से परिपूर्ण हैं। इन्द्रायुध के वर्णन में अद्‌भुत रस का अनोखा वर्णन है। पत्रलेखा इन्द्रायुध घोड़े को लेकर **अच्छोद सरोवर** में कूद पड़ती है।

कपिञ्जल ही शप्त होकर इन्द्रायुध के रूप में अवतीर्ण हुआ था। **महाश्वेता** की तपस्या का प्रभाव अद्‌भुत है। वह वृक्षों के नीचे पात्र लेकर घूमती है तो पात्र फलों से भर जाता है। जाबालि के तपश्चर्या का प्रभाव भी आश्चर्यमय है। शुक का देखकर वे कहते हैं – **'स्वस्यैवाविनयस्य फलमनेनानुभूयते'** वे शुक के पूर्वजन्म की कथा बतातें हैं। **कादम्बरी** का सम्पूर्ण कथानक ही कल्पनाशीलता पर अवलम्बित अद्‌भुत है। महर्षि, तत्त्ववेत्ता, त्रिकालदर्शी जाबालि का वर्णन शान्तरस का मनोरम उदाहरण है। कादम्बरी में रौद्ररस का वर्णन नहीं प्राप्त होता है।

सप्तम अध्याय में कादम्बरी में प्रयुक्त विविध अलङ्कारों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। प्रारम्भ में अलङ्कारों की महत्ता एवं विभिन्न विद्द परिषद् के एतद् विषयक परिभाषाओं का उल्लेख किया गया है। काव्य की शोभावर्धक साधनों पर विचार किया गया है। जैसे स्वभाव से सुन्दर वनिता भी अलङ्कार के बिना मनोहारिणी नहीं होती उसी प्रकार काव्य भी बिना अलङ्कारों के सुशोभित नहीं होता। अलङ्कार काव्यपुरुष के शरीरभूत शब्दार्थ के अलङ्कर्ता हैं – अलङ्कारों-तीत्यलङ्कार : वे शब्द और अर्थ दोनों में रहते हैं। अलङ्कार त्रिप्रकारात्मक हैं –

१. शब्दालङ्कार २. अर्थालङ्कार ३. उभयालङ्कार

ये अलङ्कार भेदों–प्रभेदों के माध्यम से लक्षण ग्रन्थों में समुद्‌धृत है। इस अध्याय में जिन अलङ्कारों का गद्यकार महाकवि बाण ने कादम्बरी में उपयोग किया है तथा साथ ही प्रामाणिक समालोचकों ने जिन अलङ्कारों को दर्शाया है उनका सामान्य लक्षण तथा कहाँ पर प्रयोग हुआ है उसका वर्णन है।

बाणभट्ट ने **कादम्बरी** में अनेक अलङ्कारों का प्रयोग किया है। अलङ्कारों के प्रयोग में वे दक्ष हैं। अलङ्कारों की विच्छित्ति द्वारा वर्णन–प्रक्रिया का एक ढ़ाँचा सामने आता है, जो बाण के अनुभव से पूर्णतः प्रभावित है। अलङ्कारों का सञ्चरण तथा अवस्थान **महाकवि कालिदास** की कृतियों में अत्यन्त स्वाभाविक तथा आह्लादक है। **सुबन्धु 'प्रत्यक्षरश्लेष्मयप्रबन्ध'** के चक्कर में पड़कर रसास्वाद की स्वाभाविक प्रक्रिया के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करते हैं और कृत्रिमता का जाल फैलाते हैं। बाण का मार्ग इन दोनों के मध्य का है वे पहले वस्तु के अवयवों के स्वरूप का वास्तविक चित्र खींचते हैं और फिर अलङ्कारों के ललित विन्यास से उसे अधिक कमनीय बनाते हैं।

बाण के अलङ्कारों के निरूपण से ज्ञात होता है कि बाण स्वभावोक्ति, श्लेष, दीपक और उत्प्रेक्षा, परिसंख्या के प्रयोग को महनीय मानते हैं। कवि का मन **उत्प्रेक्षा** के विन्यास में विशेष रूप से रमता है। जिस प्रकार **'उपमा कालिदासस्य'** यह सूक्ति संस्कृत साहित्य संसद में नितान्त विश्रुत है उसी प्रकार गद्य साहित्य में **'उत्प्रेक्षा बाणभट्टस्य'** इस सूक्ति की कमनीयता सभी समालोचकों ने प्रायः स्वीकार की है। वे उत्प्रेक्षा का प्रयोग इसलिए भी किया करते हैं कि विषयवस्तु की कल्पना जन्य सभी रेखाएं उभर आयें, उसके पार्श्व के सभी पदार्थ दिग्गोचर हो जाएं। बाण ने किसी वस्तु का वर्णन नहीं किया, अपितु प्रत्येक वस्तु का सजीव चित्र उपस्थित कर दिया है। उनके श्लेष मूलक उपमा प्रयोग, विरोधा भास और परिसंख्या के प्रयोगों में क्लिष्टता, दुर्बोधता और बौद्धिक परिश्रम अधिक है। हारीत तथा जाबालि के वर्णन में बाण ने वर्णन के अन्त में विरोधाभास वाली शाब्दी क्रिया उपस्थित की है। उन्हें 'हारीत सोया हुआ

भी जगा' दिखाई देता है। इसीतरह जाबालि के आश्रम के वर्णन में बाण ने परिसंख्या का प्रयोग किया है। जहाँ मलिनता केवल यज्ञ धूमों की थी चरित्र की नहीं– इत्यादि।

कादम्बरी में शब्दालङ्कारों में अनुप्रास, यमक तथा अर्थालङ्कारों उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, ससन्देह, समासोक्ति, निदर्शना, अपनह्युति, अतिशयोक्ति, तुल्ययोगिता, यथासंख्य, विरोधाभास, स्वभावोक्ति, काव्यलिंङ्ग, समुच्चय, अर्थान्तरन्यास, परिकर, व्याजोक्ति, परिसंख्या, स्मरण, भ्रान्तिमान, अर्थापत्ति, संसृष्टि, सङ्कर इत्यादि वर्णित अलङ्कारों का लक्षण (परिभाषा) तथा कादम्बरी में ये अलङ्कार जहाँ–जहाँ परिलक्षित हुए हैं उसका विस्तृत वर्णन सप्तम अध्याय में किया गया है। इस प्रकार अलङ्कारों का समुचित प्रयोग, अपूर्व रमणीयता का संचार करता हुआ अद्भुत छटा बिखेरता है। **पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय** के शब्दों में– 'उनके लम्बे–लम्बे समास यदिगिरि नदी के उद्दाम प्रवाह की भांति हैं, तो उनकी उपमायें इन्द्रधनुष की छाया की भाँति उसे रंगीन बना देती है।'

अष्टम अध्याय में शैली–विमर्श पर विवेचना की गयी है। बाणभट्ट अलकृंत शैली के गद्यकार हैं। लौकिक संस्कृत के साहित्य में अलंकृत शैली में प्रौढ़ता, प्राञ्जलता, आलौकिकता, कमनीयता आदि गुणों का सद्भाव है। इस शैली की प्राचीनता का दिग्दर्शन हमें महाक्षत्रप् **रूद्रदामन** १५० ई० के गिरनार शिलालेख तथा **समुद्रगुप्त की प्रशास्ति** ३५० ई० में होता है, इसकी चरमपरिणति दण्डी, सुबन्धु, बाण की कृतियों में परिलक्षित होता है। इस गद्यशैली तथा **महर्षि पतञ्जलि** की गद्यशैली में आकाश–पाताल का विभेद है। यहाँ विभक्तियों का

स्थान लम्बे–लम्बे समासों ने ले लिया और दस–दस, बारह–बारह शब्दों को एक ही द्वन्द्व में उपनिबद्ध कर दिया गया।

यह एक बड़ी विचित्र विडम्बना है कि संस्कृत में शास्त्रीय अभिव्यक्ति के लिए जहाँ प्रायः पद्य की प्रधानता रही वहाँ आलङ्कारियों ने काव्य की सामान्य परिभाषा में गद्य और पद्य का कोई भेद स्वीकार नहीं किया। किन्तु गद्यकाव्य को विशेषता प्रदान की **"गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति"**। किन्तु इनमें प्रायः गद्य का रूप समास बहुल एवं अलङ्कार प्रधान ही रहा है। संस्कृत वाङ्मय में इन तीनों गद्यकार **दण्डी, सुबन्धु, बाण** के रचनाकाल एक सौ वर्ष से भी कम समय को संस्कृतगद्य काव्य का **'स्वर्णयुग'** कहा जाता है। बाणभट्ट के भाषा–शैली का अध्ययन बिना इन दोनों गद्यकारों दण्डी और सुबन्धु के भाषा–शैली के अधूरा है।

संस्कृत वाङ्मय के आचार्य **दण्डी** का अलङ्कृत संस्कृत गद्य में अप्रतिम स्थान है। **अवन्ति सुन्दरी** के आधार पर इनके जीवन–चरित के विषय में कुछ वर्णन इस प्रकार है **भारवि** के परममित्र **दामोदर** के प्रपौत्र थे। पिता **वीरदत्त व** माता **गौरी** थीं। इनकी कृति–काव्यादर्श, दशकुमार चरित एवं अवन्तिसुन्दरी कथा है।

दण्डी बाण के पूर्व हुए थे या उत्तर इस विषय में विद्वद्मण्डल में मतवैभिन्न है। परदण्डी की भाषा–शैली के अध्ययन से वे बाण से पूर्ववर्ती प्रतीत होते हैं। यदि दण्डी बाण के परवर्ती होते तो उनकी शैली बाण की शैली के समान श्लेष तथा वक्रोक्ति जैसे अलङ्कारों से अवश्य आक्रान्त होती।

दण्डी सरस, सुभग, मनोहर, वैदर्भी गद्य शैली के आचार्य माने जाते हैं। **'दण्डिनः पद लालित्यम्'** जगत् प्रसिद्ध ही है। दण्डी के गद्य में अपनी विशिष्टता है यह सुबन्धु के गद्य के समान न तो **'प्रत्यक्षर-श्लेषमय'** है और न बाण के गद्य की भांति **'सरसस्वरवर्णपद'**।

वासवदत्ता के रचयिता सुबन्धु का समय भविष्य के गर्त में हैं। किन्तु सुबन्धु बाण के पूर्ववर्ती रहेगें क्योंकि बाण में अपने से पूर्ववर्ती सुबन्धु नामक कवि का उल्लेख किया है। बाण का समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है, अतः सुबन्धु कासमय ६००ई० के सन्निकट निश्चित किया जा सकता है।

सुबन्धु गौडी रीति के कवि है। उनको अपने श्लेष गुम्फन की कुशलता पर गर्व है। वे अपने आपको **'प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्ध विन्यास वैदग्ध्यनिधि'** कहते हैं। बाण ने अपनी रचना में श्लेष, विरोध, परिसंख्या के निर्वाह की कला उन्हीं से अपनायी होगी।

बाण ने उस युग की परिस्थिति के अनुसार श्लेषमयी शैली को अपनी रचना की विशेषता बनाया। हर्षचरित की प्रस्तावना में बाण ने अपनी शैली का आदर्श प्रस्तुत करते हुए लिखा है–

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽश्लिष्टः स्फुटोररसः।

विकाटाक्षर बन्धश्च कृत्स्नमेकत्रदुष्करम्।।

– हर्षचरितम्

बाण की रचना में मुक्तक, उत्कलिका प्राय, चूर्णक गद्यशैली प्राप्त होते हैं, बाण पाञ्चालीं रीति के कवि हैं।

विषयानुरूप शब्दावली का प्रयोग बाणभट्ट की अपनी विशिष्टता है जैसे विन्ध्याटवी के जंगलों के वर्णन में विकट शब्दों का प्रयोग तथा वसन्त ऋतु के वर्णन में तदनुरूप सुकुमार वर्णो का विन्यास उनकी भाषा चातुरी का मनोरम परिचय है।

पर भाव प्रधान विषय–वर्णन दीर्घ काय समास पदावली से उतना रूचिकर नहीं हो सकता जितना समास रहित पदावली अर्थात् लघुवाक्यों से भावप्रधान वर्णन की रसाभिव्यक्ति का आस्वाद प्राप्त किया जा सकता है। शुकनाशोपदेश एवं कपिञ्जल की फटकार में इस प्रकार का स्पष्ट वर्णन दृष्टिगोचर होता है।

बाणभट्ट ने प्रत्येक पंक्ति में विशेषण का प्रयोग किया है, एक–एक विशेष्य का उन्होंने अनेक विशेषण दिया है । जैसे – राजा शूद्रक इत्यादि में। बाण की अपनी पृथक विशेषता के कारण ही परवर्ती कवियों जैसे– त्रिविक्रमभट्ट, अभिनन्द आदि की रचनाओं में बाण की ऊँची कल्पनाओं, भावरेखाओं, चिन्तन पद्धतियों, काव्यसौष्ठव की विधाओं आदि का प्रतिबिम्बन परिलक्षित होता है।

अन्ततः शोध–प्रबन्ध का उपसंहार करते हुए अपने शोध यात्रा ये प्राप्त निष्कर्षो का आकलन किया है तथा संस्कृत वाङ्मय में कादम्बरी तथा बाण के योगदान को आज के परिप्रेक्ष में पाठकों का ध्यानाकर्षण सविनम्र आकृष्ट किया गया है।

कादम्बरीकार बाण ज्ञान–विज्ञान की अनेक शाखाओं का तथा पौराणिक, ऐतिहासिक विषय का वृहत् ज्ञान रखते थे। वे प्रकृति के सहचर थे। वे लोकवृत –स्थावर और जङ्गम बहुरूप प्रकृति का साक्षात् अनुभव रखते थे।

अलंकृत शैली के गद्य लेखकों में बाण का स्थान अत्यन्त उच्च है। उनके विषय में दी गयी प्रशस्तियां जैसे **'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्'** तथा **'बाणस्तु पञ्चाननः'** साधूकित ही है। बाण भट्ट अपनी सर्वप्रसिद्ध कालजयी रचना कादम्बरी के लिए युगो–युगों तक अविस्मरणीय रहेंगे। सम्प्रति कादम्बरी में वर्णित प्रेम तत्व की गहनता और लक्ष्मी के अवगुण आज के युवावर्ग के लिए प्रासङ्गिक है। इस दृष्टि से बाण कालिदास के समकक्ष स्थान प्राप्त करते हैं।

बाण ने अपने युगानुरूप समासादि से सम्बलित अलंकृत गद्य काव्य का सृजन किया है। उनमें पाण्डित्य प्रतिभा तथा उत्कृष्ट गद्य एवं पद्य दोनों को लिखने की अद्भुत मेधाशक्ति थी। **'प्रसन्नराघव'** के रचयिता **जयदेव** ने बाण की प्रशंसा में सत्यतः लिखा है –

यस्याश्चौरः चिकुरनिकुरः कर्णपूरो मयूरः।

भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।।

हर्षो हर्षः हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः।

केषां मैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय।।

– प्रसन्नराघव

प्रस्तुत प्रबन्ध का सामपन करने के पूर्व परिशिष्ट में उन सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची को प्रस्तुत किया गया है जिसका मैने अपने कथन की पुष्टि या किसी पक्ष को विशेष स्पष्ट करने हेतु शोध–प्रबन्ध में उल्लेख किया है।

□□□

कादम्बरी गद्य
का
साहित्यिक मूल्याङ्कन
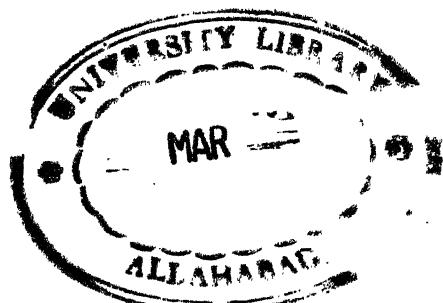
इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी०फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

❖ पर्यवेक्षिका ❖
डॉ०(श्रीमती) किश्वर जबीं नसरीन
प्रोफेसर
संस्कृत - विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

❖ प्रस्तोत्री ❖
श्रीमती ममता गुप्ता
संस्कृत प्रवक्ता
राजकीय बालिका इन्टर कालेज
फतेहपुर, उ०प्र०
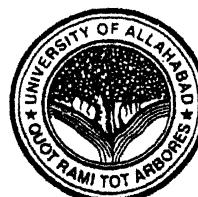
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद
2004

डॉ० श्रीमती किश्वर जबीं नसरीन
प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

११५, दिलकुशा
नया कटरा
इलाहाबाद।
फोन : २६४२६७८

प्रमाण-पत्र

अत्यन्त हर्ष के साथ सूचित कर रही हूँ कि **श्रीमती ममता गुप्ता** ने संस्कृत विषय में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी०फिल्० उपाधि हेतु मेरे निर्देशन में **'कादम्बरी गद्य का साहित्यिक मूल्याङ्कन'** विषय पर अपना शोध–कार्य विश्वविद्यालय के नियमानुसार मेरे सानिध्य में रहकर पूर्ण किया है, यह उनका मौलिक कार्य है। अतः उनके कार्य से पूर्णतया सन्तुष्ट होकर उनकी सफलता की कामना करती हुई परीक्षाणार्थ विश्वविद्यालय में प्रस्तुत करने की अनुज्ञा प्रदान करती हूँ।

K Nasr

डॉ० किश्वर जबीं नसरीन

शोध विषय

'कादम्बरी गद्य का साहित्यिक मूल्याङ्कन'

☆ विषयानुक्रमणिका ☆

□□□

कादम्बरी–गद्य साहित्य का मूल्याङ्कन

पुरोवाक्

इस दृश्यमान प्रकृत विराट जगत् मे मानव ही जगन्नियन्ता जगदीश्वर की वह सर्वश्रेष्ठ लोकोत्तर कलाकृति है जिसे उस अहेतु की कृपालु सत्ता का स्पष्ट एवं मुखर वाक्–तत्त्व का दुर्लभ एवं अनमोल वर मिला है। इसी क्रमोपक्रम में सृष्टि के आदि में ही देवदुर्लभ मानव–मनीषा–पटल पर अपौरुषेय वेदों का आविर्भाव हुआ। अतः नितरां सिद्ध है कि मानव–जाति के पास अद्यावधि जो भी तथा जितनी भी वाङ्मयी न्यास राशि उपलब्ध है उसमें गीर्वाणगीः का स्थान सर्वोपरि है।

गीर्वाण वाङ्मय की अपनी एक मौलिकता है, इसमें किसी साहित्य का अन्धानुकरण नहीं है। ऋषियों, महर्षियों, तपःपूत तपस्वियों, मनीषियों तथा महाकवियों का इसकी श्रीवृद्धि में अभूतपूर्व योगदान है। भाषा की दृष्टि से वाङ्मय द्विधा है – वैदिक वाङ्मय तथा लौकिक वाङ्मय।

वाङ्मयैतिहास में यह सर्वथा सिद्ध प्रसिद्ध ही है कि विश्व में वेद प्राचीनतम ग्रन्थ है। ऋग्वेद पद्यात्मक है। यजुर्वेद गद्यात्मक है। प्राचीनतम गद्य का प्रतिदर्श हमें इसी वेद की तैत्तिरीय–संहिता में चक्षुगत होता है। अर्थर्ववेद का षष्ठ भाग तो गद्यात्मक ही है।

वैदिक वाङ्मय से उतरने के बाद लौकिक वाङ्मय, जो अपने आप में सर्वथा, सर्वविध परिपूर्ण गहन एवं विस्तीर्ण है, की कथा ही निराली है। यह वाङ्मय तो अन्यान्य विधाओं यथा गद्य, पद्य, नाटक, महाकाव्य, कथा,

आख्यान–आख्यायिका तथा लक्षण ग्रन्थों से परिपूर्ण है। आदिकवि वाल्मीकि का रामायण, विशालबुद्धि व्यास के अष्टादश पुराण, पद् शिवालिंगादि तथा आध्यात्म रामायण, नाटकार भास, सौमिल्य, कालिदास, भवभूति, भट्टनारायण आदि के नाटक, महाकवियों के महाकाव्य–रघुवंश, किरातार्जुनीयम्, शिशुपाल बधम्, नैषधीयचरितम्, विक्रमांकदेवंचरित्, जानकीहरण आदि, सुबन्धु, बाण, दण्डी के गद्यकाव्य स्वप्नवासवदत्ता, कादम्बरी, हर्षचरितम्, दशकुमारचरितम्, आदि, गीतकाव्य के क्षेत्र में कालिदास का मेघूदत तथा समस्त दूत–संदेश साहित्य, जयदेव का गीत गोविन्द है।

संस्कृत गद्य वाङ्मय का आविर्भाव वैदिक साहित्य से ही माना जाता है परन्तु प्रारम्भ में गद्य का दर्शन ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् एवं सूत्र, भाष्य टीका आदि के रूप में प्राप्त होता है। तदनन्तर गद्य का स्वाभाविक एवं सरल स्वरूप वृहत्कथा, लोककथा एवं पञ्चतन्त्र, कादम्बरी आदि के रूप में दृष्टिगोचर होता है। काव्य जगत् में मनोरंजन की दृष्टि से समस्त विधाओं में कथा विधा का स्थान सर्वोपरि है। साहित्यकार कथाओं के माध्यम से मनोरञ्जन का पुट देकर अपने अभिप्रेत को पाठकों के मन एवं मस्तिष्क पर जितना स्थायित्व प्रदान कर सकता है उतना अन्य किसी विधा द्वारा नहीं। कथा ही मनुष्य के भाव–जगत् में परिवर्तन लाती है। कथा ही मनुष्य के चित्त का संसार के प्रपञ्च, नित्य के क्लेश व दुःख से दूर हटाकर उसे विशुद्ध आनन्द की ओर अग्रसर करती है। किसी भी भाषा के साहित्य में अपना विशिष्ट कथासाहित्य होता है। कयोंकि कथाओं में वर्णित समाज के चित्र सत्य के अधिक निकट होते हैं। कथा के विषय में पाश्चात्य विद्वान **ला फान्टेन** ने कहा है कि– ''कोरा उपदेश ग्राहय नहीं होता, जब कथा से उसे समबद्ध कर दिया जाता है तो कार्य अपेक्षाकृत

सरल हो जाता है।" हमारे भारतीय कथाओं की विशेषता रही है कि ये गूढ़ या रहस्य से परिपूर्ण बातों को कथा के माध्यम से सरलता से कह देती हैं।

संस्कृत विषय मेरा हाईस्कूल से ही रहा। वाक्देवी की विशेष अनुकम्पा से प्रारम्भ से ही प्रथमश्रेणी में उत्तीर्ण होती रही आज से बहुत पहले ही कालिदास, बाणभट्ट, भवभूति इत्यादि कविरत्नों द्वारा विरचित काव्य ग्रन्थों का अवलोकन करते समय उन कवियों के जीवनवृत्त को जानने की लालसा मन मे प्रादुर्भूत होती रहती थी तथा साथ ही यही जिज्ञासा भी बनी रहती थी कि रघुवंश, कादम्बरी एवं हर्षचरित जैसे ग्रन्थों का साहित्यिक धरातल क्या है ? एवं इन ग्रन्थों में हमारे देश की संस्कृति किस मात्रा तक प्रतिविम्बित हो सकी है। अस्तु एम०ए० (संस्कृत) की परीक्षा उत्तीर्ण करने एवं यू०जी०सी०नेट परीक्षा उत्तीर्ण करने के अनन्तर मनोनुकूल विषय पर चिन्तन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ और जैसा कि मानव प्रकृति स्वभावतः कौतुक तथा विस्मय की ओर आकृष्ट होती है मुझे भी कादम्बरी का कथानक प्रारम्भ से ही आकर्षित करता रहा। इस अभूतपूर्व कृति की लोकप्रियता के कारण ही प्रायेण समस्त विश्वविद्यालयों की बी०ए० तथा एम०ए० एवं शास्त्री कक्षाओं में इसका कुछ न कुछ अंश पाठ्यक्रम में निर्धारित रहता है। बाण ! अपनी रचना–क्षेत्र में स्वतन्त्र एवं स्वयं प्रजापति की तरह है, उनकी कल्पनाशीलता ने एक अद्भुत कथा की रचना की है। व्यास का कथन उनपर अक्षरशः सत्य होता है –

अपारेकाव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथाऽस्मैरोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।।

अतः कादबरी की रहस्य और रोमाञ्च से परिपूर्ण कथानक को ही मैने अपने शोध का विषय बनाने का विचार किया। 'कादम्बरी गद्य का साहित्य

मूल्याङ्कन' यह अनुसन्धान का विषय भी मुझे मनोनुकूल मिला। प्रस्तुत शोध कार्य के निर्देशन के लिए मैं मनीषिणी प्रोफेसर डॉ० किश्वर जबी नसरीन (उ०प्र०राज्यपाल द्वारा सम्मानित पुरस्कार प्राप्त) के सान्निध्य की आकांक्षी हुई। ईश्वर की असीम अनुकम्पा से शोधकार्य प्रारम्भ हुआ। शोधकार्य को पूरा करने में **मल्लिनाथ** के शब्दों – **'नामूलं लिख्यते किंचिद् नानपेक्षितमुच्यते।'** को सार्थक करने का प्रयास किया गया है। शोध प्रबन्ध की पूर्णता का सर्वाधिक श्रेय मेरी शोध निर्देशिका को ही है, जिनके वैदुष्यपूर्ण निर्देशन में ही प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध पूर्ण हो सका। यथा समय उत्साहपूर्वक निर्देशन देना जटिल विषयों का अतिस्नेह पूर्वक समझाना तथा समय–समय पर शोधकार्य को अग्रसर करने की प्रेरणा देती रहना ये इनके मनोमुग्धकारी व्यक्तित्व के विशिष्ट गुण हैं। जिनके कारण शोधकाय्र काल में मेरा उत्साह द्विगुणित होता रहा। यद्यपि मेरा चुनाव प्रवक्ता–संस्कृत, राजकीय बालिका इण्टर कालेज में शोधकार्य के मध्य में ही हो गया पर मैडम के निर्देशन में मुझे कभी भी निराशा का सामना नहीं करना पड़ा। इनके प्रति श्रद्धा से नतमस्तक होने के अतिरिक्त मुझ अकिंचन के पास और है ही क्या ?

परम आदरणीय गुरुवर डॉ० फिरंगी 'जिज्ञासु' प्रवक्ता संस्कृत, हि०इ०का० मुँगरा बादशाहपुर की मैं ह्रदय से आभारी हूँ। उन्होंने संस्कृत विषय की शिक्षा मुझे स्नाातक से ही दी है। उनके प्रति मेरे ह्रदय में जो आदरभाव हैं उसको शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। उन्होंने मुझे अध्ययन के कठिन क्षेत्र में शिक्षा, सहयोग और प्रोत्साहन दिया। उनके आशीर्वाद से ही यह शोध–प्रबन्ध पूर्ण हो सका है।

अपने परमपूज्य दादाजी श्री बंशीलाल जी अवकाश प्राप्त उपप्रधानाचार्य हि०इ०का० एवं दादीजी श्रीमती दुर्गावती की मैं मन और हृदय दोनों से ही कृतज्ञ हूँ। इन्होंने मुझे शैशवावस्था से ही अनवरत अध्ययन का परामर्श और प्रोत्साहन दिया। शोध–प्रबन्ध के पूर्ण होने की सबसे अधिक प्रसन्नता है।

मेरे देवतुल्य पिता श्री कृष्णकुमार गुप्त एवं ममतामयी जननी श्रीमती उर्मिला गुप्ता ने तो मेरे पूरे जीवन को ही एक उज्ज्वल दिशा दी है और आज मैं कुछ बन सकी हूँ वह इनके स्नेह, संरक्षण, त्याग और तप का ही परिणाम है। उन्होंने विकट परिस्थितियों में भी मुझे अध्ययन का सुअवसर प्रदान किया। उनके चरणों में मैं श्रद्धा और भक्ति के साथ शत–शत प्रणति निवेदित करती हूँ।

भाई अमित 'सानन्द' बहन माया, विभा ने समय–समय पर प्रोत्साहन एवं सहयोग किया है। बहन विभा जो छात्रावास में मेरी कक्ष सहयोगी थी, मुझे प्रेरणा और दुरुह परिस्थितियों में सम्बल बँधाती रही उसके सहयोग की जितनी भी प्रशंसा की जाये कम है। चाची, चाचा ने भी सहयोग दिया। मेरे फूफा श्री रामबाबू गुप्त ने उत्साहपूर्ण वचनों का सम्बल प्रदान कर शोधकार्य की आवश्यकता एवं महत्ता का प्रतिपादन करके उत्साहित किया।

मैं यह शोध–प्रबन्ध अपनी देवी जैसी सास स्वर्गीया श्रीमती रामपत्ती देवी को समर्पित करना चाहती हूँ। जिनका प्रेरणामयी व्यक्तित्व हमेशा मुझे उत्साहित करता रहा। पितृतुल्य श्वसुर श्री चन्द्रवासरे गुप्त एवं भगिनी सम ननद श्रीमती लक्ष्मी देवी की मैं अनेकश, धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने विवाहोपरान्त मुझे शोध–प्रबन्ध पूर्ण करने के लिए प्रेरणा, समय और सहयोग दिया।

इस कार्य को पूर्ण करते हुए मैं अपने परमपति श्री शिवगोविन्द गुप्त (सिविल इंजीनियर) के प्रति श्रद्धापूर्वक कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ क्योंकि उन्होंने घर–गृहस्थी के उत्तरदायित्वों से मुझे सर्वथा निश्चिन्त रखा और शोध के लिए सर्वविध सौविध्य प्रदान किया। उनका आत्मीयता पूर्ण संरक्षण, पूर्ण सहयोग एवं प्रोत्साहन मुझे पग–पग पर मिलता रहा। उनसे उऋण होने का तो कदापि प्रश्न ही नहीं ?

मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग की अध्यक्षा डॉ० श्रीमती मृदुला त्रिपाठी समस्त गुरुजनों, विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष एवं समस्त कर्मचारियों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ। तथा प्रत्यक्ष एवं परोक्ष ऐसे सभी लेखकों एवं प्रकाशकां की मैं हृदय से आभारी हूँ। जिन्होंने गत्तव्य तक पहुँचने में मुझे प्रेरणा दी।

अन्त में टंकक श्री सूर्य प्रकाश गुप्ता को हार्दिक धन्यवाद देना चाहती हूँ जिनके अथक परिश्रम के द्वारा शोध–प्रबन्ध विद्वद्जनों के समक्ष प्रस्तुत हुआ।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध त्रुटिरहित पूर्ण करने में विशेष सावधानी की गयी है। परन्तु यदि सुधीजनों को कहीं त्रुटि परिलक्षित होती है तो उसके लिए मैं यही कहना चाहूँगी कि –

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।

हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः।।

अतः मानवीय बुद्धि के कारण यहाँ पर मैनें प्रमाण एवं सिद्धान्त के विरुद्ध यदि कुछ कह दिया हो तो इसके लिए क्षमा प्रार्थिनी हूँ।

ममता गुप्ता
शारदा राधिका
श्रीमती ममता गुप्ता

प्रथम अध्याय

गद्य साहित्य का उद्भव एवं विकास

संस्कृत गद्य साहित्य का उद्भव एवं विकास

जगत् के प्रत्येक भाषा के प्राचीन समय में प्रायशः गद्य का अभाव तथा पद्य का बाहुल्य है। इसका कारण सम्भवतः यह है कि हमारी वार्तालाप की भाषा के गद्यमय होते हुये भी साहित्य में भाषा का प्रायः वह रूप रहता है जिसमें विशेष सौन्दर्य हो और जो स्मरणीय हो। पद्य की भाषा प्रायः लय और ताल में बंधी हुई होती है, जिस गुण के कारण वह सहज ही लोगों को अपनी तरफ आकर्षित कर लेती है तथा उसका स्मरण करना भी स्पृहणीय और सुगम होता है। आदिकाल में या अत्यधिक प्राचीन काल में जब लेखन शैली का विकास नहीं हो पाया था, स्मरणीय रूप का और भी अधिक महत्त्व रहा होगा, क्योंकि उस समय सम्पूर्ण सुन्दर रचनाएं केवल वाणी और स्मृति के माध्यम से ही सुरक्षित रखी जाती थी। कोई कवि अपनी रचना को मौखिक रूप से ही प्रकट करता था और श्रोता वाणी के माध्यम से उसका प्रसार करता था। ईसा के पहले की शताब्दियों में गद्य का उपयोग कथाकथन और राजाज्ञाओं के प्रसारण के लिए होता रहा। कथा कहने की परम्परा में ही गद्य को अधिक से अधिक काव्यात्मक बनाकर प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता रहा होगा। इस प्रकार हमारे वाङ्मय में कथाकथन की परम्परा से ही गद्य के दो रूप विकसित हुए— एक रूप बोल चाल की भाषा के निकट था, तथा जिस प्रकार घर—घर में कहानी सुनायी जाती है, उस शैली में कथा को प्रस्तुत किया गया। दूसरे रूप में गद्य को कल्पना और काव्यात्मक अलङ्कार से मंडित कर प्रस्तुत किया गया। गद्य—काव्य का सर्वप्रथम दर्शन **दण्डी, सुबन्धु** और **बाण** की कृतियों में होता है, वह भी पूर्ण विकसित रूप मे उनके पूर्व के लेखकों तथा रचनाओं का इतिहास

निविड़ अंधकार में छिपा है। कुल मिलाकर इस विषय वस्तु की दृष्टि से प्राचीन काल में गद्य के निम्नलिखित रूप मिलते हैं–

वैदिक गद्य -

भारत वर्ष का प्राचीनतम् साहित्य **ऋग्वेद** के रूप में उपलब्ध होता है और उसमें केवल पद्यात्मक सूक्त है। संस्कृत भाषा का प्राचीनतम गद्य हमको **कृष्ण यजुर्वेद** के गद्यात्मक भागों मे दृष्टिगत होता है। गद्य के भी दो प्रकार थे– एक अनुष्ठानोपयोगी तथा याज्ञिक विधियों का प्रतिपादक तथा दूसरा चिन्तन और ऊहापोह की व्यक्त करने वाला पहले प्रकार का गद्य यजुर्वेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में व दूसरे प्रकार का ब्राह्मणों व उपनिषदों में मिलता है।

शिलालेखीय गद्य –

यह राजाज्ञाओं के प्रसारण के लिये उपादेय था। प्राचीन शिलालेखों में अनेक ऐसे हैं, जो गद्य ही नहीं, काव्य तथा पद्य का भी उत्कृष्ट रूप व्यक्त करते हैं, विशेष रूप से **रूद्र दामन के (१५० ई) के गिरनार** वाले शिलालेख में होते हैं। इस गद्य में प्रौढ़ता, प्राञ्जलता, अलौकिकता, कमनीयता आदि गुणों का सद्भाव है–यथा – *"गद्यपद्यप्रमाणमानोन्मानस्वरगतिवर्णसारसत्त्वादिभिःपरभलक्षण व्यञ्जनैरूपेतकान्तमूर्तिनास्वयमधिगतमहाक्षत्रपनाम्ना नरेन्द्रकन्यास्वयम्बरानेकमान्य प्राप्त दाम्ना महाक्षत्रपेण रूद्रदाम्ना–सेतुसुदर्शनतरं कारितम्।"*

इसके पश्चात् प्रयाग के किले में अवस्थित स्तम्भ पर उद्यङ्कित हरिषेणकृत समुद्रगुप्त की प्रशस्ति (३५० ई०) में अलंकृत गद्य की प्रौढ़ शैली के दर्शन होते हैं।

शास्त्रीय गद्य –

सूत्रात्मकता तथा सार रूप में चिन्तन को व्यक्त करने की क्षमता इस गद्य की विशेषता है। इसके प्राचीन रूप सूत्र ग्रन्थों यास्क (७०० ई०पू० का निरूक्त, पतञ्जलि (१५० ई०पू०) ने अपना महाभाष्य गद्य में लिखा है।

वार्तालाप की शैली या संवादोपयोगी गद्य –

उपनिषदों के गद्य में भी अनेकत्र वार्तालाप या संवाद की शैली मिलती है। आचार्य अपने शिष्यों से जिस तरह बातचीत करते होंगे, उसे उपनिषदों में अनेकत्र उसी प्रकार संगृहीत किया गया है। आगे चलकर नीतिकथा और लोककथाओं से प्रेरित कथारूपों में इस प्रकार के गद्य का अत्यधिक प्रयोग किया गया।

काव्यात्मक गद्य –

उपरोक्त सभी प्रकार के गद्यों का सरस व सौन्दर्यमंडित रूप काव्यात्मक गद्य के रूप में सामने आया और गद्यकाव्य की विधाएं उससे विकसित हुई। आगे चलकर आचार्यों ने गद्यकाव्य की दो विधाओं का निरूपण किया– **कथा** तथा **आख्यायिका।**

लौकिक संस्कृत का गद्य –

इसको दो भागों में विभक्त किया जा सकता है –

१. व्याकरण, नीतिशास्त्र, वैद्यक तथा दर्शन आदि विषयों के लिये प्रयुक्त विवेचनात्मक गद्य जिसके लिए **अनलंकृत शैली** का प्रयोग किया गया है। इसे शास्त्रीय गद्य के नाम से भी जाना जाता है।

२. नाटकों, चम्पूकाव्यों और गद्य काव्यों में प्रयुक्त काव्यात्मक गद्य जो **अलंकृत शैली** में है, इसको साहित्य गद्य भी कहा जाता है।

<u>अनलंकृत गद्य शैली</u> –

लौकिक संस्कृत में अनलंकृत गद्य का प्राचीनतम रूप हमें पतञ्जलि के **महाभाष्य** में प्राप्त होता है। **पतञ्जलि** की भाषा, बोलचाल की तथा शैली संवादापरक है। उनके गद्य की रमणीयता अनुपम है। उदाहरणार्थ –

" ये पुनः कार्या भावा निर्वृत्तौ तावत् तेषांयत्रक्रियते ....

...........तावत्येवार्थमुपादाय शब्दान् प्रयुञ्जते।" – पश्पशाह्निक

शबरस्वामी की गद्यशैली सीधी सादी तथा रोचकता से प्रेरित है :–

"इच्छयात्मानमुपलभामहे । कथामिति ? उपलब्धपूर्वे ह्यभिप्रेते भवतीच्छा....... प्रत्यस्माकमिच्छा भवति।"– (मीमांसा सूत्रों पर शबरस्वामी का भाष्य १/१/५)।

शङ्कराचार्य के भाष्यों का गद्य सर्वोत्कृष्ट है। **वाचस्पति मिश्र** जैसे विद्वानों ने उन्हें यथार्थतः 'प्रसन्नगम्भीर' कहा है।

व्यंग्यविनोद की तीक्ष्णता के लिए **जयन्तभट्ट** की **न्यायमञ्जरी** प्रमुखतया उल्लेखनीय है।

प्रारम्भ में सरलता तथा स्पष्टता से लिखा गया गद्य धीरे–धीरे क्लिष्टता की ओर उन्मुख होता गया। वैदिक गद्य तथा लौकिक संस्कृत के गद्य को साथ मिलाने का कार्य पौराणिक गद्य करता है। यह गद्य यत्र–तत्र पर्याप्त अलंकृत है। श्रीमद् भागवत तथा विष्णु पुराण का गद्य इसका स्पष्ट उदाहरण है। भगवान बुद्ध ने जनता के हृदय तक अपने उपदेशों को पहुँचाने के लिए सरल तथा सुबोध पाली गद्य का सहारा लिया। शास्त्रीय ग्रन्थों के गद्य सूत्र शैली से प्रभावित हैं। उसमें पारिभाषिक शब्दों की प्रधानता है।

अलंकृत गद्य शैली -

इस शैली का विकास कब हुआ ? यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता पर यह शताब्दियों के प्रयास तथा अभ्यास का परिणाम है। इसके पूर्व भी गद्य काव्यों की रचना होती रही है। इसका स्पष्ट लक्षण संस्कृत के नाटकों, चम्पू, तथा गद्य काव्यों में प्राप्त होता है। संस्कृत की इस शैली का पूर्ण विकसितरूप **सुबन्धु, दण्डी** तथा **बाण** के गद्यकाव्यों मे मिलता है पर इसके संकेत हमें प्राचीन काल से ही मिलने लगे थे। **कात्यायन ३०० ई०पू०** ने अपने **वार्तिक** मे 'आख्यायिका' का उल्लेख किया है–

'लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्', 'आख्यानाख्यातिकेतिहासपुराणेभ्यश्च' **पतञ्जलि** ने अपने **'महाभाष्य'** में आख्यायिकाओं का उदाहरण देते हुए तीन आख्यायिकाओं का नाम लिया है– **वासवदत्ता, सुमनोत्तरा, भैमरथी।**

– *'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे बहुलं लुग्वक्तव्यः। वासवदत्ता, सुमनोत्तरा। न च भवति। भैमरथी'* – महाभाष्य ४/३/८७

दण्डी ने भी मनोवती का उल्लेख किया है–

'धवलप्रभया रागं सा वितनोति मनोवती' –अवन्ति सुन्दरी कथा

वररूचि ने **'चारूमती'** तथा **हाल** के राजदरबारी कवि **श्रीपालित** ने **'तरंगवती'** कथा लिखी थी।

'पुण्या पुनीता गंगेय सा तरङ्गवती कथा' – तिलक मञ्जरी

कवि **जल्हण** ने **रामिल सोमिल-रचित शूद्रककथा** की रचना का संकेत दिया है–

तौ शूद्रककथाकारौ बन्धौ रामिलसोमिलौ।
काव्यं ययोर्द्वयोरासौदर्धनारीश्वरोपमम्।। –जल्हण

बाणभट्ट ने अपने **हर्षचरित** में '**भट्टारहरिचन्द्र**' नामक एक उच्चकोटि के गद्य लेखक के मनोहारी गद्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है–

पदबन्धोज्ज्वलो हारी कृतवर्णक्रमस्थितिः ।

भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते ।।

– हर्षचरित

यद्यपि उपरोक्त गद्य ग्रन्थों के सम्प्रति नामशेष है परन्तु इनसे स्पष्ट संकेत मिलता है कि संस्कृत गद्य साहित्य का क्रमिक विकास हुआ है। ऐसा नहीं कि ये मात्र गद्यग्रन्थों में ही मिलता है। प्राचीनतम रचना महाक्षत्रप के **रूद्रदामन १५० ई०** के **गिरनार** के शिलालेख में तथा प्रयाग के किले में अवस्थित स्तम्भ पर उट्टङ्कित **हरिषेण** रचित **समुद्रगुप्त** की प्रशस्ति **३५० ई०** में अलंकृत गद्य की प्रौढ़ शैली के दर्शन होते हैं। इस समय लम्बे समास, अनुप्रास तथा अन्य अलङ्कार प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुए इस समय के श्लेष का प्रयोग परवर्ती गद्यकाव्यकारों का प्रिय अलङ्कार बन गया। इसी गद्य शैली की चरम परिणति हमें **दण्डी, सुबन्धु** तथा **बाण** आदि की रचनाओं में परिलक्षित होता है। इनकी गद्य शैली तथा महर्षि **पतञ्जलि** की गद्य शैली में धरती–आकाश का अन्तर है। अब विभक्तियों का स्थान लम्बे–लम्बे समासों ने ले लिया और बाण इत्यादि की रचनाओं में दस–दस, बारह–बारह शब्दों को एक ही द्वन्द्व में उपनिबद्ध कर दिया गया। जहाँ तक तीनों गद्यकारों का प्रश्न है उनमें सुबन्धु और बाण दोनों में श्लेष की प्रधानता है, किन्तु सुबन्धु में श्लेष प्रयोग सीमा का अतिक्रमण कर गया है, जबकि बाण में अपेक्षाकृत श्लेषों का प्रयोग मर्यादित एवं समानुपातिक है। सुबन्धु ने यमकों के पर्याप्त प्रयोग द्वारा भी अपना पांडित्य प्रदर्शन किया है, किन्तु बाण में एक आध यमकों के मर्यादित

रूप मिलते हैं। जहाँ तक दण्डी का उल्लेख है उनको मनोरम वैद भी गद्यशैली का आचार्य कहा जा सकता है। उनकी वर्णन शैली अत्यन्त सरल तथा प्रसादपूर्ण है। अलङ्कारों के आडम्बर से उनकी भाषा दूर है। इस प्रकार **सुबन्धु** का गद्य प्रत्यक्षर श्लेषमय है। **बाण** का गद्य रूचिर स्वर वर्णपद है। **दण्डी** का गद्य प्रतिदिन के कार्य में आने वाला स्वाभाविक, प्रवाह पूर्ण तथा परिमार्जित है। इन तीनों गद्यकारों का विस्तृत वर्णन हम शैली–विमर्श में करेंगे।

कथा की उत्पत्ति

संस्कृत साहित्य में कथा–साहित्य की परम्परा बड़ी प्राचीन है। इस साहित्य की परम्परा इतनी प्राचीन तथा सबल है कि उसके समक्ष विश्व का साहित्य टिक नहीं सकता। संस्कृत साहित्य भाषा की दृष्टि से दो भागों में विभक्त है –

वैदिक साहित्य एवं लौकिक साहित्य। वैदिक साहित्य में चारो वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण–ग्रन्थ, सूत्रग्रन्थ, श्रौत सूत्र, गृह्मसूत्र, धर्मसूत्र तथा शुल्व सूत्र ग्रहण किये जाते हैं। वैदिक–वाङ्मय इतना विपुल और अध्यात्मपरक है कि जीवन का बहुत बड़ा भाग इसके अध्ययन में लगाया जा सकता है।

वैदिक वाङ्मय के अतिरिक्त लौकिक वाङ्मय का शिलान्यास उस शुभ बेला में हुआ जिस समय महर्षि बाल्मीकि ने व्याध द्वारा विद्धक्रौंची के करूणारव को सुनकर विगलित ह्दय से सहसा तमसा नदी के तट पर अश्रुपूरित नेत्रों से ह्दय के अन्तर्भाव से यह अभिव्यक्त किया–

मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।

यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।[1]

बाल्मीकि का यह शोक श्लोक बन गया। *"क्रौंचद्वन्द्व–वियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः"* इसी दिन वैदिक आमनाय वृहती गायत्री त्रिष्टुप जैसे छन्दों से मुक्त हुआ और लौकिक वाङ्मय का अविर्भाव हुआ। लौकिक वाङ्मय भी इतना ही व्यापक, विपुल और विशाल है।

इसकी प्रत्येक विधा चाहे महाकाव्य हो, चाहे नाटक चाहे धर्म, चाहे ज्योतिष, चाहे आयुर्वेद, चाहे संगीत, चाहे व्याकरण चाहे कथा काव्य संस्कृत वाङ्मय की ये विधाएं स्वयं में परिपूर्ण हैं। इनमें से प्रत्येक का पृथक्–पृथक् महत्त्व है।

कथा साहित्य इतना प्राचीन है जितना कि मानव। मानव के जन्म के साथ ही कथा का जन्म हुआ। प्राचीन काल से ही मानव कथा–कहानियों द्वारा अपने साथियों का मनोरंजन एवं ज्ञानावर्धन करता आ रहा है। जब लेखन शैली का अभाव था तब कहानी मौखिक रूप से सनातन चली आ रही है। मौखिक साहित्य से मुक्त होकर कब लिपिबद्ध हुई इसमें मतभेद हो सकता है किन्तु कथा की प्राचीनता तथा अविर्भूति में प्रश्नावाचक चिह्न नहीं लगाया जा सकता।

वैदिक साहित्य –

कथा साहित्य का उद्भव वैदिक काल से ही माना जाता है। ऋग्वेद संहिता अधिकांश भागदेवों की स्तुति व प्रार्थना रूप है, फिर भी उसमें विविध आख्यानों का सन्निवेश हुआ है, भले ही इन्हें कथा की संज्ञा नहीं दी जा सकती

---

[1] हे निषाद् ! तू अधिक समय तक प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त कर सकेगा क्योंकि तूने क्रौंच युगल में से काम मोहित एक को मार डाला है।

तथापि इन संवाद–सूक्तों के रूप में कथा के मूल तत्व सुप्तावस्था में अवश्य पाए जाते हैं। सबसे प्रसिद्ध आख्यान '**पुरुरवा-उर्वशी**' में हैं। **यम-यमी** का रोचक संवाद ऋग्वेद के दशवें मण्डल में मिलता है।

<u>ब्राह्मण ग्रन्थों में कथाएं</u> –

ब्राह्मण ग्रन्थों में वाणी से सम्बन्धित अनेक आख्यान उपलब्ध होते हैं, जो अत्यन्त रोचक एवं शिक्षाप्रद है। **शतपथ** ब्राह्मण में निबध्द **च्यवन भार्गव** तथा **सुकन्या मानवी** का आख्यान भारतीय नारी का रूप प्रस्तुत करता है। वैदिक संहिताओं के व्याख्यानात्मक ये ब्राह्मण ग्रन्थ, यज्ञभाग के विधि–विधानों तथा विभिन्न अङ्गों की व्याख्या के लिए कथाओं का सहारा लेते हैं।

इन ब्राह्मणगत कथाओं का वैज्ञानिक आधार यही है कि ये मानव–मन को अपनी ओर आकृष्ट कर उसे सत्कर्मों में प्रवृत्त होने का तथा सदाचार एवं सद्धर्म का उपदेश देती हैं। यद्यपि इनकी रचना तत्कालीन परिप्रेक्ष्य व मानव के मानसिक स्तर के आधार पर ही किया गया था, किन्तु इनकी उपदिष्ट तात्त्विक बातें व शिक्षाएं आज भी प्रासंगिक है। पंडित जवाहर लाल नेहरू का कथन है–

"If people believed in the factual contents of these stories, the whole thing was absurd and ridiculous but as soon as one ceased believing in them, they appeared in a new light, a new beauty. A wonderful flowering of a richly endowed imagination full of human lesson." [1]

शतपथ में अनेक शिक्षाप्रद कथाएं हैं। इनमें से प्रमुख निम्न हैं–

१. नमुचि और इन्द्र की कथा

२. पुरुरवा और उर्वशी की कथा

३. मन और वाक् के कलह की कथा

---

[1] Discovery of India P. 83

ऐतरेय ब्राह्मण की कथाओं में राजनीति का विकास अधिक परिलक्षित होता है। **सौपण** आख्यान तथा शुनःशेष आख्यान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कुछ आख्यान इस प्रकार हैं –

१. ऐतरेय ब्राह्मण ७–४–१

२. ऐतरेय ब्राह्मण ६–३–८

तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी वैसी ही प्रचुरता, छल, राजनीतिक दाँव–पेंच आदि हैं। इस ब्राह्मण की मुख्य कथाएं इस प्रकार है–

१. तैत्तिरीय ब्राह्मण १–१–२

२. तैत्तिरीय ब्राह्ममण १–१–४, १–५–६

<u>आरण्यक में कथाएं</u> –

ब्राह्मण ग्रन्थों का दृष्टान्तों के माध्यम से अपने विचारों को पुष्ट करने का जो प्रयास था, उसे ही आरण्यक में भी स्थान प्राप्त हुआ।

ब्राह्मणों की कथाओं के ही समान ही आरण्यकों की कथाओं में भी कहानी की कथा नहीं थी। मात्र विचार सिद्धान्त एवं कथन की पुष्टि हेतु कही जाने वाली कथाएं वर्तमान विकसित कहानी का पूर्वरूप ही थीं। इन कथाओं में भी ऐहिक जीवन के प्रत्येक पक्षों को स्पष्ट किया गया है। धर्म की प्रधानता भी दिखाई देती है।

<u>उपनिषद् में कथाएं</u> –

उपनिषदों में मूलभूत सिद्धान्त 'अहं ब्रह्मास्मि' का है। इस गूढ़तम तत्त्व के मर्म को समझाने के लिए कथा–आख्यान का आश्रय लिया गया है। इसका सर्वोच्च उदाहरण कठोपनिषद् का नचिकेता का उपाख्यान है। जिसे नचिकेता के साहस की कथा भी कहते हैं। वृहदारण्यकोपनिषद् में देवासुर संग्राम की कथा

है।[1] वृहदारण्यकोपनिषद् में ही याज्ञवल्वय–मैत्रीय सम्वाद से आत्मा की अखण्डता, अद्वितीयता, एकरसता तथा सर्वव्यापकता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है। छान्दोग्रूोपनिषद् में सत्यकाम और जाबालि की कथा मिलती है।[2] छान्दोग्योपनिषद् में प्राण (इन्द्रिय) की उत्कृष्टता सूचित करने वाली एक कथा मिलती है। साथ ही वृहदारण्यकोपनिषद् में एक सुन्दरतम नीति कहानी मिलती है कि प्रजापति की तीनों सन्तान देव, मानव एवं दानव ब्रह्मचर्य पूर्वक प्रजापति के पास आते हैं। प्रजापति ने 'द' वर्ण का उच्चारण किया और पूछा कि तुमने इसका क्या अभिप्राय समझा। देवों ने बताया कि 'द' से आपका अभिप्राय 'दाम्यत्' से है, जिसका अर्थ है – अपना दमन करो। इसके पश्चात् मानवों से भी 'द' वर्ण का अभिप्राय पूछा, मानवों ने 'दत्त' अर्थात् दान करो ऐसा अर्थ बताया। तत्पश्चात् दानवों को भी 'द' का उपदेश किया जाता है, जिसका अर्थ वे 'दयध्वम्' दया करो समझते हैं। प्रजापति ने अपनी तीनों सन्तानों के अभिप्राय को ठीक बतलाया, संसार की सम्पूर्ण शिक्षाएं भी इन्हीं तीनों दम, दाम तथा दया में समा जाती है। इसके अतिरिक्त उमा हेमवती का रोचक आख्यान (केन उपनिषद्), सनत्कुमार तथा नारदवृत्तान्त, इन्द्र तथा विरोचन की कथा, प्राण की श्रेष्ठता विषयक रोचक आख्यायिका, जनकयाज्ञवल्क्य आख्यान (छान्दोग्य उपनिषद् में) बाल्मीकि और अजातशत्रु आख्यान (कौषीतकि उपनिषद् में) आदि मुख्य कथाएं हैं।

---

[1] वृहदारण्यकोपनिषद् –१–१–३

[2] छान्दोग्योपनिषद् अध्याय–४

पुराण में कथाएं –

पुराण शब्द का अर्थ– प्राचीन कथाओं और आख्यादिकाओ का संग्रह। वेद, ब्राह्मण तथा उपनिषद् से चली आ रही कथा परम्परा का पूर्ण विकास पुराण–साहित्य में प्राप्त होता है। पण्डित बलदेव उपाध्याय ने पुराणों को वह मेरूदण्ड माना है, जिस पर आधुनिक भारतीय समाज अपने नियमन को प्रतिष्ठित करता है। पुराणों में आख्यान शैली को प्राथमिकता दी गई है। अतः प्रचलित कथाओं का सन्निवेश उसमें सहज एवं स्वाभाविक था। ये कथाएं मानव जीवन की उपकारक प्रवृत्तियों को जागृत एवं क्रियाशील बनाने की प्रक्रिया में बेजोड़ है। पौराणिक कथाओं में विषय–वैविध्य प्राप्त होता है।

रामायण -

पुराण साहित्य में कथा को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। इसमें मानवों तथा जन्तुओं पर भी आधारित कथाएं हैं। जब विभीषण राम की शरण में आया तब सुग्रीव ने राम को सचेष्ट किया कि उसे शरण में लेना उचित नहीं है। इस पर श्री रामचन्द्र जी ने सुग्रीव को एक कपोत–कपोती आख्यान[१] सुनाकर शरणागत को शरण में लेने का औचित्य बताया–

"सुना जाता है कि एक कबूतर ने अपनी शरण में आये हुए अपने ही शत्रु एक व्याध का यथोचित सत्कार ही नहीं किया अपितु अपने शरीर का मांस तक खिलाया। उस ब्याध का कबूतर ने आदर किया था फिर मेरे जैसा मनुष्य शरणागत पर अनुग्रह करे। इसके लिए तो कहना ही क्या है।"

---

[१] श्रूयते हि कपोतेन शत्रुः शरणामागतः। अर्चितश्च यथान्याय स्वैश्च मांसेर्निमन्वितः।।
स हि तं प्रति जग्राह मार्याहतरिमागतम्। कपोतो वानर श्रेष्ठ किं पुर्नमढियो जन।।
– श्रीमद् वाल्मीकीय रामायेण–प्रथमसर्ग–गीताप्रेस युद्धकाण्ड–१८–सर्ग, श्लोक–२४–२५

उपर्युक्त आख्यान के स्पष्ट है कि शरणागत को शरण प्रदान करना ही सत्पुरुष का कर्त्तव्य है तथा यह राजधर्म के साथ ही साथ प्रत्येक व्यक्ति के अनुकूल है। रामायण में वर्णित विभिन्न कथाएं इस प्रकार हैं–

१. वाघ एवं ब्याध की कथा[1]

२. श्वान कथा[2]

३. वामन अवतार[3]

४. समुद्र मन्थन[4]

५. उर्वशी पुरुरवा[5]

विद्वतजनों का अनुमान है कि सम्भवतः महाभारत की प्रतिस्पर्द्धा में परवर्ती विद्वानों ने प्रक्षिप्त अंश बाल्मीकि रामायण में समाविष्ट कर दिये हैं महाभारत में कथाएं हैं, अतः रामायण में अनेक कथाएं बाद में जोड़ दी गयी है।

महाभारत :–

महाभारत विश्व वाङ्मय मे सबसे बड़ा महाकाव्य है। महाभारत के विषय में महाभारत में ही कहा गया है –

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।

यदि हास्त तदन्यत्र यन्ने हास्ति न तत्क्वचित् ।।

महाभारत कथाओं के इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसे 'अनेक उपाख्यानों का सुन्दरवन' कहा गया है। कौरव एवं पाण्डव के युद्ध की

---

[1] रामायण भूषण टीका से वाल्मीकिय रामायण से – युद्धकाण्ड– १/३ सर्ग –श्लोक ४२–४४

[2] बाल्मीकियरामायण – प्रक्षिप्तसर्ग–२, श्लोक ४ से १० तक

[3] बाल्मीकियरामायण – प्रक्षिप्तसर्ग–२, श्लोक १ से २६ तक

[4] बाल्मीकियरामायण – प्रक्षिप्तसर्ग–२, श्लोक १ से ४५ तक

[5] बाल्मीकियरामायण – प्रक्षिप्तसर्ग–२, श्लोक १ से ८६ तक

मूलकथा के साथ इसमें वैदिक कालीन लोककथाएं, पुराणकथाएं, नैतिक उपाख्यान एवं ऋषि परम्परा की कविता के सूक्त–वचन यें सभी सम्मिलित हैं।

इसमें प्रसिद्ध उपाख्यान हैं–

शकुन्तलोपाख्यान, मत्स्योपाख्यान, रामोंपाख्यान, नलोपाख्यान इन आख्यानों के अन्तर्गत गाथाएं भी मिलती हैं, यथा–समुद्रमन्थन की कथा, रूरूकथा, इन्द्र वृत्रासुर कथा, शूद्र और मुनि कथा इत्यादि।

महाभारत में उपदेशात्मक कथाओं के साथ राजनीति के दाँवपेंच भी कथाओं द्वारा सरल ढ़ंग से समझाए गये हैं। भीष्म पर्व, वन पर्व, अनुशासन पर्व तथा शान्ति पर्वों में विशेष रूप से धर्म, नीति एवं उपदेशपूर्ण सिद्धान्तों की भरमार है।

महाभारत में पशु–पक्षियों की कथाओं का अत्यन्त विकसित रूप मिलता है जहाँ इसका उपयोग नीति तथा धर्म का उपदेश देने में किया जाता है इसका कुछ अंश **बाणभट्ट** की **कादम्बरी** के शुकनाशोपदेश में भी परिलक्षित होता है।

जातक कथाएं -

बौद्धों की जातक कथाएं ३००ई०पू० के लगभग विद्यमान थीं। वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, पुराण तथा रामायण व महाभारत की स्रोतास्विनी में कालान्तर में बौद्ध एवं जैन नामक दो अन्य कथा धाराएं आ सम्मिलित हुई। वानर, मृग आदि नाना पशु योनियों ने जन्म ले कर बोधिसत्व द्वारा प्रकटित उदात्तचरित बौद्धों की जातक कथाओं के विषय हैं। बौद्धों ने दत्त–कथाओं का 'अवदान' नाम से और जैनों ने 'नायाधम्मकहाओं और उत्तरज्झयण–सुत्त आदि आगम ग्रन्थों में संकलन किया। जातक कथाएं पालि भाषा में लिखी गई हैं।

जातक कथाओं में हिन्दू कथा–साहित्य, महाभारत, श्रीमद् भागवत्, रामायण आदि को स्थान दिया गया है।

कथा का स्वरूप

कथा का स्वरूप किसी न किसी रूप में अत्यन्त प्राचीन काल से ही माना जाता है। पूर्व वैदिक वाङ्मय में सूक्त एवं गाथा शब्दों का प्रयोग कथा के रूप में किया जाता था। अथर्ववेद तथा ऋग्वेद संहिता में तथा वृहद्देवता में क्रमशः गाथा एवं सूक्त शब्दों का प्रयोग प्राप्त है। शौनक–सूक्त को सम्पूर्ण ऋषि वाक्य स्वीकार करते हैं –

"सम्पूर्ण ऋषिवाक्यं तु सूक्तमित्यभिधीपते।"[1]

वैदिक काल में असंख्य मंत्रों के बीच कुछ ऐसे भी स्थल प्राप्त होते हैं जहाँ कुछ पात्रों के मध्य कथोपकथन हो रहा होता है। इन्हीं सूक्तों को "संवाद सूक्त" की संज्ञा दी गयी है किन्तु संवाद सूक्तों को कथा न समझकर मात्र कथा बीज समझना अधिक समीचीन प्रतीत होता है। धीरे–धीरे भाषा तथा अर्थगत परिवर्तनों के कारण सूक्त शब्द मात्र ऋग्वेद संहिता की ऋचा समूहों का द्योतक बन गया। कथा के इस रूप को वास्तव में उपेक्षित नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह कथा साहित्य के विकास क्रम की प्रथम कड़ी प्रतीत होती है।

वैदिक सूक्त में प्रयुक्त गाथा शब्द की उत्पत्ति में 'गै' धातु से निष्पन्न तथा गाने के अर्थ में लिया जाता है। यह गीत, छन्द या धार्मिक श्लोक सा ज्ञात होता है। वेदों से सम्बन्ध न रखने वाले गाथा शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर प्राप्त है। **ऋग्वेद** में **'नाराशंसी'** गाथा का भी उल्लेख प्राप्त होता है। विद्वदजनों ने इसमें मतवैभिन्न प्रगट किया है। अथर्ववेद[2] तथा ऐतरेय ब्राह्मण[3] में गाथा तथा नाराशंसी को भिन्न बताया है। आचार्य शौनक इसको यज्ञादि में दान

---

[1] वृहद्देवता – १–१३

[2] अथर्ववेद – १५ –६–४

[3] ऐतरेय ब्राह्मण – २–३–६

देने वाले के स्तुति में गाए जाने वाले छन्द स्वरूप स्वीकार करते हैं।[1] धीरे–धीरे इसका प्रयोग संहिता साहित्य, ब्राह्मण साहित्य[2] में और यहाँ तक की गाथा शब्द महाभारत[3] से लेकर जातकों तक व्याप्त हो चला। **ओल्डेन वर्ग** महोदय ऋग्वेद में प्रयुक्त संवादात्मक आख्यानों से ही गाथा नाराशंसी का अर्थ लेते हैं उनके अनुसार – "इन संवादात्मक आख्यानों को ही पहले गाथा नाराशंसी कहा जाता था किन्तु अपनी ख्याति के कारण थोड़े ही समय बाद उन्हीं को ही इतिहास और पुराण की कथा कहा जाने लगा।

उपर्युक्त कथन से यह प्रतीत होता है कि गाथा वेदों में प्रयुक्त मात्र छन्दबद्ध गेय रचना थी इसी श्रेणी में आख्यायिका शब्द का प्रयोग भी प्राप्त होता है। निष्कर्षतः शब्द पर दृष्टिपात् करने से यह ज्ञात होता है कि वैदिक काल में कथा हेतु सूक्तादि शब्दों का ही प्रयोग होता था किन्तु कालान्तर में ब्राह्मण ग्रन्थों में कुछ परिवर्तन हुआ। ऐतरेय ब्राह्मण में भी इसका प्रयोग किया गया है।[4] **रामायण** और *महाभारत* काल में कथा का अर्थ अत्यधिक विकसित हुआ। बृहत्कथा तथा बौद्ध, जैन साहित्य में भी अट्ठकथा तथा धर्मकथा आदि समुचित मात्रा में प्राप्त है। कथा का अर्थ कथा, कहानी, कल्पित कहानी अथवा क्या कहना है, कितना अधिक, कितना कम के रूप में भी प्रयुक्त है यथा – **अभिज्ञान शाकुन्तलम्** के तृतीय सर्ग में –

"का कथा बाणसन्धाने ज्याशब्दैनैव दूरतः।

हुँकारेणेव धनुषः सहिविघ्नानपोहति।"[5]

---

[1] वृहद्देवता – ३–१५४

[2] ऐतरेय ब्राह्मण – ३३, खण्ड ३–६

[3] महाभारत – अनुवंशपर्व

[4] ऐतरेय ब्राह्मण – ५–३३

[5] अभिज्ञान शाकुन्तलम् –३/१

इसी प्रकार महान् नाटककार **भट्टनारायण** कृत **वेणी संहार** में भी कथा शब्द कहने के अर्थ में प्रयुक्त है।

"आप्तवागनुमानाभ्यां साध्यं त्वां प्रति का कथा"[1]

महाभारतकार **कृष्णद्वैपायनव्यास** ने आख्यान, कथा, आख्यायिका, पुराण और इतिहास इन सभी को प्रायः समान अर्थ में ही प्राचीन कहानी के रूप में प्रयुक्त किया है।[2]

इसी श्रृंखला में **बाणभट्ट** ने अपनी रचना कादम्बरी को कथा कहा है जो **'वासवदत्ता'** और **'वृहत्कथा'** दोनों का अतिक्रमण करने वाली कथा है।

"अलब्धवैदग्घ्यविलासमुग्धया धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा।"

— कादम्बरी भूमिका श्लोक २०

हर्षचरित को **बाण** ने आख्यायिका कहा है—

" करोम्याख्यायिकाम्बुधौ जिह्वाप्लवनचापलम्।"

भामह ने अपनी कृति **काव्यालंकार** में कथा की जो विशेषता दी है वह **कादम्बरी** के लिए उक्तिपूर्ण है।[3]

१. वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्द न हो।

२. उच्छ्वासों में विभाजन न हो।

३. संस्कृत में या असंस्कृत अर्थात् प्राकृत या अपभ्रंश में रचित हो।

---

[1] वेणी संहार — २/२५

[2] हॉपकिन्स — दिग्रेट एपिव ऑफ इण्डिया

[3] न वक्त्रापरवक्त्रा भ्यांयुक्ता नोच्छ्वासवत्यपि।
संस्कृता संस्कृता चेष्टा कथापभ्रंशभाक् तथा।।
अन्यैःस्वचरितं तस्यां नापकेन तुनोच्यते।
स्वगुणा निष्कृतिं कुर्यादभिजातः कथं जनवः।।
— भामहः काव्यालंकार १/२८—२६

४. नायक अपने चरित का वर्णन स्वयं न करे, अपितु कोई दूसरा करे, क्योंकि कुलीन व्यक्ति अपने गुण का वर्णन स्वयं कैसे कर सकता है।

कादम्बरी में वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग नही हुआ है और उच्छ्वासों में विभाजन भी नहीं हुआ है। कादम्बरी की रचना संस्कृत में हुयी है। इसका नायक चन्द्रापीड है। वह अपने चरित का वर्णन स्वयं नही करता।

कथा-आख्यायिका का स्वरूप एवं भेदक तत्व

गाथा वेदों में प्रयुक्त मान छन्दबद्ध गेय रचना थी इसी श्रेणी में आख्यायिका शब्द का भी प्रयोग प्राप्त होता है। आख्यायिका का शाब्दिक अर्थ आख्यायक + टाप् इत्वम् अर्थात गद्यरचना का नमूना, सुसंगत कहानी है। इस शब्द का वैदिक प्रयोग "ख्या" धातु से देखने के अर्थ में हैं। **तैत्तिरीय आख्यक** में भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है।[१]

यूं तो आख्यायिका एवं कथा शब्द समानार्थक से प्रतीत होते हैं किन्तु साहित्य में वे दोनों भिन्न रचना शैली के द्योतक है। ये दोनों ही गद्यकाव्य के भेद हैं। काल–मीमांसकों ने कथा के उदाहरण के रूप में **गुणाढ्य** की **'बृहत्कथा' बाण** की **'कादम्बरी', सुबन्धु** की **'वासवदत्ता'** इत्यादि को प्रस्तुत किया है। स्वरूपगत एवं उद्देश्यगत भेद के कारण इसकी काव्य–शास्त्रियों ने विविध रूपों में उद्भावना की है। इस प्रकार कथा तथा आख्यायिका के विभाजन को लेकर विद्वानों का दो वर्ग सम्मुख आता है –

इसमें दो वर्ग एक वर्ग जो कथा और आख्यायिका इन दो भेदों को मानता है, और दूसरा जो इन दो भेदों के अतिरिक्त भी कई भेदों का उल्लेख करता है।

---

[१] तैत्तिरीय आरण्यक – १–६–३

प्रथम वर्ग – भामह, दण्डी, वामन, रूद्रट, आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त विद्यानाथ एवं विश्वनाथ आदि हैं।

द्वितीय वर्ग – अग्निपुराण, हेमचन्द्र

आख्यायिका और कथा नामक दो भेदों की चर्चा सर्वप्रथम **'अमरकोष'**[1] में प्राप्त होती है। इसके अनुसार कथा कवि कल्पित और आख्यायिका ऐतिहासिक इतिवृत्त पर अवलम्बित होती है।

सर्वप्रथम भामह अपने काव्यालंकार में आख्यायिका का लक्षण प्रस्तुत करते हैं।[2]

१. संस्कृत गद्य में हो।

२. शब्द, अर्थ और पद–संघटना सरल और श्रव्य हो।

३. विषय उदात्त हो।

४. नायक अपना वृत्तान्त स्वयं कहे।

५. कथानक उच्छ्वासों में विभक्त हो।

६. भावी घटनाओं को सूचित करने के लिए समय–समय पर वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग हो।

७. कन्याहरण, संग्राम, वियोग, अभ्युदय आदि से समन्वित हो।

उपर्युक्त लक्षणों के परिप्रेक्ष्य में हर्षचरित की रचना गद्य में हुई है। उसका विषय उदात्त है और कथानक उच्छ्वासों में विभक्त हुआ है। इसमें

---

[1] "प्रबन्धकल्पना कथा"। अमरकोश १/६/६
'आख्यायिकोपलब्धार्था'। अमरकोश १/६/५

[2] संस्कृतानुकूलश्रव्यशब्दार्थयदवृत्तिना।
गद्येन युक्तोदात्तार्था सोच्छ्वासाख्यायिका मता।।
वृत्तमाख्यायते तस्यां नायकेन स्वचेष्टितम्।
वक्त्रं चापरवक्त्रं च काले भाव्यर्थशंसि च।।
कवेरभिप्रायकृतैः कथनैः कैश्चिदङ्किता।
कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भोदयान्विता।। —भामहः –काव्यालंकार १/२५–२७

नायक हर्ष अपना वृतान्त नहीं कहता। वाण हर्ष के वृतान्त का उल्लेख करते हैं। हर्षचरित में वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग हुआ है और वे भावी घटना की सूचना भी देते हैं।[1] हर्षचरित अभिप्राय–विशिष्ट कथनों से चिन्हित नहीं है। **भामह** के लक्षणों को ध्यान में रखकर विवेचन करने से प्रकट होता है कि उनके द्वारा उपन्यस्तकतिपय विशेषताएं हर्षचरित में अवश्य उपलब्ध है।

भामह मतानुसार कथा की विशेषता अधोलिखित अंकित है –[2]

१. वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्द हो।

२. उच्छ्वासों में विभाजन न हो।

३. संस्कृत में या असंस्कृत अर्थात् प्राकृत या अपभ्रंश में रचित हो।

४. नायक अपने चरित्र का वर्णन स्वयं न करें, अपितु कोई दूसरा करे, क्योंकि कुलीन व्यक्ति अपने गुण का वर्णन स्वयं कैसे कर सकता है।

उपर्युक्त लक्षण कादम्बरी में परिलक्षित होता है। कादम्बरी में वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग नहीं हुआ है और उच्छ्वासों में विभाजन भी नहीं हुआ है। कादम्बरी की रचना संस्कृत में हुई है। इसका नायक चन्द्रापीड है। वह अपने चरित्र का वर्णन स्वयमेव नहीं करता।

कादम्बरी मे वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग नहीं हुआ है और उच्छ्वासों में विभाजन भी नहीं हुआ है। कादम्बरी की रचना संस्कृत में हुई है। इसका नायक चन्द्रापीड है। वह अपने चरित का वर्णन स्वयं नहीं करता। भामह द्वारा निरूपित विशेषताएं कादम्बरी में प्राप्त होती है।

---

[1] हर्षचरित १/७, ४/४ ५/२५

[2] नववक्त्रापरवक्त्राभ्यां ....कथंजनः ।।

– भामहः काव्यलंकार १/२८–२६

भामह का आख्यायिका तथा कथा का विवेचन स्थूल है। कोई रचना संस्कृत में हो या प्राकृत में हा, इन सबका कोई महत्त्व नहीं है। परन्तु भामह की एक बात कुछ महत्व की है और वह है –आख्यायिका में नायक के द्वारा स्वचेष्टित का वर्णन और कथा में किसी अन्य के द्वारा नायक के चरित का वर्णन। यहाँ एक प्रश्न उठ सकता है कि यदि नायक आख्यायिका में अपने चरित का वर्णन करे, तो क्या अन्तर पड़ सकता है ? इसका उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है – आख्यायिका पहले से उपस्थित इतिवृत्त वाली होती है, इसमें पहले से ही नायक द्वारा किये कार्यों का वर्णन होता है अतएव इसमे नायक द्वारा आत्मश्लाघा की उपस्थापना का सन्देह नहीं किया जा सकता और कथा कवि–कल्पित होती है, अतएव यदि उसमें नायक द्वारा स्वचरित के वर्णन का विधान हो तो आत्मश्लाघा के लिए पर्याप्त जगह मिल सकता है। [१]

आचार्य दण्डी कथा और आख्यायिका इन दोनों को एक ही गद्य–काव्य के दो भिन्न–भिन्न नाम मात्र मानते हैं।[२] वे इनकी पृथक प्रतिष्ठा के विरूद्ध थे। अतः इन्होनें कथा में ही आख्यायिका के लक्षणों को भी उपस्थित कर दिया है।

---

[१] बाणभट्ट का साहित्यिक अनुशीलन

– डॉ० अमरनाथ पाण्डेय पृ० ४६

[२] तत् कथाख्यायिपकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयाङ्किता।

अत्रैवान्तर्भविष्यति शेषाश्चख्यानजातयः।।

– काव्यादर्श १/२८

इस प्रक्रिया में **दण्डी** ने निम्न तर्क दिये हैं–[1]

१. आख्यायिका नायक द्वारा स्वयं कही जाती है, किन्तु कथा का वर्णननायक या अन्य कोई भी कर सकता है।

२. आख्यायिका वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों से युक्त होती है और कथा इनसे रहित किन्तु दण्डी के अनुसार जिस प्रकार कथा में आर्या आदि छन्दों का प्रयोग होता है, उसी प्रकार स्वरूप में कोई परिवर्तन किए बिना इन छन्दों का प्रयोग किया जा सकता है।

३. आख्यायिका का विभाजन उच्छ्वासों में हो, यह भेद भी महत्वपूर्ण नहीं। कथानक को उच्छ्वास या लम्भ में विभक्त करने से क्या विशेषता आ सकती है ? यह नाममात्र का भेद है, स्वरूपगत भेद नहीं।

---

[1] अपादः पदसन्तानो गद्यमाख्यायिका कथा।
इति तस्य प्रभेदो द्वौ तयोराख्यायिका किल।।
नायकेनैव वाच्यान्या नायकेनेतरेण वा।
स्वगुणाविक्रियादोषो नात्र भूतार्थशंसिनः।।
अपि त्वनियमो दृष्टस्तत्राप्यन्यैरुदीरणात्।
अन्यो वक्ता स्वयं वेति कीदृग् वा भेदलक्षणम्।।
वक्त्रं चापरवक्त्रं च सोच्छ्वासत्वं च भेदकम्।
चिह्नमाख्यायिकायाश्चेत प्रसङ्गे न कथास्वपि।।
आर्यादिवत् प्रवेशः किं न वक्त्रापरवक्त्रयोः।
भेदश्चदृष्टो लाभादिरुच्छ्वासो वास्तु किं ततः।।
कन्याहरणसङ्ग्रामविप्रलम्भोदयादयः।
सर्गबन्धसमा एव नैते वैशेषिका गुणाः।।
कविभावकृतं चिह्नमन्यत्रापि न दुष्यति।
मुखमिष्टार्थसंसिद्धौ किं हि न स्यात् कृतात्मनाम्।।
– काव्यदर्श १/२३–२७,२६–३०।

४. आख्याख्यिका में कन्याहरण, संग्राम, वियोग, उदय आदि आवश्यक माने जाते हैं, कथा में नहीं, यह ठीक नहीं। महाकाव्यों में कन्याहरण संग्राम आदि वर्णित होते ही हैं, तो कथा में क्यों न वर्णित हों ?

५. जब आख्यायिका में कवि के अभिप्राय–विशिष्ट चिन्हों का प्रयोग हो सकता है, तो कथा में अथवा काव्य के किसी अन्य प्रकार में प्रयोग किया जा सकता है।

६. **दण्डी** के काल तक आख्यायिका केवल संस्कृत में लिखी जाती थी और कथा पालि, अपभ्रंश तथा संस्कृत में भी[1] आख्यायिका राजवंशानुकीर्तन से सम्बद्ध होने के कारण संस्कृत में लिखी जाती थी। कथा लोक में लोकप्रिय थी, जबकि आख्यायिका को राज्याश्रित कवि ही अपनाते थे। दण्डी ने कथा को विशेष महत्व दिया, कथा के प्रति अपना आग्रह दिखाकर लोक–काव्य को प्रोत्साहन एवं संवर्द्धन प्रदान किया, इसीलिए उन्होंनें अपने निष्कर्ष में कथा को प्रथम स्थान दिया।

दण्डी और भामह के कथा और आख्यायिका के सम्बन्धों के विवाद को लेकर यह कहा जा सकता है कि भामह के समय में आख्यायिका और कथा के स्वरूप में भेद माना जाता था और यह विभाजन कुछ विशेषताओ पर आधारित था। दण्डी के समय में इनके भेद के विषय में अनियमितता थी, अतः उन्होंने इन्हें एकजातीय मान लिया है।

---

[1] कथ हि सर्वभाषाभिः संस्कृतेन च बध्यते। – काव्यादर्श १/३८

वामन ने कथा और आख्यायिका इन दोनों के भेद को अधिक महत्वपूर्ण नहीं माना है। उन्होंने निर्देश किया है कि काव्य के अन्य भेदों के विषय में अन्य ग्रन्थों से ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। [1]

आचार्य रूद्रट बाण से निश्चित ही प्रभावित हैं, अतः उन्होंने हर्षचरित और कादम्बरी का ही ध्यान में रखकर लक्षणो को निबन्धन किया है। **रूद्रट** के अनुसार कथा की अद्योलिखित विशेषताएं हैं–

श्लोकों में इष्ट देवताओं और गुरूओं के प्रति नमस्कार की योजना हो तथा कवि कर्तृरूप में अपना और अपने कुल का संक्षिप्त वर्णन करे। सानुप्रास तथा लध्वक्षर गद्य में कथा के शरीर की रचना करनी चाहिए और पुर–वर्णन प्रभृति की योजना होनी चाहिए। प्रारम्भ मे कथान्तर की योजना की जानी चाहिए। यह योजना इस प्रकार हो कि प्रकान्त कथा शीघ्र ही अवतीर्ण हो जाये। कन्या लाभ की योजना हो तथा श्रृङ्काररस पूर्णतः विन्यस्त हो। संस्कृत में कथा की रचना गद्य में होनी चाहिए और अन्य भाषाओं में पद्य में होनी चाहिए।[2]

---

[1] 'ततोऽन्यभेदक्लृप्तिः'। काव्यलंकार सूत्रवृत्ति १/३/३२ इसकी पूरी वृत्ति इस प्रकार है–
' ततो दशरूपकादन्येषां भेदानां क्लृप्तिः कल्पनमिति।
दशरूपकस्यैव हीदं सर्वविलसितम्।
यच्च कथाख्यायिकं महाकाव्यमिति।
तत्लक्षणञ्च नातीव ह्रदयङ्गममित्युपेक्षितमस्माभिः। तदन्यतो ग्राह्यम्।'

[2] श्लोकैर्महाकथायामिष्ट्रान देवान् गुरून् नमस्कृत्य।
संक्षेपेण निजं कुलमभिदध्यात् स्वं च कर्तृतया।।
सानुप्रासेन ततो भूयो लध्वक्षरेण गद्येन।
रचयेत् कथाशरीरं पुरव पुरवर्णकप्रभृतीन्।।
आदौ कथान्तरं वा तस्यां न्यस्येत् प्रपञ्चितं सम्यक्।
लघु तावत्संधानं प्रक्रान्तकथावताराय।।
कन्या लाभ फलां वा सम्यग् विन्यस्तसकलशृङ्गाराम्।
इति संस्कृतेन कुर्यात् कथामगद्येन चान्येन।।
–रूद्रट–काव्यलंकार (सत्यदेवचौधरी द्वारा सम्पादित) १६/२०–२४

बाणभट्ट की कादम्बरी के प्रथम श्लोक में त्रिगुणात्मा परमात्मा को नमस्कार किया गया है।

रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये स्थितौप्रजानां प्रलये तमःस्पृशे ।

अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः ।।

द्वितीय श्लोक (जयन्ति–पांसवः) में शिव तथा तृतीय श्लोक में विष्णु की स्तुति की गयी है। बाण चतुर्थ श्लोक में अपने गुरू को नमस्कार करते हैं और दसवें श्लोक से लेकर उन्नीसवें श्लोक तक अपने वंश कावर्णन करते हैं। अनुप्रासमय गद्य में कादम्बरी की रचना हुई तथा पुरवर्णन आदि की योजना हुई है। कादम्बरी में चन्द्रापीड को कादम्बरी की प्राप्ति होती है। श्रृङ्गाररस कातों अत्यन्त सुन्दर विनिवेश हुआ है। कादम्बरी वियोग रस की रचना है। कादम्बरी की रचना संस्कृत गद्य में हुई है।

रूद्रट के लक्षण के आधार पर विवेचना करने से यह परिलक्षित हो जाता है कि कादम्बरी कथा है। **काव्यालङ्कार** के टीकाकार नाभि साधु **कादम्बरी** को कथा के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं।[१]

रूद्रट के अनुसार आख्यायिका की अद्योलिखित विशेषताएं बताई गयी है–

पहले देवी और गुरुवों के प्रति नमस्कार हो ओर प्राचीन कवियों की प्रशंसा हो। कवि रचना करने में अपनी असमर्थता व्यक्त करे। कवि अपनी ग्रन्थ रचना के अभिप्राय का प्रगट करे कि वह राजा के प्रति भक्ति या किसी व्यक्ति के गुणों में आसक्ति या अन्य कारण से गद्य–रचना कर रहा है। कवि कथा की भॉति आख्यायिका की रचना गद्य में करें और अपना तथा अपने वंश का वर्णन

---

[१] रूद्रटः काव्यालंकार (निर्णयसागर प्रेस) १६/२२ पर नमिसाधु की टीका

गद्य में करें। उसमें उच्छ्वासों का नियोजन होना चाहिए। प्रथम उच्छ्वास के अतिरिक्त अन्य उच्छ्वासों के प्रारम्भ में प्रस्तुत अर्थ को सूचित करने के लिए सामान्य अर्थ का निर्देश करने वाले, श्लेषयुक्त दो–दो आर्या छन्दों का प्रयोग होना चाहिए।[1]

रूद्रट द्वारा बताये गये उपर्युक्त लक्षण कादम्बरी में अक्षरशः परिलक्षित होता है। बाण ने हर्षचरित के प्रारम्भ में पहले शिव को और बाद में पार्वती को नमस्कार किया है। (हर्ष० १/१)

इसके पश्चात उन्होंने कवियों की प्रशंसा की है। वे कहते हैं कि यद्यपि मैं काव्य–रचना करने में असमर्थ हूँ, तथापि राजा हर्ष के प्रति मेरी भक्ति काव्य–रचना करने के लिए प्रेरित कर रही है।[2] हर्षहरित की रचना गद्य में हुई है और बाण ने अपने और अपने वंश का वर्णन गद्य में किया है। हर्षचरित आठ उच्छ्वासों में बंटा है और प्रथम उच्छ्वास को छोड़कर अन्य उच्छ्वासों के प्रारम्भ में प्रायः आर्या छन्द का प्रयोग हुआ है। ये श्लिष्ट है।

रूद्रट द्वारा वर्णित विशेषताओं का अवलोकन करने से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने **हर्षचरित** को आख्यायिका आदर्श मानकर लक्षण प्रस्तुत

---

[1] पूर्ववदेव नमस्कृतदेवगुरुर्नोत्सहेतु स्थितेष्वेषु।
काव्यं र्क्तुमित्ति कवीञ् शंसेदाख्यायिकायां तु।।
तदनु नृपे वा भक्तिं परगुण संकीर्तनेऽथवा व्यसनम्।
अन्यद्वा तत्करणे कारणमक्लिष्टमभिदध्यात्।।
अथ तेन कथैव यथा रचनीयाख्यायिकापि गद्येन।
निजवंशं स्वं चास्यामभिदध्यान्न त्वगद्येन।।
कुर्यादत्रोच्छ्वासान् सर्गवदेषां मुखेष्वनाद्यानाम्।
द्वे द्वे चार्ये श्लिष्टे सामान्यार्थे तदर्थाय।।
— रूद्रटः काव्यालंकार (सत्यदेव चौधरी द्वारा समादित), १६/२४–२७

[2] 'तथापि नृपतेर्भक्त्या .... जिह्वाप्लवनचापलम्।।'
— रूद्रट काव्यालङ्कार १/३

केया है। **काव्याङ्कार** के टीकाकार नमिसाधु हर्षचरित को आख्यायिका मानते हैं।[1]

आचार्य **आनन्दवर्धन** द्वारा दिया गया आख्यायिका का लक्षण अन्य सभी आचार्यों से पृथक् है। उनका कथन है कि आख्यायिका में मध्यसमासयुक्त या दीर्घसमासयुक्त सङ्घटना होती है, क्योंकि गद्य में छायावत्ता (काव्य–सौन्दर्य) विकट बन्ध से आती है। कथा में विकट बन्ध का प्राचुर्य होने पर भी रस–बन्ध में कहे हुए औचित्य का अनुसरण करना चाहिए।[2]

"आख्यायिकायां तु भूम्ना मध्यमसमासदीर्घसमासे एव सङ्घटने। गद्यस्य विकटबन्धाश्रयेण छायावत्त्वात्। तत्र च तस्य प्रकृष्यमाणत्वात्। कथायां तु विकट बन्ध प्राचुर्येऽपि गद्यस्य रक्त बन्धोक्त मौचित्यमनुसर्तव्यम्।"

आनन्दवर्धन ने तृतीय उद्योत में काव्य के अनेक प्रकार बताये हैं।[3]

प्रतापरुद्रयशोभूषण में आख्यायिका की विशेषता बताते हैं।[4] उनके मतानुसार आख्यायिका में वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग होना चाहिए और विभाजन उच्छ्वासों में होना चाहिए। वे हर्षचरित को आख्यायिका के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं।[5]

---

1. रूद्रटः काव्यांलकार (निर्णयसागर प्रेस) १६/२६ नमिसाधु की टीका।
2. ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत, पृ० ३२६–३२७।
3. "काव्यस्य प्रभेदा मुक्तकं .... पर्यायबन्धःपरिकथा, खण्डकथासकलकथे, सर्गबन्धो ऽभिनेयार्थ, आख्यायिकाकथे इत्येवमादयः" — ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत, पृ० १८२
4. वक्त्रं चापरवक्त्रं च सोच्छवासत्वं च भेदकम्।
वर्ण्यते यत्र काव्यज्ञैरसावाख्यायिका मता।। — प्रतापरूद्रयशोभूषण, पृ० ६६
5. 'यत्र वक्त्रापरवक्त्रनामानौ वृत्तविशेषौ वर्ण्येतेसोच्छ्वासपरिच्छिन्नाख्यायिका हर्षचरितादि। — — प्रतापरूद्रयशोभूषण, पृ० ६७

इसके उपरान्त आचार्य विश्वनाथ आख्यायिका कथा का विस्तृत रूप से लक्षण निर्देश करते हैं –

आख्यायिका, कथा की ही भांति गद्य का एक प्रकार है, इसमें कवि के वंश का अनुकीर्तन होता है, और कहीं–कहीं अन्य कवियों की भी चर्चा होती है। यत्र–तत्र पद्य भी रहते हैं। आर्या, वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों में से किसी एक के द्वारा आश्वास के प्रारम्भ में किसी अन्य विषय के व्याज से वर्णनीय विषय की सूचना दी जाती है।[1]

उदाहरणार्थ उन्होनें ने हर्षचरित का उल्लेख किया है।

– साहित्यदर्पण, परिच्छेद ७ पृ० २२७

कथा और आख्यायिका की पृथकता सिद्ध करते हुए **विश्वनाथ** ने कहा कि कथा में सरस इतिवृत्त होता है, कहीं–कहीं आर्या, वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग होता है। प्रारम्भ में पद्यों द्वारा नमस्कारात्मक मङ्गल किया जाता है तथा खलनिन्दा, सज्जन–प्रशंसा आदि का भी उपन्यास होता है।[2] कथा के उदाहरणार्थ **कादम्बरी** प्रस्तुत की गयी है।[3]

---

[1] आख्यायिका कथावत् स्पात्कवेर्वंशानुकीर्तनम्।
अस्यामन्यकवीनाञ्च वृतं पद्यं क्वचित् क्वचित्।।
कथांशानां व्यवच्छेद आश्वास इति बध्यते।
आर्यावक्त्रापवक्त्राणां छन्दसा येन केनचित्।।
अन्यायदेशेनाश्चासमुखे भाव्यर्थ सूचनम्।

– साहित्यदर्पण ६/ ३३४–३३६

[2] कथायां सरसं वस्तुगद्यैरेव विनिर्मितम्।।
क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद्व क्त्रापवक्त्रके।
आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्तनम्।।

– साहित्यदर्पण ३/३३२–३३३

[3] साहित्यदर्पण परिच्छेद–६ पृ० २२६

कथा और आख्यायिका के भेद को मानने वाले द्वितीय वर्ग में **अग्निपुराण** तथा **हेमचन्द्र** हैं।

अग्निपुराण के लेखक ने बाण के ग्रन्थों को ध्यान में रखकर लक्षण प्रस्तुत किया है। अग्निपुराण में आख्यायिका का स्वरूप इस प्रकार निर्धारित किया गया है–

आख्यायिका में कर्त्ता के वंश की विस्तारपूर्वक प्रशंसा गद्य में होनी चाहिए। कन्याहरण, संग्राम, विप्रलम्भ तथा अन्य विपत्तियों का प्रकरण हो, रीतियों, वृत्तियों तथा प्रवृत्तियों का दीप्तरूप में प्रस्तुतीकरण हो, उच्छ्वासों में विभाग हो तथा चूर्णक गद्य का प्रयोग हो। इसमें वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग होना चाहिए।[१]

हर्षचरित में बाण ने अपने वंश का वर्णन किया है। अनेक स्थलों पर विपत्तियों का भी प्रस्तुतीकरण हुआ है। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु, यशोमती का अग्नि में जलना, राज्यवर्धन की हत्या आदि विपत्तियों का समुल्लेख उपलब्ध होता है। रीतियों, वृत्तियों आदि का भी सुन्दर सन्निवेश हुआ है। **हर्षचरित** उच्छ्वासों में विभक्त है। इसमें बीच–बीच में चूर्णक गद्य का प्रयोग हुआ है तथा वक्त्र और अपरवक्त्र छन्द भी प्रयुक्त हुए हैं। कथा का लक्षण **अग्निपुराण** में अद्योलिखित दी गयी है।

कवि के वंश की श्लोकों में प्रशंसा होनी चाहिए। मुख्य कथा के अवतार के लिए अवान्तर कथा की सर्जना होनी चाहिए। परिच्छेद नहीं होते, किन्तु

---

[१] कर्तृवंश प्रशंसा स्पाद् यत्र गद्येन विस्तरात्।
कन्याहण संग्राम विप्रलम्भविपत्तय :।।
भवन्ति यत्र दीप्ताश्च्च रीतिवृत्तिप्रवृत्तयः।
उच्छ्वासैश्च्च परिच्छेदो यत्र या चूर्ण कोत्तरा।।
वक्त्रं वापरवक्त्रं वा यत्र साख्यायिका स्मृता।
– अग्निपुराण ३३७ / १३–१५

कभी–कभी लम्भकों में विभाजन होतो है। प्रत्येक गर्भ में चतुष्पदी छन्दों की योजना होनी चाहिए।[1]

उपर्युक्त लक्षण **कादम्बरी** में अक्षरशः घटित होता है। **कादम्बरी** के प्रारम्भ में बाण श्लोकों में अपने वंश की प्रशंसा करते हैं। मुख्य कथा, जो चन्द्रापीड और कादम्बरी से सम्बद्ध है, बाद में आती है। उनके अवतार के लिए शूद्रक की योजना की गयी है। वैशम्पायन नामक शुक शूद्रक की सभा में आकर **जाबालि** द्वारा कही हुई कथा कहता है। कादम्बरी का विभाजन परिच्छेदों में नहीं हुआ है।

अग्निपुराण के लक्षण में कर्तृवंश – प्रशंसा और कथान्तर की योजना का विशेष महत्त्व है। **भामह** ने इसका उल्लेख नहीं किया है।

अग्निपुराण में कदचित् बाण के रचनाओं को ध्यान में रखकर ही ये विशेष तत्त्व रखे गये हैं।

उपर्युक्त लेखकों एवं पौराणिक ग्रन्थों का कथा और आख्यायिका विशषय विभेद का अध्ययन करने पर निम्न लिखित निष्कर्ष निकलता है–

१. कथा में कथानक कवि कल्पित एवं आख्यायिका में ऐतिहासिक होता है।
२. कथा के शुभारम्भ में सज्जनों की प्रशंसा, दुर्जनों की निन्दा तथा कवि के वंश का वर्णन रहता है। आख्यायिका में प्राचीन कवियों की प्रशंसा तो शुभारम्भ में रहती है, पर कविवंश वर्णन गद्य में ही रहता है।

---

[1] श्लोकैः स्ववंशं संक्षेयात् कविर्यत्र प्रशंसति।।
मुख्यस्यार्थावताराप भवेद्यत्र कथान्तरम्।
परिच्छेदो न यत्र स्याद् भवेद्वा लम्भकैः क्वचित्।।
सा कथा नाम तद्गर्भे निबध्नीयाच्चतुष्पदीम्।
– अग्निपुराण – ३३७/१५–१७

३. कथा का सर्ग या उच्छ्वास आदि में विभाजन नहीं होता। आख्यायिका उच्छ्वास, निःश्वास या आश्वास आदि में विभाजित रहती है।

४. कथा में वक्त्र तथा अपवक्त्र छन्दों का प्रयोग नहीं होता है आख्यायिका में होता है।

५. कथा में एक अवान्तर प्रसंग से आरम्भ करके मुख्य कथा का उपक्रम किया जाता है। आख्यायिका में कवि अपना परिचय देकर उसके माध्यम से मुख्य कथा का आरम्भ करता है।

६. कथा में कन्याहरण, संग्राम, विप्रलम्भ, सूर्योदय, चन्द्रोदय आदि विषयों का वर्णन रहता है, पर आख्यायिका में नहीं।

७. कथा संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत या अपभ्रंश में भी रची जा सकती है, आख्यायिका संस्कृत में ही होती है।

८. कथा में लेखक किसी अभिप्राय से कुछ ऐसे विशेष शब्दों (catchwords) का प्रयोग करता है, जो कथा और आख्यायिका में भेद स्थापित करते हैं।

संस्कृत में कथा -साहित्य

परवर्ती साहित्य में कथाएं -

पञ्चतन्त्र -

कथा के उद्‌भव की दीर्घकालिक परम्परा में अनेक स्वतन्त्र संस्कृत कथा–गन्थों का प्रणयन हुआ, जिनमें आदि शुद्ध कथाग्रन्थ **विष्णुशर्मा**कृत **पञ्चतन्त्र** ३०० ई० है। इसके लेखक विष्णु शर्मा स्वयं चाणक्य ही थे। इसमें नीति कथा–साहित्य का महत्वपूर्ण एवं प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसकी कथाएं शिक्षाप्रद व मनोहर भी हैं। कथाओं के शीर्षक प्रायः श्लोकों में हैं, किन्तु भाषा

सरल, सुबोध, दीर्घ समास तथा श्लिष्ट–पद– रहित एवं प्रांजल है। बाइबिल के बाद संसार की सबसे अधिक प्रचलित पुस्तक पञ्चतन्त्र ही है।

बृहत्कथा –

मनोरंजक कथाओं का सबसे वृहत् संग्रह बृहत्कथा है। इसकी रचना **गुणाढ्य** ने की थी, जो महाराज **हाल** के राजकवि थे। अनेक विद्वदजनों ने इसकी रचनाकाल के विषय में अपने–अपने विचार प्रस्तुत किये। कतिपय विद्वान इसे पांचवी शती की तो कुछ प्रथम शती की रचना मानते हैं। पाश्चात्य विद्वान् **'ब्यूलर'** के अनुसार इसका समय ईशा की प्रथम या द्वितीय शताब्दी रहा है। परन्तु आधुनिक समीक्षकों के अनुसार इसका समय ७८ ई० सिद्ध होता है। मूल बृहत्कथा पैशाची भाषा में थी, परन्तु यह आज उपलब्ध नही है। वर्तमान में इसके तीन संक्षिप्त संस्करण प्राप्त होते हैं–

१. बृहत्कथा संग्रह २. बृहत्कथा मंजरी ३. कथासरित्सागर दण्डी के अनुसार यह गद्यात्मक थी। यह कथनसमीचीन लगता है।

वृहत्कथा के रूपान्तरों की तुलना से मूल बृहत्कथा के स्वरूप का आभास मिल जाता है। इस विशाल कथा–संग्रह का नायक **नरवाहनदत्त** है, जो कौशाम्बी के लोक–विश्रुत महाराज **उदयन** का पुत्र है। **नरवाहनदत्त** ने अनेक विवाह किये। देश–देशान्तरों तथा द्वीप–द्वीपान्तरों मे भ्रमण करते हुए यह साहसी प्रेमी राजकुमार जहाँ पहुँच जाता वहाँ किसी न किसी प्रेम प्रसङ्ग में उलझकर विवाह द्वारा अपनी यात्रा को सफल बनाता है। इन यात्राओ व प्रेमप्रसंगों के बीच नरवाहनदत्त को जिन विपत्तियों का सामना करना पड़ता और जिस शौर्य एवं साहस के साथ उन पर विजय पाता, उन सबकी कथाएं मूल बृहकथा में बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत की गयी होगी। अवान्तरकालीन कथा–साहित्य के ऊपर

बृहत्कथा का प्रभाव विशेष रूपेण पड़ा है। लोकप्रिय कहानियों का प्राचीनतम ग्रन्थ होने के अतिरिक्त यह भारतीय साहित्य व कथा को सामग्री देने वाला विशालतम भण्डार है। **सुबन्धु, दण्डी, बाण, धनञ्जय, त्रिविक्र॰ भट्ट** आदि महाकवियों तथा साहित्य–शास्त्रियों ने ग्रन्थ की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। बाण ने बृहत्कथा के लिए लिखा है–

समुद्रदीपितकन्दर्पा कृतगौरी प्रसाधना।

हरलीलेव लोकस्य विस्मयाय बृहत्कथा।।

"काम को उद्दीप्त करने वाली, भगवती गौरी को प्रसन्न करने वाली बृहत्कथा हरलीला के समान संसार को विस्मित करने वाली है।"

बृहत्कथा के कश्मीरी संस्कृत–रूपान्तरों में आरम्भ में बृहत्कथा रचयिता गुणाढ्य की कथा भी दी हुई है, जिसके अनुसार गुणाढ्य का जन्म प्रतिष्ठान में हुआ था और इन्होंने विन्ध्याचल वन में कालभूति नामक एक पिशाच से कथाएं सुनकर उनको पैशाची प्राकृत में मूलतः सात लाख श्लोकों में निबद्ध किया था। जिनमें से केवल एक लाख पद्य सुरक्षित रखे जा सके। प्रतिष्ठान नरेश **सातवाहन** ही, गुणाढ्य के आश्रयदाता प्रतीत होते हैं।

बृहत्कथा का जैन परम्परा में भी **वसुदेव, हिण्डी,** के नाम से प्राकृत रूपान्तर किया गया था, जिसके कर्ता **संघदासगणि** थे।

इसके तीन संस्कृत अनुवाद उपलब्ध हैं –

बृहत्कथा श्लोक संग्रह -

यह कथा संग्रह अपूर्ण ही प्राप्त होता है। वर्तमान समय में इसके २८ सर्ग तथा ५२५ पद्य मिलते हैं। इस कृति की रचना नेपाल के बुधस्वामी द्वारा आठवीं या नवीं शताब्दी में की गई। उक्त ग्रन्थ का केवल एक खण्ड मात्र

उपलब्ध है। बुद्ध स्वामी ने अपने कवि–कौशल से कथा में जीवन के प्रति उनकी उल्लासपूर्ण दृष्टि, उनके द्वारा साहसपूर्ण और अद्भुत कार्यों का विचित्र अथवा उनके सुचित्तित पात्रों का प्रेममय वातावरण और तीव्रता से परिवर्तनशील चित्रण की छटा को दर्शनीय बना दिया है। अलङ्कारों का कवि ने सर्वाधिक प्रयोग किया है।

बृहत्कथा मंजरी -

कश्मीरी नरेश **अनन्तदेव** के आश्रित विद्वान् **क्षेमेन्द्र** ने १०६३–१०६६ ई० में इस ग्रन्थ की रचना की थी। उसकी रचना को बृहत्कथा का संक्षिप्त रूप कहा जा सकता है। **डॉ० कीथ** ने लिखा है[1] " भारत मंजरी और रामायण मंजरी के समान क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा मंजरी भी संभवतः उनके यौवनकाल की रचना है।" क्षेमेन्द्र में बड़ी कथा को संक्षेप में प्रस्तुत करने की कथा है। इनकी कथा मंजरी ७५०० पद्यों में निबद्ध है। यह कथा अठारह लम्बकों में विभक्त थी।

वेताल पञ्चविंशतिका :-

क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा मञ्जरी व सोमदेव के कथासरित्सागर से प्रेरणा लेकर **श्री शिवदास** ने इस ग्रंथ को लिखा। इसके दो रूप हैं – इसे गद्य–पद्य रूप में लेखक शिवदास ने १२०० ई० में रचा इसमें २५ कौतूहलपूर्ण कथाएं हैं। जो राजा **विक्रमादित्य** के जीवन से सम्बद्ध है, वेताल के पहेलियों जैसे प्रश्न टेढ़े हैं, राजा के उत्तर भी उतने ही चकित करने वाले हैं इस कथा की रचना शैली सरल, मनोहर व अलंकारयुक्त है। एक प्रतिमान अनुप्रास भी सुन्दर है –

"स धुर्जटि जटाजूटो जायतां विजयावहः।
यत्रैक पलितभ्रान्तिं करोत्यद्यापि जाह्नवीं।।"

---

[1] सं०सा० का इतिहास – कीथ – अनु० मंगलदेव शास्त्री

अर्थात – "शिव की उन जटाओं का जूट तुम्हारे लिए विजयप्रद हो, जिनमें जान्हवी आज भी एक श्वेत बाला की भ्रान्ति को उत्पन्न करती हैं।"

वेतालपञ्चविंशतिका की कथाओं से मनुष्य को यही शिक्षा मिलती है कि सफलता की कामना करने वाले व्यक्ति को जीवन में विषमशील परिस्थितियों के आने पर भी धैर्य व साहस का परित्याग कदापि नहीं करना चाहिए।

<u>सिंहासनद्वात्रिंशिका</u> –

इसे **द्वात्रिंशत्पुत्तलिका** अथवा **विक्रमचरित** नाम से भी जाना जाता है। राजा विक्रमादित्य **भोज** को उसके सिंहासन पर बैठने से पूर्व राजा **विक्रम** का चरित्र सुनाकर उसे उस स्थान के योग्य होने का संकेत देती है। यदि विक्रमादित्य के समान गुणों से युक्त हो, तो उस सिंहासन पर बैठने का साहस करें, अन्यथा नहीं। इसका रचना काल १०१७–१०६३ ई० के बाद स्वीकार किया जाता है। सम्बन्ध नायक की विजयों से है। बृहत्कथा मञ्जरी में बीच–बीच में सुन्दर वर्णनों का समावेश भी किया गया है।

<u>कथासरित्सागर</u> –

कथा सरित्सागर को बृहत्कथा के विकास की अन्तिम कड़ी माना जाता है। यथा नाम तथा गुण के अनुसार यह वस्तुतः कथाओं का समुद्र है। इसमें १८ लम्भक, १२४ तरंग तथा २१३८८ पद्य है। इसके रचयिता **सोमदेव** हैं। इसकी रचना १०६३ ई० से १०८१ ई० के मध्य मानी जाती है। कथासरित्सागर को कश्मीर के एक ब्राह्मण राम के पुत्र **सोमदेव** ने जाल–धर की एक रानी, अनन्त की पत्नी और कलश की माता सूर्यमती के शोकाकुल चित्त को बहलाने के उद्देश्य से लिखा है। इसमें शठों एवं धूर्तों तथा स्त्री –चरित्र की कहानियों

की प्रचुरता है। सोमदेव ने इसी ग्रन्थ की अन्तिम प्रशास्ति में इस प्रकार विशद रूप से कहा है–

नानकथामृतस्य बृहत्कथाया: सारस्य सज्ज्नमनोम्बुधिपूर्णचन्द्र: ।

सोमेन विप्रवरभूरि गुणाभिरामरामात्मजेन विहित: खलु संग्रहोऽयम् ।।

अर्थात यह अनेक कथाओं के अमृत की खान बृहत्कथा नामक ग्रन्थ का सार है।

शुक-सप्तति -

७० कथाओं का अत्यधिक रोचक संग्रह हैं – शुक्र–सप्तति। इस कथा संग्रह के मूल लेखक के बारे में कोई सूचना नहीं मिलती हैं। इसमें दो संस्करणोंमें से एक के रचयिता **चिन्तामणि भट्ट** तथा दूसरे के कोई श्वेताम्बर जैन मुनि जान पड़ते हैं। प्रसिद्ध जैन **आचार्य हेमचन्द्र** (११ वीं शती ई०) शुक सप्तति से परिचित प्रतीत होते हैं। अत: इसका मूल रूप ग्यारहवीं शती से पहले मानना ही उचित प्रतीत होता है। इसका फारसी अनुवाद १४वी शताब्दी ई० में हुआ। अत: इसकी रचना इससे पूर्व हो चुकी थी।

इसका कथानक एक युवक मदनसेन से सम्बन्धित है, जो अपनी पत्नी पर आसक्त है। जब कार्यवश वह परदेश जाता है, तो उसकी पत्नी कामार्त होकर परपुरूष का संग करने के लिए उत्सुक होती है, किन्तु अपने बुद्धिमान शुक की सहमति प्राप्त करना चाहती है। शुक उससे प्रतिज्ञा करा लेता है, कि वह पहले उन सब आपत्तियों का प्रबन्ध कर लेगी जो पर–पुरुष के संगम करने से सम्भव हैं। इसी प्रसंग में वह स्त्री उपाय पूछती है, तो शुक ७० कथाएं ७० रात्रियों में सुनाकर उसे परपुरुष गमन से रोके रखता है। इसके उपरान्त उसका पति आ जाता है।

इन कथाओं का वक्ता शुक है, श्रोता मैना। इसमें स्त्रियों की धूर्तता, कपटाचरण तथा त्रियाचरित्र का विवेचन सरल तथा रोचक शैली में किया गया है।

द्वितीय अध्याय

बाण भट्ट का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

बाणभट्ट का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

बाणभट्ट का जीवन वृत्तान्त -

सरस्वती के वरद पुत्र **'वश्यवाणी कविचक्रवर्ती'** बाणभट्ट का हर्षचरित के आरम्भिक दो उच्छ्वासों में आत्मवृत्त वर्णित है। कादम्बरी के कुछ श्लोकों में भी कविवंश का वर्णन है।

प्रस्तावना के उपरान्त प्रथम उच्छ्वास में बाण ने अपने वंश का वर्णन तथा यौवनपर्यन्त अपने जीवन का चित्रण करते हैं। वे अपने वंश को सरस्वती से सम्बद्ध करते हैं। एक बार ब्रह्मलोक में दुर्वासा ने मंत्रों का अशुद्ध उच्चारण किया जिस पर सरस्वती को हंसी आ गई। दुर्वासा के क्रुद्ध होकर उन्हें मर्त्यलोक में जाने का श्राप दे दिया। मृत्युलोक में आकर **सरस्वती** शील नदी के तट पर अपनी सखी सावित्री के साथ रहने लगी। एक दिन **सरस्वती** ने घोड़े पर चढ़े हुए च्यवन ऋषि के पुत्र **दधीच** को देखा। दोनों परस्पर आकृष्ट हो गये। उनके सम्मिलन से सरस्वती के **'सारस्वत'** नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। शाप की समाप्ति पर **सरस्वती** तो वापस ब्रह्मलोक को चली गई और दधीच सारस्वत के पालन–पोषण के लिए अक्षमाला नामक एक ऋषि–पत्नी नियुक्त करके तपस्या के अर्थ के लिए वन में चले गये। **अक्षमाला** के एक और पुत्र था 'वत्स' । इसी वत्स के साथ सारस्वत का पालन हुआ। वत्स से **वात्सायन वंश** चला जिसमे बाण उत्पन्न हुए।[1] बाणभट्ट ने अपने वंश का परिचय कादम्बरी में १० – १६ श्लोक तक किया है।

---

[1] कादम्बरी (प्रथमोभागः) सम्पादक– डा० श्रीनिवास शास्त्री पृ० २३–२४ साहित्य भण्डार सुभाष नगर, मेरठ।

सातों भुवन शुभ्र बना दिये गये थे उन्हीं चित्रभानु से बाण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।[1]

बाण भट्ट का वंशानुक्रम संक्षेप में निम्नलिखित रूप में दिखलाया जा सकता है–
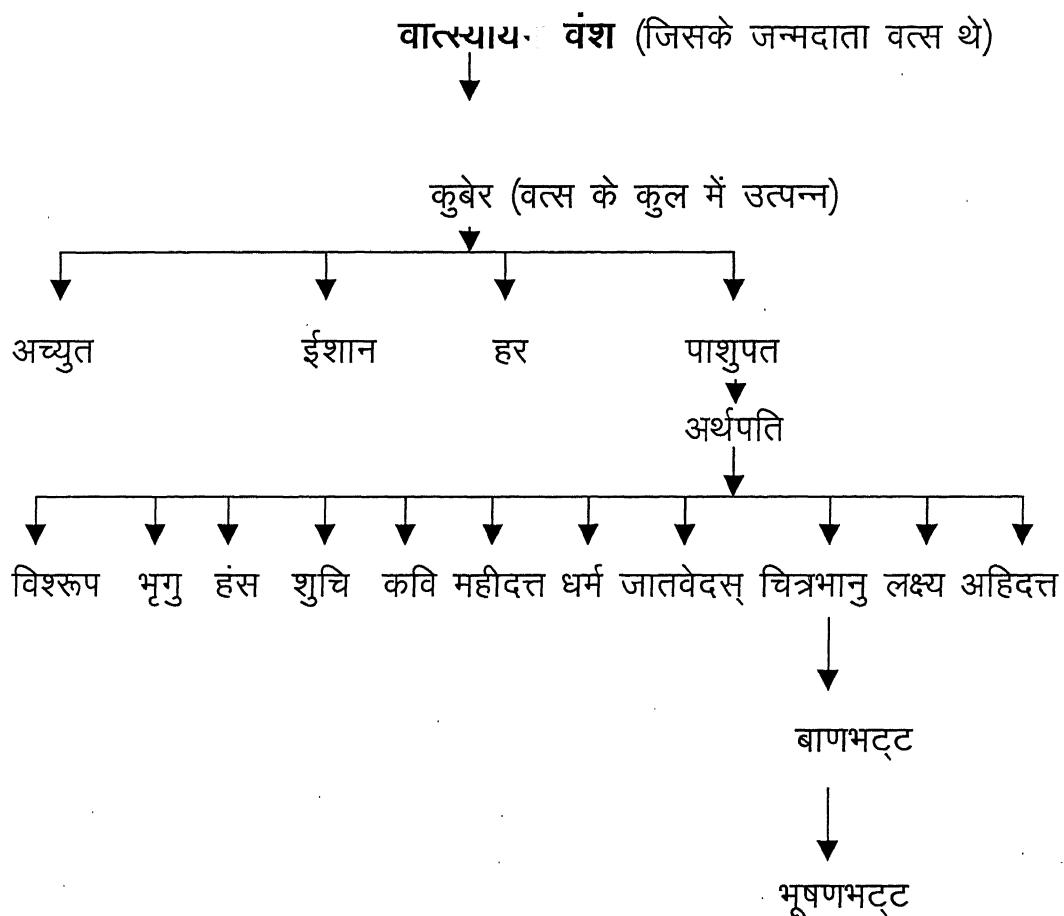
यह वंशवृक्ष **हर्षचरित**(११ १८–१६) के आधार पर है। बाणभट्ट के पिता का नाम चित्रभानु तथा माता का नाम राजदेवी था।[2]

---

[1] सरस्वतीपाणिसरोजसम्पुट– प्रमुष्टहोमश्रमसीकराम्भसः।
यशोऽशुक्लीकृतसप्तविष्टपात्ततः सुतो बाण इति व्यजायत।।
– कादम्बरी कथामुखम्, श्लोक–१६, पृष्ठ–८१

[2] 'अलभत च चित्रभानुस्तेषां मध्ये राजदेव्यभिधानायां ब्राह्मव्यां बाणमात्मजम्'
– हर्ष० १/१६

उनकी माता का देहान्त उनकी बाल्यावस्था में ही हो गया इनके बाद उनके पिता ने उनका पालन–पोषण किया।[1]

श्रुति–स्मृति–विहित ब्राह्मणोचित कर्मो का सम्पादन करके उनके पिता चित्रभानु भी परममोक्ष को प्राप्त हो गये। उस समय बाण चौदह वर्ष के थे।[2] उस समय बाण का समावर्तन–संस्कार हो चुका था। विवाह के साथ–साथ दो एक पहले ही समावर्तन–संस्कार कर लेने का जो रिवाज है, उसके अनुसार ज्ञात होता है कि पिता के सामने ही बाण का विवाह हो गया था। समावृत्त पद में ही विवाह का भी अन्तर्भाव है। हर्ष के साथ पहली भेंट में उसने आत्मासम्मान के साथ कहा था – स्त्री का पाणिग्रहण करने के बाद से ही मैं नियमित गृहस्थ रहा हूँ।

(दारपरिग्रहादभ्यागारिकोऽस्मि, ७६)

पिता की मृत्यु से बाण अधिक चपल हो गये परन्तु दुःखी और शोकसंतप्त रहकर कुछ दिन घर में ही बिताया। शनैः–शनैः शोक कम हुआ तब बाण की स्वतन्त्र प्रकृति ने जोर मारा। वह उनके यौवनारम्भ का समय था, बुद्धि परिपक्व न हुई थी–

धैर्यप्रतिपक्षतया यौवनारम्भ.................... हर्षचरित ४१

---

[1] "स बाल एव विधेयर्बलवतो वशादुपसम्पन्नया व्ययुज्यत जनन्या।
जातस्नेहस्तु नितरां पितैवास्य मातृतामकरोत्।। "

– हर्ष० १/१६

– बाणभट्ट का साहित्यिक अनुशीलन पृ० ८

[2] "कृतोपनपनादिक्रियाकलापस्य समावृत्तस्य चतुर्दशवर्षदेशीपस्य पितापि श्रुतिस्मृतिविहितं कृत्वा द्विजजनोचितं निखिलं पुण्यजातं कालेनादशमीस्थ एवास्तमगात्।"

– हर्ष ० १/१६

– बाणभट्ट का साहित्यिक अनुशीलन पृ० ८

अल्हड़पन के कारण स्वभाव में चपलता थी और मन में नई–नई बातें जानने का कुतूहल था। पिता के न रहने से एकाएक जो छूट मिली उससे नियमित जीवन में कमी आयी और अविनय या अनुशासनहीनता बढ़ गयी। फल यह हुआ कि वह 'इत्वर' (आवारा) हो गया। इत्वर का अर्थ शंकर ने गमनशील किया है। मूल में वैदिक शब्द था जो **'इण् गतौ'** धातु से बनाया गया था। क्रमशः इसका अर्थ गमनशील से चंचल और अधमी हो गया। हिन्दी की इतराना धातु इसी से बनी है। बाण का अभिप्राय यहाँ इत्वर से अपने आवारापन की ओर इशारा करने का है। बाण की आर्थिक स्थिति अच्छी थी। ब्राह्मणों के यहॉ जैसा चाहिए वैसा पिता–पितामह का उपार्जित धन घर में था।[1]

उनकी पढाई का सिलसिला भी जारी था–

(सति च अविच्छिन्ने विद्याप्रसंगे)[2]

भ्रमणोपरान्त लौटकर अपने गाँव आया तो उसने अध्ययन–अध्यापन और छात्रसमूह के विषय में स्वयं विशेष रूप से प्रश्न पूछे। व्याकरण, न्याय, मीमांसा, काव्य, कर्मकाण्ड और वेदपाठ, इतने विषयों की पढ़ाई तो नियमित रूप से प्रीतिकूट गाँव में होती है किन्तु तूफानी स्वभाव के कारण ये सब सुविधाएं भी बाण को घर में रोककर न रख सकी। वह लिखता है। – जैसे किसी घर पर ग्रहो की बाधा सवार हो वैसे ही स्वच्छन्द मन और नवयौवन के कारण स्वतन्त्र होकर मैं घर से निकल पड़ा। मेरे मन को तो देशान्तर देखने की इच्छा ने जकड़ लिया था।[3]

---

[1] सत्सु अपि पितृपितामहोपात्तेषु ब्राह्मणजनोचितेषु विभवेषु ....हर्ष० ४२

– हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन पृष्ठ २६

[2] कादम्बरी – एक सांस्कृतिक अध्ययन पृष्ठ १५

[3] देशान्तरालोकनाक्षिप्तहृदयः – ४२ हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन पृष्ठ २७

इस पर सबने मेरी खिल्ली उड़ाई।[1]

बाण की देशान्तर देखने की जो उत्कट लालसा मन में थी वह हल्का कुतूहल न रहकर ज्ञानवृद्धि का कारण बन गयी।

अपने इस प्रवास में बाण ने चार प्रकार के सामाजिक स्तरों के अनुभव लिए।

१. एक तो बड़े–बड़े राजकुलों का हाल–चाल लिया, जहाँ अनेक तरह के उदार व्यवहार देखने को मिले।

२. दूसरे प्रसिद्ध गुरूकुल या शिक्षा केन्द्रों में उसने समय बिताया (गुरूकुलानि सेवमानः)। बाण अपने प्रान्त के ही विश्वविश्रुत महान् गुरूकुल नालन्दा में भी गये थे और वहाँ के विद्याक्रम की व्यवस्था का अनुभव किया हो।

३. तीसरे गुणवानों और कलावन्तों की गोष्ठियों में उपस्थित होकर (उपतिष्ठमानः) उनकी मूल्यवान, गहरे पैठनेवाली और बुद्धि पर धार रखने वाली चोखी चर्चाओं से लाभ उठाया। (महार्हालाप गम्भीर गुणवद् गोष्ठीः)

४. चौथे उसने उन विदग्धमंडलों का भी डूबकर (गाहमानः) रस लिया।

बाण की व्यक्तित्व चार प्रकार की प्रवृत्तियों से मिलकर बना था। एक तो उनके स्वभाव में रईसी का पुट था, दूसरे वंशोचित विद्या की प्रवृत्ति थी।[2] तीसरे साहित्य और विविध कलाओं से अनुराग था, चौथे मन में वैदग्ध या छैलपन का पुट था। बाण के स्वभाव की सजीवता, स्नेहता की पटरी **भारतेन्दु हरिश्चन्द्र** के साथ बैठती है।

---

[1] अगाच्च निरवग्रहों ग्रहवानिव नवयौवने स्वैरिणा मनसा महताम् उपहास्यताम्।

– ४२ हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन पृष्ठ २७

[2] वैपश्चितीमात्मवंशोचितां प्रकृतिमभजत्,

– ४३ हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन पृष्ठ २७

बाण ने लिखा है कि बालमित्रमंडली में फिर लौटकर मुझे जैसे मोक्ष का सुख मिला– (बालमित्रमंडलस्य मध्यगतः मोक्षसुखमिवान्वभवत् , ४३)

बाण का मित्रमंडल काफी बड़ा था। चवालीस व्यक्तियों के नाम उन्होंने गिनाए हैं। उनमें सुहृद और सहाय तो प्रकार के लोग थे। (वपसा समानाः सुहृदः सहायाश्च)। इस मंडली में चार स्त्रियाँ भी थीं।

बाण के मित्रों की यह सूची उस समय के एक सुसंस्कृत नागरिक की बहुमुखी रुचि और सांस्कृतिक साधनों का परिचय देती है। उसके कुछ मित्रों का सम्बन्ध कविता और विद्या से था, कुछ का संगीत और नृत्य से, और कुछ मनोरंजन के सहायमात्र थे। साथ ही कुछ प्रतिष्ठित परिचारकों के रुप में थे। इस मित्रमंडली की सूची इस प्रकार है–

(अ) कवि और विद्वान्

१. भाषा–कवि ईशान जो कि बाण का परम मित्र था। भाषा–कवि से तात्पर्य लोकभाषा में गीतों के रचना करने वाले से हैं।

२. **वर्णकवि** वेणीभारत। शंकर के अनुसार गाथा छन्द में गीत रचने वाले कवि से तात्पर्य है।

३. प्राकृत भाषा में रचना करने वाले कुलपुत्र वायुविकार।

४. –५. **अनंगबाण** और **सूचीबाण** नामक दो बन्दीजन।

६.–७. **वारबाण** और **वासबाण** नामक दो विद्वान् । संभवतः दर्शन–शास्त्र आदि विषयों के ज्ञाता विद्वान् पद से अभिप्रेत हैं।

८. पुस्तकवाचक सदृष्टि जिसका कंठ बहुत मधुर था।

९. लेखक **गोविन्दक।**

१०. कथक **जिनसेन।** पेशेवर कहानी सुनाने वालों का उस समय अस्तित्व इससे सूचित होता है।[1]

(आ) कला

११. चित्रकृत वीरवर्मा।

१२. स्वर्णकार (कलाद) चामीकर।

१३. हैरिक सिन्धुषेण। शंकर ने सुनारों के अध्यक्ष को हैरिक कहा है, किन्तु हमारी सम्मति में हैरिक से तात्पर्य हीरा काटने वाले या बेगड़ी से है।

१४. पुस्तकृत कुमारदत्त। उस समय में पुस्तकर्म का अर्थ था मिट्टी के खिलौने बनाना, जैसाकि अन्यत्र बाण ने कहा भी है। **(पुस्तकर्मणां पार्थिव विग्रहाः ७८)**[2]

(ई) संगीत और नृत्य[3]

१५. **मार्देगिक** जीमूत। मार्देगिंक = मृदंगिया या परवावजी। राजघाट से प्राप्त खिलौनों में मृदंगियों की कई मूर्तियां मिली है।

१६. –१७. वांशिक या वंशी बजाने वाले मधुकर और पारावत।

१८. **दार्दुरिकः** दर्दुरनामक घटवाद्य बजाने वाला दामोदर।

१९. –२०. गवैये **सोमिल** और **ग्रहादित्य।**

२१. गान्धर्वोपाध्याय दर्दुरक।

२२. लासक युवा नर्तक तांडविक।

२३. नर्तकी हरिणिका।

---

[1] हर्षचरित – एक सांस्कृतिक अध्ययन पृष्ठ– २७–२८

[2] हर्षचरित – एक सांस्कृतिक अध्ययन पृष्ठ– २८–२९

[3] शिलालि आचार्य नटसूत्रों के प्रवर्तक थे। पाणिनि में उनका उल्लेख आया है (४–३–११०)। उनका सम्बन्ध ऋग्वेद की शाखा से था।

२४. शैलालि युवा भरतनाट्य करने वाला शिखंडक।

(उ) साधु-सन्यासी[१]

२५. शैव **वक्रधोल।**

२६. **क्षपणक** (जैन साधु) **वीरदेव।**

२७. **मस्करी** (परिव्राजक) **ताम्रजूड़**।

२८. पाराशरी सुमति। बाण ने कई स्थलों पर पाराशसी भिक्षुओं का उल्लेख किया है। पाराशर्य व्यास के विरचित भिक्षुसूत्र या वेदान्तदर्शन का अभ्यास करने वाले भिक्षु पाराशरी कहलाते थे।

२९. कात्यायनिका (बौद्ध भिक्षुणी) चक्रवाकिका।

(ए) धूर्त[२]

३०. आक्षिक (पासा खेलने वाला) आखंडल।

३१. चकोराक्ष।

३२. कितव (धूर्त) भीमक।

(ऐ) वैद्य और मंत्रसाधक[२]

३३. जांगुलिक (विषवैद्य या गारुड़ी) मयूरक।

३४. भिषग्पुत्र मंदारक।

३५. मंत्र साधक कराल।

३६. धतुवाद विद् (रसायन या कीमिया बनाने वाला) विहंगम।

३७. असुर विवरण्यसनी लोहिताक्ष। असुर विवर–साधन का बाण ने कई बार उल्लेख किया है। (१९६)। असुरविवर का ही दूसरा नाम पाताल विवर था

---

[१]–[२] हर्षचरित – एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० २८–२९

[२] हर्षचरित – एक सांस्कृतिक अध्ययन पृष्ठ– २८–२९

जिसका उल्लेख पुरातन–प्रबन्ध –संग्रह के विक्रमार्क प्रबन्ध में है। इस प्रकार की कहानियों का मुख्य अभिप्राय पाताल में घुसकर किसी यज्ञ या राक्षस को सिद्ध करके धन प्राप्त करना था।

(ओ) परिचारक[१]

३८. ताम्बूलदायक चंडक।

३६. सैरन्ध्री (प्रसाधिका) कुरंगिका।

४०. संवाहिका केरलिका।

(औ) प्रणयी (स्नेही आश्रित)

४१. –४२. रूद्र और नारायण।

(अं) पारशव बन्धु- युगल[२]

४३.–४४. **चन्द्रसेन** और **मातृषेण**। पारशव अर्थात् शूद्रा माता से उत्पन्न द्विजपुत्र। इनमें चन्द्रसेन बाण का अत्यन्त प्रिय और विश्वासपात्र था। कृष्ण के दूत **मेखलक** को ठहराने और उसकी भोजनादि की व्यवस्था का भार बाण ने इस चन्द्रसेन को ही सौपा था। ये सब बाण की सुहृदयमंडली के अभिन्न अंग थे। बाण ने इनका आगे भी उल्लेख किया है।

परिभ्रमण के उपरान्त बन्धु–बान्धवों के मध्य लौटने पर बाण की बहुत आवभगत हुई और वह अत्यन्त स्नेहपूर्वक चिरदृष्ट बान्धवों के यहाँ जाकर मिलते रहे।[३]

---
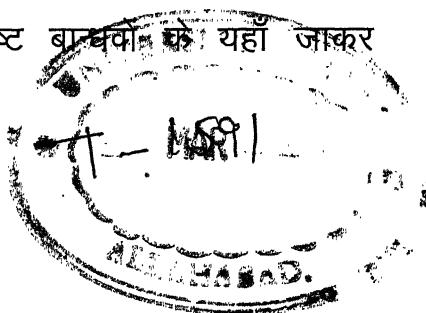
[१] हर्षचरित – एक सांस्कृतिक अध्ययन पृष्ठ– ३०

[२] हर्षचरित – एक सांस्कृतिक अध्ययन पृष्ठ– ३०

[३] महतश्व कालात्तामेव भूय आत्मानो जन्मभुवं ब्राह्माणाधिवासमगमत्, ४२
चिरदृष्टानां बान्धवानां प्रीपमाणो भ्रमन् भवनानि, ४४।
– हर्षचरित – एक सांस्कृतिक अध्ययन पृष्ठ– २६

इस सन्दर्भ में उस समय के विप्रो के गृहों का अति सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसमे दो बातें मुख्य हैं। एक तो अनेक शिष्यों का समुदाय वहाँ पढ़ने आता था। ये ब्राह्मण–भवन उस काल में पाठशालाओं का काम देते थे।[1] दूसरे यज्ञीप कर्मकांड का इस समय पुनः प्रचार बहुत बढ़ा हुआ ज्ञात होता है।

अध्ययन – अध्यापन के संबध में शुकसारिकाओं का वर्णन बाण ने कई स्थान पर किया है। कादम्बरी की भूमिका के श्लोक में लिखा है कि 'सारिकाओं सहित पिंजरे में रहने वाले तथा चतुर्दशविद्यात्मक समग्र वाङ्मय को जिह्वाग्र भाग पर रखने वाले शुकों द्वारा पद–पद पर संत्रस्त बनाये गए अर्थात् टोके गये ब्रह्मचारी शिष्यगण जिस कुबेर के घर में सशङ्क होकर यजुर्वेद एवं सामवेद पढ़ते थे।[2]

ग्रीष्मकाल में जब बाण खा–पीकर निश्चिन्तता से बैठे थे तो दोपहर के बाद **पारशव** भ्राता **चन्द्रसेन** ने चतुः समुद्राधिपति, सब चक्रवर्तियों में धुरन्धर, महाराजधिराज परमेश्वर **श्री हर्षदेव** के भाई **कृष्ण** का संदेश लेकर दूत के आने का समाचार दिया। बाण ने तुरन्त उसे अन्दर लनि के लिए कहा। इस दूत का नाम **मेखलक** था । उसे लेखहारक और दीर्घाध्वग भी कहा गया है।

बाण ने उसे देखकर दूर से ही पूछा, 'सबके निष्कारण बन्धु **कृष्ण** तो कुशल से हैं ?' 'हाँ कुशल से हैं।' – यह यहकर प्रणाम करने के बाद मेखलक समीप ही बैठ गया और सिर से लेख खोलकर बाण को दिया। बाण ने सादर लेकर स्वयं पढ़ा। उसमें लिखा था– 'मेखलक से संदेश समझकर काम को

---

[1] अनवरताध्ययन ध्वनिमुख – हर्षचरित – एक सांस्कृतिक अध्ययन पृष्ठ– २६

[2] जगुर्गृहेऽभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः संसारिकैः पञ्चरवर्त्तिभिः शुकैः।
निगृह्यमाणा बटवः पदे–पदे यजूंषि सामानि च यस्य शङ्किताः।।
– कादम्बरी कथामुखम् भूमिका श्लोक–१२ पृ०–७२

बिगाड़ने वाली देरी मत करना। आप बुद्धिमान् हैं, पत्र में इतना ही लिखा जाता है, शेष मौखिक संदेश से ज्ञात होगा।' लेख का तात्पर्य समझकर बाण ने परिजनों को हटा दिया और संदेश पूछा। मेखलक ने कृष्ण की ओर से कहा– मैं तुमसे बिना कारण ही अपने बन्धु की तरह प्रेम करता हूँ। तुम्हारी अनुपस्थिति में दुर्जन लोंगो ने सम्राट को तुम्हारे विषय में कुछ और सिखा दिया है, पर वह सत्य नहीं। सज्जनों में भी ऐसा कोई नहीं जिसके मित्र, उदासीन और शत्रु न हो। ऐसे बहुत से मूर्खों से एक–सी बात सुनकर सम्राट ने अपना मत स्थिर कर लिया है। और वे कर भी क्या सकते थे ? किन्तु मैं सत्य की टोह में रहता हूँ, तुम्हारे दूर होने पर भी तुम्हें प्रत्यक्ष की तरह[१] जानता हूँ। तुम्हारे विषय में मैने सम्राट से निवेदन किया है कि सबकी आयु का प्रथम भाग ऐसी चपलताओं से युक्त होता है। सम्राट ने मेरी बात माना ली। इसलिए अब बिना समय गॅवाए आप राजकुल में आयें उन्हें सुनकर **बाण** ने अपने पारशवमित्र **चन्द्रसेन** से कहा – 'मेखलक को भोजन कराओं और आराम से ठहराओ।'

रात्रिकालीन मे संध्योपासन के बाद जब बाण शय्या पर लेटे तो अकेले में सोचने लगे– 'अब मुझे क्या करना चाहिए ? अवश्य ही सम्राट को मेरे विषय में भ्रान्ति हो गयी है। मेरे अकारण–स्नेही बन्धु कृष्ण ने आने का संदेश भेजा है। बहुत विचार करने के उपरान्त बाण ने जाने का निश्चय किया।

दूसरे दिन प्रातः काल स्नान करके चलने की तैयारी की। श्वेत दुकूल वस्त्र पहनकर हाथ में माला ली और प्रास्थानिक सूत्र और मंत्रों का पाठ किया। शिव को दूध से स्नान कराकर पुष्प, धूम, गन्ध, ध्वज, भोग, विलेपन, प्रदीप आदि से पूजा की और परम भक्ति से अग्नि में आहुति दी। ब्राह्मणों को दक्षिणा बांटी,

---

[१] हर्षचरित– एक सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ वासुदेव शरण अग्रवाल उद्वास दूसरा पृ०–३५

प्रांङ्‌मुखी नैचिकी।[1] गऊ की प्रदक्षिणा की, श्वेत चन्दन, श्वेत माला और श्वेत वस्त्र धारण किया, गोरोचना लगाकर दूबनाल में गुथे हुऐ श्वेत अपराजिता[2] के फूलों का कर्णफूल कान में लगाया, शिखा में पीली सरसों रखी और यात्रा के लिए तैयार हुआ। बाण के पिता की छोटी बहन उसकी बुआ मालती ने प्रस्थान समय के लिए उचित मंगलाचार करके आशिर्वाद दिया, सगी बड़ी बूढ़ियों ने उत्साह –वचन कहे, अभिवादित गुरुजनों ने मस्तक सूंघा। फिर ज्योतिषी के कथनानुसार नक्षत्र–देवताओ को प्रसन्न किया। इस प्रकार शुभ मुहूर्त में हरित गोबर के लिए हुए आंगन के चौतरे पर स्थापित पूर्व कलश के दर्शन करके, कुलदेवताओं को प्रणाम करके, दाहिना पैर उठाकर बाण प्रीतिकूट से निकले। अप्रतिरथ सूक्त के मंत्रों का पाठ करते हुए और हाथ में पुष्प और फूल लिए हुए ब्राह्मण इसके पीछे–पीछे चले (५६–५७) । ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है कि पूजा–पाठ और मंगल–मनौती के विषय में उस समय जनता की मनःस्थिति कैसी थी। पूर्व कलश के विषय में इतना और कहा है कि उसके गले में सफेद फूलों की माला बंधी थी। उसके पिटार पर चावल के आंटे का पचांगुल थापा लगा हुआ था और मुँह पर आम्रपल्लव रखे हुए थे।

पहले दिन **चंडिकावन** पार करके **मल्लकूट** नामक गॉव में पड़ाव किया। **चंडिकावन** में देवी के स्थान के पास वृक्षों पर कात्यायनी की मूर्तियाँ खुदी हुयी थी जिन्हें आते–जाते पथिक नमस्कार करते थे, चंडिकावन की पहचान अब भी शाहाबाद जिले में सोन और गंगा के बीच में मिलनी चाहिए। मल्लकूट गॉव में

---

[1] नैचिकी – सदा दूध देने वाली, बरस–बरस पर ब्यानेवाली गऊ जिसके थनों के नीचे बछड़ा सदा चूँखता रहे। अथर्ववेद में इसे नित्यवत्सा कहा है। उसका ही प्राकृत रूप नैचिकी है। 'नैचिकी तूत्तमा गोषु', – हेमचन्द्र ४/३३६

[2] मूल शब्दगिरिकर्णिका – अश्वमुखी (शंकर) : हिन्दी कौवाठेठी।

बाण के परमप्रिय मित्र जगत्पति ने उसकी आवभगत की। दूसरे दिन गंगा पार करके यष्टिग्रहक नाम के बनगॉव में रात बिताई। फिर राप्ती (**अजिरवती**) के किनारे **मणितारा** नामक गॉव के पास हर्ष के स्कन्धावार या छावनी में पहुँचा। वहाँ राजभवन के पास ही ठहराया गया।

मेखलक के साथ स्नान–भोजनादि से निवृत्त होकर कुछ आराम करके जब एक पहर दिन अवशिष्ट था, तब राजा से मिलने के लिए **मेखलक** के साथ राजद्वार पर पहुँचे। बाण ने सर्वप्रथम राजा के दर्पशात हाथी को देखा। इसके बाद हर्ष को देखा। उन्हें देखकर बाण हर्ष के मारे अभिभूत हो गये। समीप जाकर उन्होंने हाथ उठाकर स्वस्ति शब्द का उच्चारण किया। उसी समय उत्तर दिशा की ओर समीप किसी गजपरिचारक के द्वारा पढ़ा जाता हुआ एक अपरवक्त्रं श्लोक सुनाई पड़ा। उसे सुनकर हर्ष ने बाण की ओर देखा और पूछा– 'यही वह बाण है (एष स बाणः) ? दौवारिक ने कहा– 'देव का कथन सत्य है। यही वे हैं।' इस पर हर्ष ने कहा– 'मैं इसे नहीं देखना चाहता जबतक यह मेरा प्रसाद[१] न प्राप्त कर ले।' यह कहकर अपनी दृष्टि घुमा ली, और पीछे बैठे हुए मालवराज के पुत्र[२] से कहा– यह भारी भुजंग[३] है। (**महानयं भुजंगः**)

महाराज हर्ष की बात सुनकर सब लोगों में सन्नाटा छा गया। मालवराजकुमार ने ऐसी मुद्रा बनाई जैसे वह कुछ समझा ही न हो।

वस्तुतः हर्ष का बाण के साथ प्रथम दर्शन में यह व्यवहार उचित नहीं कहा जा सकता। यह तीखा वचन सुनकर बाण तिलमिला उठे। बाण की

---

[१] प्रसाद– राजा की प्रसन्नता, उनसे मिलने – जुलने की अनुकूलता।

[२] मालवराज का यह पुत्र संभवतः माधवगुप्त था। कुमारगुप्त और माधवगुप्त दो भाई मालवराजपुत्र थे जो राज्यवर्द्धन और हर्ष के पार्श्ववर्ती बनाकर दरबार में भेजे गये थे।

[३] भुजंग गुंडा, लम्पर।

स्वतन्त्र प्रकृति थी और जो ब्रह्मतेज था, वह जाग उठा। क्षण भर चुप रहकर उसने हर्ष से काफी कड़े शब्दों में प्रतिपाद किया और अपने विषय की सच्ची स्थिति ब्यौरेवार कही– 'हे देव, आप इस प्रकार की बात कैसे कहते हैं, जैसे आपको मेरे विषय में सच्ची बात का पता न हो या मेरा विश्वास न हो, या आपकी बुद्धि दूसरो पर निर्भर रहती हो,[१] अथवा आप स्वयं लोक के वृत्तान्त से अनभिज्ञ हो। लोगों के स्वभाव और बातचीत मनमानी और तरह–तरह की होती है। लेकिन बड़ों को तो यथार्थ दर्शन करना चाहिए। आप मुझे साधारण व्यक्ति की तरह मत समझिये। मैने सोमयायी वात्स्यायन ब्राह्मणों के गुण में जन्म लिया है। उचित समय पर उपनयन आदि सब संस्कार मेरे किये गए। मैने सांगवेद भली प्रकार पढ़ा है और शक्ति के अनुसार शास्त्र भी सुने हैं। विवाह के क्षण से लेकर मैं नियमित गृहस्थ रहा हूँ। मुझमें क्या भुजंगपना है।[२] अवश्य ही मेरी नई आयु में कुछ चपलताएं हुई, इस बात से मैं इनकार न करूँगा, किन्तु वे ऐसी न थी जिनका इस लोक या उस लोक से विरोध हो। मैं इसका अपलाप नहीं करता। इससे मेरा हृदय पश्चाताप सा करता है। किन्तु अब सुगत बुद्ध के समान शान्तचित्त, मनु के समान वर्णाश्रममर्दाया के रक्षक, और यम के समान दंडधर आपके शासन में कौन मन से भी अविनय करने की सोच सकता है ? मनुष्यो की तो बात क्या, आपके भय से पशु–पक्षी भी डरते हैं।[३] अवसर आने

---

[१] यहाँ बाण ने 'नेय' शब्द का प्रयोग किया है। कालिदास ने 'नेय' का प्रयोग उसके लिए किया है जिसे अपने घर की समझ न हो और जो दूसरे के कहने पर चले(मूढ़ नये परप्रत्य बुद्धिः, मालविकाग्निमित्र)

[२] बाण के शब्द थे 'का में भुजंगता', जिसके तीन अर्थ है, १. मेरे जीवन में कौन–सी बात ऐसी है जिसे भुजंगता कहा जाये। २. भुजंगता उस व्यक्ति में रहती है जो कामी है, मुझमे नहीं। ३. मैने किस स्त्री का अपनी भुजाओं में आलिंगन किया है ?

[३] हर्षचरित २/३६

पर आप स्वयं मेरे विषय में सब–कुछ जान लेंगे, क्योंकि विद्वानों का यह स्वभाव होता है कि वे किसी बात में भी विपरीत हठ नहीं रखते।

इतना कहकर बाण चुप रह गये। बाण का एक–एक वाक्य विद्वान् की अविशंकता, खरी बात कहने का साहस, आत्मसम्मान और सत्यपरायणता से भरा हुआ है। हर्ष ने इसके जवाब में इतना ही कहा– 'हमने ऐसा ही सुना था'। और यह कहकर चुप हो गये। लेकिन सम्भाषण, आसन, दान आदि के प्रसार से अनुग्रह नहीं दिखाया, किन्तु अपनी स्नेहभरी दृष्टि से अन्दर की प्रीति प्रकट की। इस समय सन्ध्या हो रही थी और हर्ष राजाओं को विसर्जित करके अन्दर चले गए। बाण भी अपने निवास स्थान को लौट आए।

यद्यपि देव हर्ष ने बाण पर अनुग्रह नहीं किया, तथापि उनके हृदय में राजा के प्रति श्रद्धा घर कर गयी। शिविर से निकलकर वे मित्रो तथा बान्ध्वों के घर ठहरे। यह रात बाण ने स्कान्धावार में ही बिताई। रात को बाण सोचते हैं कि हर्ष सचमुच उदार है क्योंकि, यद्यपि उसने मेरी बालचपलता की अनेक निन्दाएं सुनी है फिर भी उसके मन में मेरे लिए स्नेह है। यद्यपि वे मुझसे अप्रसन्न होते तो दर्शन ही क्यों देते। वे मुझे गुणी और विद्वान देखना चाहते हैं। बड़ों की यही रीति है कि वे छोटों को बिना मुख से कहे ही केवल व्यवहार से विनय सिखा देते हैं। मुझे बारम्बार धिक्कार है यदि मैं अपने दोषों के प्रति अन्धा होकर केवल अनादर की पीड़ा अनुभव करके इस गुणी सम्राट के प्रति कुछ और सोचने लगूं। अवश्य ही अब मैं वह करुंगा जिससे वह कुछ समय बाद मुझे ठीक जान ले'।[१] मन में इस प्रकार दृढ़ प्रतिज्ञ होकर दूसरे दिन वह कटक से चला गया और अपने रिश्तेदारों के घर जाकर ठहर गया। कुछ दिनों में राजा हर्ष

---

[१] हर्षवर्धन २/८१

उनके स्वभाव से परिचित हो गये और उन पर प्रसन्न हो गये। उन्होंने पुनः राजभवन में प्रवेश किया। कुछ दिनों में राजा ने उन्हें प्रेम, विश्वास, मान, द्रविण आदि की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया।[१]

कुछ समय पश्चात् बाण बन्धुओं को देखने के लिए **प्रीतिकूट** पहुँचे। वहाँ उनका बहुत सम्मान हुआ। मध्याह्न के समय उठकर उन्होंने स्नाान आदि कृत्यों का सम्पादन किया। बाण के भोजनोपरान्त उनके बन्धु उन्हें घेर कर बैठ गये। इसी समय पुस्तक–वाचक सृदष्टि आया और श्रोताओं के चित्त को आकृष्ट करता हुआ वायुपुराण पढ़ने लगा। सुदृष्टि के श्रुति सुभग पाठ करने पर बन्दी सूचीबाण ने दो आर्याएं पढ़ी। उनको सुनकर बाण के चचेरे भाई गणपति, अधिपति, तारापति तथा श्यामल एक दूसरे को देखने लगे। श्यामल ने कहा– तात बाण, ययाति, पुरुरवा, नहुष, मान्धाता आदि राजाओं में दोष थे, पर राजा हर्ष कलंकरहित हैं। उनके विषय में बहुत सी आश्चर्ययुक्त बातें सुनायी पड़ती है। उनके बड़े–बड़े समारम्भ हैं। अतएव पुण्यराशि सुगृहीत –नामधेय हर्ष का चरित वंशक्रम से सुनना चाहते हैं। आप कहें, जिससे भार्गववंश राजर्षि के चरित श्रवण से शुचितर हो जाए।

इसके पश्चात् बाण हर्ष के चरित्र का वर्णन करते हैं।

बाण विवाहित थे।[२] बाण के एक पुत्र था, जिसका नाम भूषण भट्ट या पुलिनभट्ट था।[३] **डॉ० बूलर** का कथन है कि उनके पुत्र का नाम **भूषणभट्ट** था।[४]

---

[१] हर्षवर्धन २/३७

[२] हर्षवर्धन २/३६

[३] कीथ :– संस्कृत साहित्य का इतिहास (अनु० मंगलदेव शास्त्री) पृष्ठ ३७२

[4] Sec Kane's Introduction to the Harshacharita, Page 4

कादम्बरी कथा के कुछ हस्तलिखित प्रतियों में उनके पुत्र का नाम 'पुलिन्द' या 'पुलिन' प्राप्त होता है।[१]

धनपाल की **तिलकमञ्जरी** से यह संकेत प्राप्त होता है कि बाण के पुत्र का नाम पुलिन्ध्र था।[२] बाण के **चन्द्रसेन** और **मातृषेण** नामक दो पारशव भाई थे।[३]

बाण के गुरु का नाम **भत्सु** था।[४] 'भत्सोः' के स्थान पर **'भर्त्सो'**, तथा **भर्वो** पाठ भी मिलते हैं।[५] इससे उनके गुरु का नाम भर्त्सु या भर्वु सिद्ध होता है। महादेव **'भर्वोः'** के भरू के द्विवचन का रूप मानते हैं। महादेव के अनुसार बाण के गुरु का नाम भरु था।[६] बाण के गुरु का नाम भश्चु या भर्चु भी बताया जाता है।[७]

बल्लभदेव की सुभाषितावलि में भश्चु द्वारा निर्मित श्लोक उद्धत किये गये हैं।[८]

दुर्गासिंह के कर्नाटकपञ्चतन्त्र से ज्ञात होता है कि **'अवनिधवचक्रवर्ति-नरेन्द्रप्रवरहर्ष'** ने बाण को **'वश्यवाणीकविचक्रवर्ती'** की उपाधि प्रदान की थी।[९] इसका अर्थ है (वाणी जिनके वश में है, ऐसे कवियों में चक्रवर्ती) यह उपाधि बाण के लिए सम्यक्रूपेण उचित था।

---

[१] Ibid, Page 4

[२] 'केवलोऽपि स्फुरन्बाणः करोति विमलान् कवीन्।
किं पुनः क्लृप्तसंधानः पुलिन्दकृतसन्निधिः।।'
— तिलकमञ्जरी पृ० ४

[३] हर्षवर्धन १/१६

[४] 'नमामि भत्सोश्चरणाम्बुजद्वयं सशेखरैभौखरिभिः कृतार्च्चनम्।'
— कादम्बरी कथामुखम् पृ० ३

[५] Sec. Peterson's Notes on the Kadambari,Page 111

[६] S.V.Dixit – Banabhatt, His Life and Literature, page 7.

[७] ibid., P.7

[८] दृष्टव्य – सुभाषितावलि, श्लोक ५१३, ६३७ तथा १८३८

[९] S.V.Dixit – Banabhatt, His Life and Literature, page 7.

बाण विद्वान् भी थे और धनी भी। लक्ष्मी और सरस्वती का एक स्थान पर संगम विरल ही है पर बाण के बार में यह समन्वय विलक्षण है। उन्होंने घर का त्याग न धन प्राप्ति के लिए किया न विद्याध्ययन के लिए। सम्राट हर्ष की सेवा में रहने का कारण भी धन नहीं था। उनका अपार पाण्डित्य उनकी रचनाओं से स्पष्ट ही है।

इन्द्रायुध के समुज्ज्वल वर्णन के कारण उन्हें **'तुरङ्गबाण'** कहा जाता था।[१]

बाण के पास दैनिक उपभोग के लिए पर्याप्त धनराशि थी।[२] हर्ष ने भी उन्हें धन दिया था।[३]

अतएव बाण का जीवन आर्थिक दृष्टिकोण से सुखमय था।

बाणभट्ट का समय निर्धारण

संस्कृत वाङ्मय में कादम्बरी गद्य काव्य की चूड़ान्त रचना है। इस कालजयी कथा की रचना वाग्देवताकार बाणभट्ट ने की है। जहाँ तक बाणभट्ट के स्थिति–काल का सम्बन्ध है, वह तो ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वथा निश्चित ही है। बाण ने अपने आश्रमदाता सम्राट हर्षवर्धन का जीवन वृत्तान्त अपने आख्यायिका ग्रन्थ **'हर्षचरित'** में किया है। हर्षवर्धन एक निविरोध ऐतिहासिक व्यक्ति है, जो गुप्त राजवंश के पतन के बाद भारत के शासन क्षेत्र में उतरे। इतिहासानुसार **हर्षवर्धन का** शासन–काल **६००-६४६** तक रहा।[४]

---

[१] ibid, Page 7

[२] हर्षचरित १/१६

[३] हर्षचरित २/३७

[4] R.C.Majumdar and others : An Advanced History of India PP. 156 and 160.

अतएव उनका समय भी सपतम शतक निश्चित हो जाता है। ह्वेनसांग, जो **६२६** ई० से **६४५** ई० तक भारत में रहा, हर्षवर्धन और उसकी साम्राज्य व्यवस्था का उल्लेख करता है।[1] बाण ने **हर्षचरित** में हर्ष के जीवन के कुछ अंश पर साहित्यिक शैली में प्रकाश डाला है। **ह्वेनसांग**, के **हर्षचरित** के बारे में वर्णन तथा बाण के हर्षचरित के वर्णन की बराबरी करने से यह निश्चित हो जाता है कि दोनों के हर्ष एक हैं।[2]

इसी प्रकार **हर्षचरित** में **राज्यवर्धन** की मृत्यु के पश्चात सिंहनाद ने हर्ष को प्रेरित किया है।[3]

बाणभट्ट के समय के विषय में विद्वद् समाज में परस्पर विरोध नहीं है। बहिः साक्ष्य तथा अन्तः साक्ष्य के आधार पर भी बाण का यही समय (सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध) निश्चित होता है। सर्वप्रथम बहिः साक्ष्य के नींव पर निरूपण किया जा रहा है।

प्रकाशवर्ष अपनी रचना रसार्णवालंकार में बाण का उल्लेख करते हैं।[4] इनकी स्थिति काल **६५० ई०** तथा **७५० ई०** के मध्य में निश्चित किया जाता है।[5]

---

[1] Kane's Indtroduction of the Harshacharita, Page 6.

[2] "The opinion of the people as shown in their real submission to your eminent arivalities, Reign, then, with glory over the land; conqrier the enemies of your family; wash out the insult bid on your Kingdom and deeds of your illustrious father, great will your merit be in such a case, we pray you reject not our prayer." Si-yu-ki (Tr. by Samuel Beal) Vol. 1, P. 211.

[3] हर्षवर्धन ६/४५–४७

[4] "यादृग्गद्यविधौ बाणः पद्यबन्धे न तादृशः।

– रसार्णवालंकार, ३/८७

See supplement to 1HQ, March, 1929, Vol. V

[5] See supplement to 1HQ, March, 1929, Vol. V .P.10

वामन जिनका समय ८०० ई० के लगभग माना जाता है।[1] अपनी रचना काव्यालंकार सूत्रवृत्ति में कादम्बरी से उद्धरण देते हुए लिखा है–

"अनुकरोति भगवतों नारायणस्य" इत्यत्राणि मन्ये 'स्म' शब्द, कविना प्रयुक्तों लेखकैस्तु प्रमादान्न लिखित इति।"

– काव्यलंकार सूत्रवृत्ति, पञ्चम अधिकरण, द्वितीय अध्याय पृ० ३२६

कादम्बरी कथासार के रचयिता **अभिनन्द** ने कादम्बरी की कथा श्लोक बद्ध की है। इनका समय **नवम शताब्दी ई०** का पूर्वार्द्ध है।[2]

धनञ्जय १००० ई० के 'दशकरूपक' में बाण का उल्लेख किया गया है।[3] धनञ्जय मालवा के परमार वंश के राजा मुञ्ज (वाक्पतिराज द्वितीय) के राजकवि थे। मुञ्ज का समय **६७४ - ६६५ ई०** माना जाता है।

ध्वन्यालोककार आनन्द वर्धन ने बाण और कादम्बरी का नामोल्लेख किया है तथा हर्षचरित के अनेक उद्धरण दिये हैं।[4] श्री आनन्द वर्धन कश्मीर के राजा अवन्ति वर्मा (**८५५-८८४ ई०**) के समय में थे। निम्न साक्ष्यानुसार –

---

[1] काव्यालंकार सूत्रवृत्ति, डॉ० नागेन्द्र की भूमिका, पृ०३१

[2] Dasgupta and De ; A History of Sankrit Literature Vol. 1, Page 324

[3] "यथा हि महाश्वेतावर्णनावसरे भट्टबाणस्य।" – दशरूपक, द्वितीय प्रकाश पृ० १२२

[4] "यथा स्था० वीं श्चराख्यजनपदवर्णने भट्ट वाणस्य –
यत्र च मातंगगामिन्यः शीलवत्यश्व मौर्यो विभवरताश्व श्यामाः पद्यराणिण्यश्व ध्वलद्विज शुचिवदना मदिरामोदिश्वसनाश्वप्रमदाः।" – ध्वन्यालोक, द्वितीय उद्योत, पृ० २४५
"यथा कादम्बर्या कादम्बरीदर्शनावासरे।" – ध्वन्यालोक, द्वितीय उद्योत, पृ० २२२
"यत्रान्तरे कुसुम समययुगमुपसंहरन्नजृम्भत ग्रीष्माभिधानः फुल्लमल्लिकाध्वलाट्टहासो महाकालः।" – ध्वन्यालोक, द्वितीय उद्योत, पृ० २४१
"यथा तत्रैव – ' समवाय इव विरोधिनां पदार्थानाम्। तथाहिसन्निहित बालान्धकारापि भास्वन्मूर्ति' इत्यादो।" – ध्वन्यालोक, द्वितीय उद्योत, पृ० २४६
"तस्यैव वाक्यप्रकाशता यथा हर्षचरिते सिंहनादवाक्येषु– 'वृत्तेऽस्मिन् महाप्रलये धरणीधारणा याधुना त्वंशेषः'।" – ध्वन्यालोक, द्वितीय उद्योत, पृ० २६७

"M. Krishnamachariar; History of classical Sanskrit Literature, Page 740"

धनपाल ने अपनी रचना **तिलकमञ्जरी** में बाण, **कादम्बरी** तथा **हर्षचरित** की प्रशंसा की है।[१]

धनपाल धारा के राजा मुञ्च **वाक्यतिराज** के समय में था। उन्होंने **तिलकमञ्जरी** की रचना लगभग ६७० में की थी।[2]

नलचम्पू में त्रिविक्रम भट्ट ने बाण तथा कादम्बरी के गद्य की प्रशंसा की है।[3] इनका समय १०वीं शताब्दी ई० का पूर्वार्द्ध है, क्योंकि राष्ट्रकूट के राजा **इन्द्रतृतीय** के एक अभिलेख **८१५ ई०** के लेखक **त्रिविक्रमभट्ट** ही है।[४]

उदयसुन्दरी कथा में कई श्लोकों में बाण की प्रशंसा सोढडल ने की है।[५] इन्होंने **उदयसुन्दरी** कथा की रचना लगभग **१००० ई०** में की थी।[६]

---

[१] केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन्।
कि पुनः क्लृप्तसंधानपुलिन्ध्रकृत संनिधिः ।। २७।।
कादम्बरी सहोदर्या सुधया बैवुधेह्रदि।
हर्षाख्यायिकया ख्याति बाणोऽब्धिरिवलब्धवान् ।। २७।।
— तिलकमञ्जरी, पृ० ४

[2] Dasgupta and De; History of Sanskrit Literature, Vol.1,PP. 430-31

[3] शश्वद् बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा।
धनुषेव गुणाढयेन निःशेषो रञ्जितों जनः।।
— नलचम्पू, प्रथम उच्छ्वास, पृ० ५।
'कादम्बरीगद्य बन्धा इव दृश्यमानबहुब्रीहयः केदाराः।
— नलचम्पू, प्रथम उच्छ्वास, पृ० ११।

[४] कीथः संस्कृत साहित्य का इतिहास (अनु० मंगलदेवशास्त्री) पृ० ४६३

[५] श्रीहर्ष इत्यवनिवर्तिषु पार्थिवेषु नाम्नैव केवलमजापत वस्तुतस्तु।
गीर्हर्ष एव निजसंसदि येन राज्ञासम्पूजितःकनककोटिशतेन बाणः।।
—उदयसुन्दरी कथा,पृ० २

[६] कीथः संस्कृत साहित्य का इतिहास (अनु० मंगलदेव शास्त्री) पृ० ३६७

अपनी रचनाओं में अनेक बार नामपूर्वक बाण का उल्लेख **क्षेमेन्द्र** ने किया है।[१] क्षेमेन्द्र का **स्थितिकाल ११वीं शताब्दी** ई० का मध्य भाग है।[२]

रूद्रट द्वारा रचित काव्यालंकार के टीकाकार नमिसाधु कादम्बरी और हर्षचरित को क्रम से कथा और आख्यायिका बताते हैं।[३] **नमिसाधु** ने टीका की रचना **१०६६** ई० में की थी। **सरस्वतीकण्ठाभरण** में भोज ने कई श्लोकों में बाण की प्रशंसा की है।[४] भोज का समय **११ वीं शताब्दी ई०** का पूर्वार्द्ध है।[५]

उपर्युक्त विद्वदजनों क रचनाओं के पर्यालोचन के द्वारा सिद्ध होता है। कि बारहवीं शताब्दी से आठवीं शताब्दी के प्रमुख लेखकों ने **बाणभट्ट** तथा उनकी रचनाओं **कादम्बरी** और **हर्षचरित** का उल्लेख किया है। अतएव **बाण** का समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध मानना समीचीन है।

अन्तरङ्ग समीक्षण के आधार पर **बाण** के काल के सम्बन्ध में विचार किया जा रहा है। विचार करते समय निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं–

---

[१] कवि कण्ठाभरण में अधोलिखित श्लोक उद्धृत किया गया है–
"यथा च भट्वाणस्य –
कटु क्वणन्तो मलदायकाः खलास्तुदन्त्यलं बन्धनशृंखलाइव।
मनस्तु साधुध्वनिभिः पदे पदे हरन्ति सन्तों मणिनूपुराइव।।"
– काव्यमाला, चतुर्थगुच्छक, पृ० १५४

औचित्य विचार चर्चा में अधोलिखित श्लोक उद्धृत किया गया है–
" नतुयथा भट् बाणस्य –
जयतयुपेन्द्रः स चकार दूरतो बिभित्सयायः क्षणलब्धलक्ष्य या।
हशैव कोपारूणया निपोरूरः स्वयं भयाद्भिन्नमिवास्रपाटलम्।।"
– काव्यमाला, चतुर्थगुच्छक, पृ० १३८

[२] रामजी उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० २७८।

[३] काव्यालंकार, पृ० १७०–७१।

[४] सरस्वतीकण्ठाभरण, परिच्छेद २, पृ० १३२ तथा २११, परि० ३, पृ० २६१, परि० ५, पृ० ६०६

[५] कन्हैयालाल पोद्दार : संस्कृत साहित्य का इतिहास (प्रथम भाग) पृ० २१५

बाणभट्ट ने अपनी रचनाओं में अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थों और लेखकों का उल्लेख किया है।

कादम्बरी में रामायण और महाभारत का उल्लेख किया गया है।[१] रामायण की रचना का समय **५०० ई०पू०** से पहले माना गया है।[२] हर्षचरित में व्यास तथा महाभारत का उल्लेख किया गया है।[३] **श्री चिन्तामणि** विनायक वैद्य का कथन है कि महाभारत ई० सन् के लगभग **२५० वर्ष** पूर्व तैयार हो गया था।[४] ग्रीक लेखक **डायोक्रायसोस्टोम सन् ५० ई०** में पाण्ड्य देश में आया था। उसने अपने संस्मरण में एक लाख श्लोकों के '**इलियड**' का उल्लेख किया है। वैद्य महाशय का विचार है कि '**इलियड**' से अभिप्राय **महाभारत** से है। सन् ५० ई० के लेखक ने महाभारत का उल्लेख किया है, अतः महाभारत की सबसे नीचे की सीमा ५० ई० सिद्ध होती है।[५]

अपने हर्षचरित के प्रारम्भिक पद्य में बाण ने जिन कवियों तथा कृतियों का उल्लेख किया है– व्यास, वासवदत्ता, भट्टार हरिश्चन्द्र, सातवाहन, प्रवरसेनरचित सेतुबन्ध, भास,[६] कालिदास,[७] वृहत्कथा और आढयराज उनमें के कोई भी सातवीं शताब्दी के पश्चात् नहीं हुए।

---

[१] "महाभारत पुराण रामायणानुरागिणा"।

– कादम्बरी पृ० १०२

[२] पाण्डेय तथा व्यासः संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ० १५।

[३] नमःसर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेद्यसे।
चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम्।। – हर्षवर्धन १/१

[४] महाभारतमीमांसा, पृ० ४४।

[५] महाभारत मीमांसा, पृ० ४४।

[६] सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव।। – हर्ष १/२

[७] निर्गतासु नवा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुर सान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते। – हर्ष १/२

भास चतुर्थ या पञ्चम शताब्दी ई०पू० में हुए थे।[१] कौटिल्य के अर्थशास्त्र का उल्लेख उपलब्ध होता है।[२] अर्थशास्त्र की रचना ई०पू० ३२१ तथा ३०० के मध्य में किसी समय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य प्रथम के समय की गयी होगी।[३]

कालिदास के सम्बन्ध में दो मत महत्वपूर्ण है। कुद विद्वान उन्हें प्रथम शताब्दी ई०पू० में मानते हैं।[४] कुछ विद्वानों का कथन है कि वे गुप्तकाल विशेषतः चन्द्रगुप्त II – ३८०७ ४१३ ई० के समय में विद्यमान थे।[५]

बाण ने **अभिधर्मकोश** की तरफ भी संकेत किया है।[६] *ताकाकूसू* **अभिधर्मकोश** के रचयिता **वसुबन्धु** का समय **४२० ई०** तथा **५०० ई०** के बीच मानते हैं।[७] बोगिहारा के अनुसार **वसुबन्धु** का **समय ३६० ई०** तथा **४७० ई०** के बीच माना जाता है।[८]

---

[१] बलदेव उपाध्यायः महाकवि भास – एक अध्ययन, पृ० १५३।

[२] "कि वा तेषां सांम्प्रतं येषामति नृशंसप्रायोप देश निर्धृणं कौटिल्यशास्त्रं प्रमाणम्।।"

– कादम्बरी , पृ० २०७

[३] R. Shamasastry : Kautilya's Arthasastra, Preface, P. 6.

[४] K.C. Chattopadhyaya : The Date of Kalidas' Allahabad University Studies, Vol. 11, P.P. 97-170

[5] Dasgupta and De : A History of Sanskrit Literature, Vo;. 1, P. 125.

[६] "अत्र लोकनाथेन दिशांमुखेषु परिकल्पिता लोकपाला, सकलभुवनकोशश्चग्रजन्मनां विभक्त इति।" – हर्षवर्धन ३/४०

" दर्पात्रागमृशन्नखकिरणसलिल निर्झरैः समरभारसम्भावनाभिषेकमिव चकार दिङ्नागकुम्भकूटविकटस्य बाहुशिखरकोषस्य वामः पाणिपल्लवः"।।

– हर्षवर्धन ६/४१

"शुकैरपि शाक्यशासनकुशलैः कोशं समुपदिशद्भि"।। – हर्षवर्धन ८/७३

[७] अभिधर्मकोश, वासुदेवशरण अग्रवाल की भूमिका, पृ० ७।

[८] अभिधर्म कोश, वासुदेवशरण अग्रवाल की भूमिका, पृ० ७।

बाण बृहत्कथा की प्रशंसा करते हैं।[1] बृहत्कथा गुणाढय की कृति थी। यह पैशाची प्राकृत में लिखी गयी थी। यह अब उपलब्ध नहीं है। बूलर इस प्रथम या द्वितीय शताब्दी ई० की कृति मानते हैं।[2]

हर्ष की सभा में बाण का प्रवेश उनके शासन काल के उत्तरार्ध में हुआ होगा। हर्षचरित में बाण ने हर्षवर्धन के उन पराक्रमों का वर्णन किया है जो उसने बाण से मिलने से पहले सम्पादित कर लिए थे। इस प्रकार के वर्णनों में दो स्थानों पर बाण ने लिखा है कि हर्ष ने अपना सम्पूर्ण धनवैभव ब्राह्मणों तथा बौद्ध भिक्षुओं को दान में दे डाला था। ह्वेनसांग एक ऐसे ही अवसर पर ६४३ ई० में उपस्थित थे। हर्ष से मिलने के समय बाण यौवनावस्था में रहे होगें।[3]

सातवाहन का उल्लेख भी महत्वपूर्ण है। सातवाहन ने विशुद्ध स्वभावोक्तियों से युक्त सूक्तियों का अविनाशी तथा अग्राम्य कोश (संग्रह) बनाया।[4]

सातवाहन विरचित यह सुभाषित–कोश हाल–कृत गाथा सप्तशती का ही वास्तविक नाम था। हाल सातवाहनवंशी सम्राट थे। डॉ० भंडारकर गाथासप्तशती और सातवाहन कृत कोश को एक नहीं मानते, किन्तु श्री **मिराशीजी** ने निश्चित प्रमाणों के आधार पर सिद्ध किया है कि गाथा सप्तशती की अन्तिम गाथा में एवं

---

[1] समुद्दीपितकन्दर्पा कृतगौरीप्रसाधना।
हरलीलेव नोकस्य विस्मयाय बृहत्कथा।।

— हर्षवर्धन १/२

[2] See Peterson's Indroduction to the Kadambari, P. 84 Foot note

[3] डॉ राजेन्द्र मिश्र और डॉ० गिरिजाशंकर चतुर्वेदी

— कादम्बरी कथामुखम् भूमिका पृ० २७,

[4] अविनाशिनम ग्राम्यमकरोत्सातवाहनः।
विशुद्ध जातिभिः कोशं रत्नेत्वि सुभाषितैः।।

— हर्षवर्धन १/३

उसके टीकाकार पीताम्बर की संस्कृत छाया में इस ग्रन्थ को कोश कहा है।[१] प्राकृत वुवलयमाला कथा के कर्त्ता इन्द्रासूति (७७८ ई०) ने हाल के ग्रन्थ को कोश कहा है।[२]

गाथा सप्तशती के दो अन्य टीकाकार बलदेव और गंगाधर भी हाल के सुभाषित संग्रह को गाथा–कोश के नाम से पुकारते हैं।[३]

अभिधान चिन्तामणि में हाल तथा सातवाहन एक माने गये हैं।[४] हेमचन्द्र द्वारा विचरित देशीनाम माला से भी हाल तथा सातवाहन एक सिद्ध होते हैं।[५]

सातवाहन का समय प्रथम शताब्दी ई० है।[६] हर्षचरित में प्रवरसेन और सेतुबन्ध का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[७]

प्रवरसेन ने सेतुबन्ध की रचना की थी। एक परम्परा के आधार पर कहा जाता है कि सेतुबन्ध के रचयिता कालिदास है।[८]

इस प्रकार उपर्युक्त बहिः साक्ष्य एवं अन्तः साक्ष्य के आधार पर बाणभट्ट का समय छठीं एवं सातवीं सती के मध्य रहा है यह निश्चित होता है। यह तिथि भारत भ्रमण करने वाले चीनी यात्री ह्वेगसांग के संस्मरणों, ताम्रपत्रों एवम् अन्यान्य प्रामाणिक अभिलेखों को आधार बना करके इतिहास विदों द्वारा निर्णीत कर ली

---

[१] V.V. Mirashi : The original Name of the Gathasptasati,AIOC, 13th session, 1946, PP. 370-371

[२] वासुदेव शरण अग्रवाल : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ६

[३] वासुदेव शरण अग्रवाल : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ६

[४] 'हालः स्यात् सातवाहनः ' – अभिधान चिन्तामणि, काण्ड ३, श्लोक ३७६।

[५] S.V.Dixit : Banabhatta : His life and Literature, P. 21.

[६] गाथासप्तशती, उपोद्घात, पृ० ६६।

[७] कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना।। – हर्ष० १/२

[८] See Kane's Notes on the Harshacharit, Uch I, P. 11.

गयी है।[1] इसके अतिरिक्त, हर्षवर्धन के राज्यकाल से सम्बन्धित प्रायः इन्हीं तिथियों का प्रतिपादन महामाहोपाध्याय पी०वी०काणे[2], वाचस्पति गैरोला[3] एवम् सर्वप्रसिद्ध इतिहासज्ञ डॉ० विमलचन्द्र पाण्डेय[4] इत्यादि विद्वानों ने भी किया है।

यद्यपि बाणभट्ट के जीवनवृत्तान्त का उद्घाटन करते समय यह निर्देशित किया जा चुका है कि बाण हर्षवर्धन के समकालीन और उनके सभा पण्डित थे, तथापि यहाँ पर एतद् विषयक कुछ प्रमुख विद्वद् जनों के मत मतान्तरों को भी दर्शाया जा रहा है जिससे बाणभट्ट के समय निर्धारण में और पुष्ट उपस्थित हो जायें।

तिलक महोदय ने बाण को हर्ष का सभा पण्डित होने का समर्थन इस प्रकार किया है–"सुविदित है कि बाणभट्ट सम्राट हर्षवर्धन की विद्वत् सभा का उज्ज्वल रत्न था।[5] "

गैरोला महोदय ने भी इस विषय पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं – "गुणी और ज्ञानी हर्ष की विद्वत्सभा में बाणभट्ट, मयूरभट्ट और मातंग दिवाकर जैसे प्रख्यात विद्वान् साहित्य सृजन में एकाग्र थे[6]।" डॉ० ए०बी०कीथ ने हर्षवर्धन

---

[1] पाण्डेय और व्यास – संस्कृत साहित्य की रूपरेखा पृ० २६८

[2] Kane's Introduction to the Harshaesaritac Page – 14.

[3] "आधुनिक इतिहास का अभिमत है कि प्रायः ४० वर्षों के घटनापूर्व शासन के पश्चात् ६४७ अथवा ६४८ ई० में हर्ष का निधन हुआ। "

– संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ५८०

[4] "हर्ष ६०६ ई० में सिंहासन पर बैठा था।" प्राचीन भारत का राजनीतिक एवम् सांस्कृतिक इतिहास, पृ० १३८।

[5] वाचस्पति गैरोला " संस्कृत साहित्य का इतिहास " पृ० ६३३।

[6] वाचस्पति गैरोला " संस्कृत साहित्य का इतिहास " पृ० ५८२।

के राज्याश्रय में बाणभट्ट के पहुँचने का निर्देश किया – 'हर्षवर्धन के आश्रय में जाने के समय बाण बहुत कुछ युवक रहे होंगे।'[१]

इस प्रकार प्रस्तुत मतों के परिशीलन से तथा इतिहासज्ञों एवम् आधुनिक समीक्षकों एवं प्राचीन कवियों के मतानुसार हर्षवर्धन का काल निर्धारण करके बाणभट्ट का हर्ष का सभापण्डित निर्दिष्ट करने के परिणामस्वरूप उनके (बाण के) समय का निर्धारण स्वतः ही ६००–६४६ ई० के मध्य हो जाता है।

पुलिनभट्ट

बाणभट्ट की असमय मृत्यु होने पर कादम्बरी कथा अपूर्ण रह गयी थी। उत्तर भाग कादम्बरी का पूरा करने का श्रेय **भूषणभट्ट** अथवा **पुलिनभट्ट** को है। पिता बाणभट्ट ने तो पूर्वभाग तथा 'हर्षचरित' मे अपने व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में बहुत कुछ विवरण दे रखा है, लेकिन उनके पुत्र **भूषणभट्ट** का जीवन–वृत्त अब तक अन्धकार के गर्त में पड़ा हुआ है। यहाँ तक कि उन्होंने अपने नाम का उल्लेख तक नहीं किया है। ग्रन्थारम्भ में केवल **'तान्येव तस्य तनयेन तु संहृतानि**' लिखकर वे सन्तुष्ट हो गए। **धनपाल (१००० ई०)** ने अपनी **'तिलकमञ्जरी'** में दोनों पिता–पुत्रों को अपनी संयुक्त श्रद्धाञ्जलि में इस प्रकार स्मरण कर रखा है –

"केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदांन् कवीन्।
किं पुनः कलृत्पसन्धानः पुलिन्दकृतसन्निधिः।।"

उपर्युक्त श्लोक में कवि ने श्लेष की चमत्कारक भाषा में बाण (कवि) पर बाण (शर) का और पुलिन्द (शबर) का आरोप कर रखा है अर्थात् केवल बाण

---

[१] डॉ० ए०बी०कीथ 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' (अनु० मंगलदेव शास्त्री) पृ० ३६२।

ही नहीं, प्रत्युत बाण साधे पुलिन्द भी सामने हैं, तो बेचारे कवि हरिणो की खैर कहाँ ? इस उल्लेख से यह सिद्ध होता है कि बाण के तनय का नाम पुलिन्द था, किन्तु **पुलिन्द** एक म्लेच्छ जाति है।, इसलिए उसके नाम से एक उच्चजातीय ब्राह्मण तथा महाकवि का नाम होना हमारे विचार से सर्वथा असंगत है। प्रो० **भण्डारकार** की गवेषणात्मकतानुसार उसका नाम पुलिनभट्ट था, जो जॅचता भी है। हमारे विचार से धनपाल ने श्लेष संगति बिठाने हेतु ही पुलिन को पुलिन्द कर दिया होगा। जैसे श्लेष में साधारणतः हुआ ही करता है। किन्तु पाश्चात्य मनीषी **डा० बुह्लर** ने अपने नये अनुसन्धान से यह सिद्ध कर दिया कि बाण के पुत्र का असली नाम भूषणभट्ट है और यही नाम अब संस्कृत वाङ्मय में आम प्रचलित हो गया। **पुलिनभट्ट** के निवास स्थान का प्रश्न है, बाण ने अपनी आत्म–कथा में अपना जन्म–स्थान बिहार में शीलनदी के तीर पर स्थित **'प्रीतिकूट'** बता रखा है। विप्रजनों की बस्ती होने के कारण उसे **'ब्राह्मणाधिवास'** भी कहा करते थे। बाण बाद को सम्राट हर्षवर्धन की राजसभा के मुख्य कवि बनकर कन्नौज चले गये और वहीं रहने भी लग गये थे। भूषणभट्ट का जन्म स्थान प्रीतिकूट या कन्नौज इन दोनों में से कोई एक हो सकता है। बाण इस सम्बन्ध में भी मौन हैं।

भूषणभट्ट के देश–काल का जहॉ तक सम्बन्ध है, वह तो ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वथा निश्चित ही है। बाण ने अपने आश्रयदाता सम्राट हर्षवर्धन का जीवन–वृत्तान्त अपने **'हर्षचरित'** में दे रखा है। हर्षवर्धन एक ऐतिहासिक राजा हैं, जो गुप्त राजवंश के पतन के बाद भारत के शासनक्षेत्र में उतरे। इतिहास वेत्ताओं के अनुसार हर्षवर्धन का शासन–काल **६००-६४७** ई० तक रहा है। इस प्रकार पिता–पुत्र का स्थिति काल कुछ वर्षों के अन्तर से छठीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध और

सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध ठहरता है। साहित्य–शास्त्री वामनाचार्य (७५०-८०० ई०) द्वारा अपनी **'काव्यालंकार सूत्रवृत्तिः'** में कादम्बरी का उल्लेख तथा उससे लिए हुए उद्धरण भी दोनों पिता–पुत्र का उक्त समय ही सिद्ध करते हैं।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि भूषणभट्ट अपनेपिता के ठीक विपरीत अपनी लेखनी से अपने व्यक्तिगत जीवन के संदर्भ में बिल्कुल मौन हैं। उनके ग्रन्थ से ही उनके सम्बन्ध में कुछ थोड़े से निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। पिता की तरह से भी व्यक्तित्व के धनी थे। इन्होंने अपने पिता के समक्ष अपने को गौण सिद्ध किया है।

अपनी रचना कादम्बरी उत्तर भाग में उन्होंने अपने पिता के बारे में लिखा है कि 'जिस आर्य को लोग घर–घर पूजते हैं, पुण्यकर्मों द्वारा जिससे मुझे जन्म प्राप्त हुआ है, जिसने अनन्य–साधारण कवित्व शक्ति से कादम्बरी कथा रची है, उस वाचस्पति पिता को मेरा नमन है।[१]

पिता की तरह इनका भी विलक्षण प्रतिभा और प्रखर पाण्डित्य जैसा व्यक्तित्व था। ये भी सभी शास्त्रों और कणाओं में निष्णात थे। इन्हें भी वेद, पुराण, धर्मशास्त्र, ज्योतिष और राजनीति का अच्छा ज्ञान था। साहित्य कथा और मानव मनोविज्ञान के भी ये मर्मज्ञ थे। इन्हें रासायनिक प्रक्रिया भी आती थी जिससे द्रव्य का प्रभाव कुछ से कुछ हो जाता है। स्वभाव में भूषण बड़े गर्वरहित थे। दर्प तो इन्हें लेशमात्र भी छूं तक नहीं पाया था। यह बात इनके इस उपोद्घात–श्लोक से सिद्ध होता है – इसमें इन्होंने लिखा है कि – 'पिता के स्वर्ग सिधारने पर उनकी

---

[१] आर्य यमर्चति गृहे गृह एव लोकः पुण्यैः कृतश्च यत एव ममात्मलाभः।
सृष्टैव येन च कथेयमनन्यशक्त्या वागीश्वरं पितरमेव तमानतोऽस्मि।।
– कादम्बरी उत्तरभागः उपोद्घातः श्लोक संख्या–१

वाणी के साथ–साथ ही जगत में कादम्बरी कथा को उनकी वाणी के साथ–साथ ही जगत में कादम्बरी कथा का जो क्रम बीच में ही छूट गया था तथा जिसका असमाप्ति से विद्वान् लोगों को खेद हो रहा था, उसे देखकर ही मैने इसे आरम्भ किया है, न कि अपने कवित्व के अभिमान में आकर।[1] इनकी इस सहृदयता, निरभिमानिता का यह फल है कि ये अपने व्यक्तिगत जीवन के लेखन के विषय में मौन ही रहे, कुछ भी न लिख पाये। यदि इन्हें कवित्व–दर्प होता तो कादम्बरी के उत्तर भाग के अतिरिक्त कुछ और भी लिखकर ये कवि–हृदयों में अपनी और अधिक धाक जमाते तथा मान–प्रतिष्ठा को प्राप्त करते। उत्तर भाग भी विवश होकर उन्होनें लिखा है ऐसा प्रतीत होता है और उसमें भी अपने पिता को इन्होंने श्रेय दिया है जैसा कि लिखा है – "पिता द्वारा लिखे हुए गद्यकाव्य में भी जो मेरे अक्षर उसी तरह लेखनी से निकल पड़े हैं, वह मेरे पिता का ही प्रभाव है। चन्द्रकान्त मणि के पिघलने के लिए असाधारण अमृत रसप्रवाह वाले चन्द्रमा की किरणों का संपर्क ही कारण हुआ करता है।[2] संस्कृत वाङ्मय में प्राचीन काल से ही विद्वानों में यह किंवदन्ती चली आ रही है कि बाणभट्ट जब कादम्बरी लिखते चले आ रहे थे तो इसी बीच इन्हें कृतान्त का क्रूर कर अपनी ओर आगे बढ़ता हुआ परिलक्षित हुआ। बेचारे बड़े दुःखी हुए कि मेरी यह कथा अधूरी ही छूटी जा रही है। मरणासन्न अवस्था में इनके प्राण शान्ति से नहीं निकल रहे थे। पिता की अन्तव्यर्था को पुत्र भॉप गये।

---

[1] याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धं विच्छेदमपि भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः।
दुःखं सतां यदसमाप्तिकृतं विलोक्य प्रारब्ध एव स मया न कवित्वदर्पात्।।
– कादम्बरी उत्तरभागः उपोद्घातः श्लोक संख्या–२

[2] गद्ये कृतेऽपि गुरुवा तु तथाक्षराणि यन्निर्गतानि पितुरेव स मेऽनुभावः।
एकप्लवामृतरसास्पदचन्द्रपादसंपर्क एव हि मृगाङ्कमणेर्द्रवाय।।
– कादम्बरी उत्तरभागः उपोद्घातः श्लोक संख्या–३

पुत्रों ने आश्वासन दिलाया कि उनकी अमरकृति अधूरी नहीं रहने दी जायेगी, किंतु मुहूर्षु पिता को विश्वास ही नहीं हो रहा था। उसने एतदर्थ पुत्रों की योग्यता की परीक्षा लेनी चाही। घर के आंगन में एक सूखा वृक्ष खड़ा था। पिता ने अपने बड़े पुत्र से उसका वर्णन करने को कहा, तो वह झट वर्णन कर बैठा– **' शुष्कों वृक्षस्तिष्ठत्यग्रे'**। शुष्क एवं नीरस वृक्ष की तरह पुत्र की भाषा को भी शुष्क देखकर बाण के प्राण भी शुष्क होने लगे। तत्क्षण छोटा पुत्र भूषणभट्ट वर्णन कर बैठा– **'नीरस-तरूरिह विलसतिपुरतः'** इस वाक्य का श्रवण करते ही मरणासन्न पिता के नीरस प्राणों में आशा की सरसता आ गयी। इस आशा के के साथ कि इसके हाथों मेरी अधूरी छूटी कथा अवश्य पूरी हो जायेगी, शान्ति के साथ परमधाम को पधार गये।

पिता की अधूरी रचनाकृति को देखकर उनके पुत्र भूषणभट्ट ही क्या बल्कि जगत के समस्त संस्कृत–वाङ्मय को बड़ा गहरा आघात लगा। योग्य पिता के योग्य पुत्र ने तत्काल कथा– प्रबन्ध पूरा करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने अपनी वाणी को पिता की वाणी के साथ जोड़ते हुए कहा कि–

'पृथिवी पर छोटी–छोटी नदियॉ भी गंगा में जाकर, तन्मयता प्राप्त करके विशाल होती हुई समुद्र में पहुँच जाती है, मैने भी कथारूपी समुद्र तक जाने वाली पिता की वाणी–रूपी नदी में कथा जोड़ने के लिए अपनी वाणी प्रेरित कर दी है। '[१]

---

[१] गङ्गां प्रविश्य भुवि तन्मयतामुपेत्य स्फीताः समुद्रमितरा अपि यान्ति नद्यः।
आसिन्धुगामिनी पितुर्वचनप्रवाहे क्षिप्ता कथानुघटनाय मयायि वाणी।।
– कादम्बरी उत्तरभागः उपोद्घातः श्लोक संख्या–४

भूषणभट्ट अपने दोषों को छिपाने के लिए बड़ा ही सुन्दर बहाना बनाकर उसे श्लोक के रूप में कहा है –

'ये सार लोग कादम्बरी कथा के रस श्रृंगारादि के रूप में कादम्बरी मदिरा के रस स्वाद के अतिरेक से मत्त हुए कुछ भी चेतना नहीं रख रहे है, इसी कारण रसव्यञ्जक अक्षरों से रहित होती हुई भी अपनी वाणी द्वारा उसका शेष भाग रचता हुआ में आलोचकों से डरा हुआ नहीं हूँ।'[१]

इस श्लोक में कवि ने श्लेषालंकार का बड़ा ही चमत्कार दिखाया है। कादम्बरी पर वह कादम्बरीत्व (सुरात्व) और श्रृंगारादि रस पर रसत्व (स्वादत्व) का आरोप करके दोनों का एकीकरण कर देना है। कादम्बरी कथा के श्रृङ्गारादि रस से पाठक ऐसा विभोर हो जाता है जैसे मदिरा–रस से कोई व्यक्ति मदमत्त होता है। यही कारण है कि मेरी रची हुयी अवशिष्ट कथा में उसे दोष नहीं दिखाई पड़ते हैं। तब मैं अपने दोषों के लिए किसी से डरूँ तो क्यों डरूँ ?

भूषणभट्ट ने अपनी रचना का श्रेय भी पिता को दिया है उन्होंने अपने को लेशमात्र भी महत्त्व नहीं दिया है। पिता के महत्त्व को उन्होंने उपमा के द्वारा दिखाते हुए लिखा है कि – 'जिस तरह फलवाजे बीजवप्ता (किसान) द्वारा उत्कृष्ट उर्बर भूमि में बोये तथा उचित जलसिञ्चन आदि क्रिया के प्रभाव से विकसित किये जाने से परिपुष्ट होते है और उन्हें उसका पुत्र बटोरता है, उसी तरह फलवाले जो बीच कथा स्त्रोत वप्ता रूप पिता द्वारा उत्कृष्ट भूमि काव्य क्षेत्र में विस्तृत किये गये तथा उचित रस, कल्पना आदि क्रिया के प्रभाव से

---

[१] कादम्बरीरसभरेण समस्त एव मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम्।
भीतोऽस्मि यन्न रसवर्णविवर्जितेन तच्छेषमात्मवचसाप्यनुसन्दधानः।।
– कादम्बरी उत्तरभागः उपोद्घातः श्लोक संख्या–५

विकसित होकर परिपुष्ट हो रहे हैं, उन्हीं का उसके पुत्र ने उपसंहार किया है।'[१]

यहाँ ग्रन्थकार भूषणभट्ट ने श्लेष द्वारा दो समानान्तर अर्थों का प्रतिपादन कर रखा है। प्रकृत अर्थ तो काव्यपरक ही है अर्थात् बीजरूप से लेकर जो कथा पिता ने आरम्भ की और उसे उत्कृष्ट काव्य–स्तर पर पहुँचा कर तथा रसादि, अलंकारादि सामग्री से अच्छी तरह विकसित एवं परिपुष्ट करके बीच में छोड़ दी थी, वह उसके सुयोग्य पुत्र ने पूरी की, किन्तु यहाँ शब्दविन्यास से किसान द्वारा बीच बोना और सींचना, गोड़ना आदि व्यापार से उस पुष्ट–समृद्ध–करना तथा अन्त में उसके पुत्र द्वारा फसल काटना–यह दूसरा अर्थ भी निकल जाता है। किन्तु यहाँ पर यह अप्रकृत अथवा असम्बद्ध अर्थ प्रतिपादन करना बिल्कुल असंगत है। क्यों कि बाणभट्ट अपना अलग महत्त्व है और भूषणभट्ट की अपनी अलग पहचान भूषणभट्ट ने बाण के कार्यों को बढ़ाया है। इसलिए उपमेयोपमान–भाव में वाक्यार्थ का पर्यवसान मानना पड़ेगा अर्थात् जिस तरह कृषक और उसका पुत्र करता है, उसी तरह मेरे पिता और मैने किया है।

भूषणभट्ट पिता की तरह प्रतिभावन, गुणवान, तथा व्यक्तित्व के धनी थे। प्रतीत होता है ये भी शैव ही थे, हो सकता है कि इनकी कुल परम्परा ही शैव सम्प्रदाय की हो। तभी तो पिता की तरह इन्होंने भी शिवस्तुति के रूप में

---

[१] बीजानि गर्भितफलानि विकासभाञ्जि वप्त्रैव यान्युचितकर्मबलात्कृतानि।
उत्कृष्टभूमिविततानि च यान्ति पोषं तान्येव तस्य तनयेन तु संहृतानि।।
— कादम्बरी उत्तरभागः उपोद्घातः श्लोक संख्या–६

ग्रन्थारम्भ : की है यद्यपि इनके शिव स्वतन्त्र शिव न होकर 'अर्ध नारीश्वर' रूप में है–

"देहद्वयार्धघटनारचितं शरीरमेकं ययोरनुपलक्षितसंधिभेदम्।

वन्दे सुदुर्धटकथापरिशेष सिद्धयै सृष्टेर्गुरूगिरि सुतापरमेश्वरौ तौ।"

उपरोक्त श्लोक में कवि अर्धनारीश्वर महादेव को प्रणाम कर रहा है, जिसमें आधा शरीर महादेव और आधा मां जगदम्बा पार्वती का है, एवं जो मिलकर पूरी तरह से एकाकार हो गये हैं। कवि का यह यह मंगलाचरण श्लोक उसकी लेखनी कादम्बरी के उत्तरभाग की ओर संकेत करता है। पिता की मृत्यु के बाद कादम्बरी कथा अधूरी ही छूट गयी थी। पुत्र भूषणभट्ट ने पूरी की । महान आश्चर्य तो यह है कि कथा की छूटी हुई श्रृंखला उसने ऐसी निपुणता जोड़ी कि अर्धनारीश्वर की तरह दोनों भाग एकाकार हो गए हैं। कादम्बरी कथा को पढ़ने एवं सुनने वालों को बड़ी ही दुरूहता से पता चलता है कि उत्तरार्ध भाग बाण का नहीं है, किसी और का है यहाँ जोड़ होने पर भी जोड़ का पता न चलना बताया गया है। कादम्बरी कथा के उत्तरार्द्ध–पूर्वार्द्ध दोनों भाग अर्धनारीश्वर की तरह एकाकार होकर जुड़े हुए हैं। यह उपमाध्वनि है।

अतः सिद्ध होता है कि भूषणभट्ट योग्य पिता के सुयोग्य पुत्र थे।

बाण और मयूर कवि के सम्बन्ध

महाराज **हर्ष** के दरबार में दो अन्य कवियों – **मातङ्गदिवाकर** और **मयूर** को बाण का समकालीन बतलाया गया है।[1]

बाण और मयूर विषयक कथा अनेक स्थलों पर उपलब्ध होती हैं । यहाँ !पर मैं भिन्न–भिन्न ग्रन्थों में आयी हुई बाण–मयूर–विषय किंवदन्तियों पर विचार करूंगी और कथाओं के आधार पर बाण और मयूर के सम्बन्ध के विषय में भी चर्चा प्रस्तुत करूंगी।

मयूर के विषय में एक मनोरञ्जक किंवदन्ती है। परम्परया **मयूर** और **बाण** दोनों पण्डित थे। बाण मयूर के साले थे। एक समय **बाण मयूर** से मिलने के लिए उनके घर गये। रात्रि का समय था, अतः **बाण मयूर** के द्वार पर लेट गये। वाण की पत्नी किसी कारणवश उस दिन मान किये हुए थीं। बाण उनके मान–मनौबल में दत्तचित्त थे किन्तु वह किसी तरह मान ही नहीं रही थी। उनको मनाने के लिए बाण ने एक पद्य की रचना की जिसके प्रथम तीन चरण इस प्रकार थे –

"गतप्रायः रात्रिः कृशतनु शशी शीर्षते इव, प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णत इव। प्रणामान्तों मानस्तदपि न जहासि क्रुधमहो"

---

[1] अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकरः।
श्री हर्षस्याभवत्सभ्यः समो बाणमयूरयोः।।
– राजशेखर

सचित्रवर्णविच्छत्तिहारिणोरवनीश्वरः।
श्री हर्ष इव संघट्ट चक्रे बाणमयूरयोः।।
– नवसाहसाङ्कचरित

कादम्बरी प्रथम भागः – श्री भानुचन्द्रसिद्धचन्द्रकृत संस्कृत टीका पृ० २०

(हे तन्वङ्गी, रात्रि लगभग बीत गई है, चन्द्रमा क्षीण सा हो रहा है, यह दीपक (भी) निद्रा के वशीभूत हुआ मानो ऊँघ रहा है। मान (तो) प्रणाम पर समाप्त हो जाता है, फिर भी तुम क्रोध का त्याग नहीं कर रही हो ....)

बाण इन तीन चरणों को ही कह पाये थे कि मयूर पहुँच गये और उन्होंने स्वयं चतुर्थ चरण द्वारा इसकी पूर्ति कर दी –

"कुचप्रत्यासत्त्या हृदयामयि ते चण्डि ! कठिनम् ।"

(हे मानिनी, स्तनों की समीपता के कारण तुम्हारा हृदय भी कठोर हो गया है।)

बाण इसे सुनकर अतीव प्रसन्न हुए और मयूर से मिलने चल पड़े किन्तु बाण की पत्नी अत्यन्त क्रोधित हुए और उसने मयूर को कोढ़ी हो जाने का शाप दे दिया। कहा जाता है कि मयूर ने इस कोढ़ से मुक्ति पाने के लिये सूर्य की स्तुति में **'मयूर-शतक'** (या **सूर्यशतक**) की रचना की।[१]

यह कथा **प्रबन्धचिन्तामणि** (रचना–काल– १३०६ ई०) मे दी गयी बाण–मयूर विषयक पर आधारित है।

प्रभाचन्द्राचार्य द्वारा विरचित प्रभावकचरित में बाण और मयूर की कथा सविस्तार श्लोक–बद्ध की गई है।[२]

इस रचनानुसार बाण और मयूर हर्ष की सभा में रहते थे। मयूर की दुहिता से बाण का विवाह हुआ था। एक बार बाण की पत्नी ने मान किया। उसको मनाते हुए बाण ने कहा –

---

[१] भट्टयज्ञेश्वर ने सूर्यशतक की टीका में यह कहानी लिखी है। किन्तु उन्होंने बाण और मयूर को साथ–साथ धारा नगरी के राजा भोज (१००० ई०) के दरबार में रहते हुए बताता है जो किसी भी प्रकार विश्वसनीय नहीं है। अतःइस कहानी को भी ऐतिहासिक महत्व नहीं प्रदान किया जा सकता।

[२] प्रभावकचरित, पृ० ११३–११६।

"गतप्रायाः रात्रिः कृशतनुशशी शीर्यत इव प्रदीयोऽयं निद्रावशमुपगतो धूर्णित इव।

प्रणामान्तो मानस्तदपि न जहासि क्रुधमहो कुचप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते सुभ्रु! कठिनम् ।।[१] "

मयूर इसका श्रवण कर रहे थे। उन्होंने कहा कि **'सुभ्रु'** शब्द के स्थान पर **'चण्डि'** शब्द का प्रयोग करना चाहिये –

'स्थाने त्वं 'सुभ्रु' शब्दस्य चण्डी त्याख्यामुदाहरेः।[२]

इसे सुनकर बाण की पत्नी ने अपने पिता को कोढ़ी होने का श्राप दे दिया। मयूर ने सूर्य की स्तुति की और इससे उनका कोढ़ दूर हो गया। बाण ने भी अपने प्रभाव को प्रकट करने के लिए अपने हाथ–पैर काट डाले। उन्होंने चण्डिका की स्तुति की। भगवती की कृपा से बाण के अंग पहले की भांति कमनीय हो गये। जब बाण राजा के पास पहुँचे तो राजा ने उनका सम्मान किया।

हाल ने **भक्तामरस्तोत्र** की दो टीकाओं की चर्चा की है।[३] इसमें भी बाण और मयूर की कथा प्राप्त होती है। पहले हम हाल द्वारा निर्दिष्ट **भक्तामरस्तोत्र** की द्वितीय टीका (**१५वी शताब्दी ई०**) में प्राप्त कथा का अध्ययन करेंगे।[४]

मयूर उज्जयिनी के निवासी थे वे शास्त्रों के गहरे मर्मज्ञ थे। वृद्धभोज उनका सम्मान करते थे। बाण मयूर के जामाता थे। दोनो एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या भाव रखते थे। एक दिन दोनों विवाद कर रहे थें। राजा ने उनसे कहा–

---

[१] प्रभावक चरित, पृ० ११४

[२] प्रभावक चरित, पृ० ११४

[३] Sec F, Hall's Introduction to the Vasavadatta, PP. 7-8, note and P.-49

[4] Buhler : on the Chandisataka of Banabhatta, 1A, Vol I (1872) PP. 113-14
G.P. Quackenbos : The Sanskrit Poems of Mayura, General Introduction, PP., 21-24

हे पण्डितों, कश्मीर जाओ । वहीं श्रेष्ठ माना जाएगा, जिसे भारती, जो कश्मीर में रहती है, श्रेष्ठ मानेगी। यात्रा के लिए सामग्री लेकर वे चल पड़े और कश्मीर को जाने वाले मार्ग पर पहुँच गये। उन्होंने ऐसे पाँच सौ बैलों को देखा, जिन पर भार लदा हुआ था। उनके पूछने पर वाहकों ने उत्तर दिया –

'ऊँ' अक्षर पर की गयी टीकाएं लादी गयी हैं। आगे उन्होंने दो सहस्त्र बैलों को देखा। पूछने पर ज्ञान हुआ कि 'ऊँ' अक्षर पर की गयी टीकाएं लादी गयी हैं। इस पर उन दोनों का दर्प चूर्ण हो गया। वे रात्रि में एक स्थान पर सो गये। मयूर को सरस्वती ने जगाया और पूर्ति करने के लिए एक समस्या दी–

'शतचन्द्रं नमस्तलम्'

मयूर ने नतमस्तक होकर इस विकट समस्या की पूर्ति अपने विद्वता से की –

'दामोदरकराघातविह्वलीकृतचेतसा।

हृष्टं चाणूरमल्लेन शतचन्द्रं नभस्तलम्।।'

बाण ने इसी तरह का प्रश्न प्रत्युत्तर में किया। उन्होंने हुँकार किया और समस्या की पूर्ति इस प्रकार की –

'तस्यामुत्तुङ्गसौधाग्रविलोलवदनाम्बुजैः।

विरराज विभावार्या शतचन्द्रं नभस्तलम्।।'

सरस्वती ने कहा– तुम दोनों कवि हो और शास्त्रों के मर्मज्ञ हो, किन्तु बाण अवर है, क्योंकि उसने हुँकार किया। मैने तुम दोनों विद्वानों को 'ऊँ' पर की टीकाएं दिखाई हैं। वाग्देवता का पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता, अतः किसी को यह गर्व नहीं करना चाहिए कि मैं ही इस युग का एकमात्र विद्वानों के परिषद् का पण्डित हूँ।

'बाण को मयूर के यश से भयानक ईर्ष्या हुई। उन्होनें अपने हाथों और पैरों को काटकर सौ श्लोकों में चण्डिका की स्तुति की । प्रथम श्लोक के ६वें अक्षर के उच्चारण पर चण्डिका प्रकट हो गयी और उन्होंने बाण के अंगों को पूर्ववत् अविकल कर दिया।'

हाल द्वारा प्रतिस्थापित **भक्तामरस्तोत्र** की प्रथम टीका से ज्ञात होता है कि मयूर को अपनी सुपुत्री के सौन्दर्य का अश्लील वर्णन करने के कारण कोढ़ हो गया। मयूराष्टक की रचना की, यह विशेष बात इस टीका से ज्ञात होता है।[१]

सूर्यशतक की **जगन्नाथ (१७वीं शताब्दी ई०)** द्वारा की गयी टीका में भी मयूर के कुष्ठ–ग्रस्त होने का प्रमाण मिलता है।[२]

एक अवसर पर बाण की धर्मपत्नी बाण से किसी बात पर मान किए हए थी। रात्रि का अधिकांश प्रहर व्यतीत हो चुका था। उसे समय मयूर उस स्थान पर आये। पति तथा पत्नी के बीच के वार्तालाप को श्रवण करके मयूर रूक गये। बाण अपनी पत्नी के चरणों पर गिर पड़े और कहने लगे –

प्राणप्रिये, क्षमा करो, अब मैं तुम्हें क्रोधित नहीं करूँगा। उनकी पत्नी ने उन्हें अपने पैरों से मार दिया। उस अवसर पर बाण ने **'गतप्राया रात्रिः........... ....कठिनम्।।** ' श्लोक पढ़ा। श्लोक को सुनकर मयूर ने कहा– उसे **'सुभ्रु'** मत कहो, अपितु **'चण्डि'** कहो। इस पर बाण की पत्नी ने मयूर को कोढ़ी हो

---

[१] G.P. Quackenbos : The Sanskrit Poems of Mayura, General Introduction, PP., 25 and
F, Hall's Introduction to the Vasavadata, P.8, note

[२] "श्रीमान् मयूर भट्ट : पूर्वजन्मदुरदृष्टहेतुकगलितकुष्टजुष्टो .... क्षमों बान्धवस्कन्धावलम्बी भगवत्सूर्यमन्दिर – संकीर्णद्वारावलम्बनाशक्तस्तत्पश्चादुपविष्टः पूर्वजन्मदुरदृष्टसृष्टकुष्ठरोगापनीदनेप्सुर्बान्धवाशीर्वादव्याजेन रश्मिराजिररथमण्ल – एव भगवन्तं स्तौति जम्भारातीभेति।"
G.P. Quackenbos : The Sanskrit Poems of Mayura, General Introduction, PP., 32

जाने का शाप दे दिया। शाप के वशीभत मयूर के शरीर में कुष्ठ के चिन्ह प्रकट हो गये। प्रातःकाल बाण और मयूर सभा मण्डप में पहुँचे। बाण ने मयूर को देखकर कहा– वरकोढ़ी आ गया। राजा ने वचन का मर्म समझ लिया और मयूर से सभा छोड़कर जाने के लिए कहा।

सूर्य के मंदिर में जाकर मयूर ने सौ श्लोकों से सूर्य की आराधना की । जब उन्होनें छठां श्लोक पढ़ा, तब सूर्य प्रकट हो गये। मयूर ने कहा– भगवन्, मेरा कुष्ठ दूर कर दीजिये। सूर्य ने अपनी एक किरण मयूर को दे दी। उस किरण ने मयूर के शरीर को आवृत कर लिया और कुष्ठ को नष्ट कर दिया। राजा ने मयूर कवि का बहुत सम्मान किया।

मधुसूदन (१६५० ई०) ने **सूर्यशतक** की टीका में बाण और मयूर की कथा दी है। इसमें दोनों महाकवि राजा हर्ष की सभा में विद्यमान बताये गये हैं, भोज की सभा में नहीं। मयूर कुष्ठी होने का कारण मयूर द्वारा अपनी कन्या का अश्लील वर्णन है।[१]

सूर्यशतक के टीकाकार **भट्टयज्ञेश्वर** की **प्रबन्धचिन्तामणि** के आधार पर बाण और मयूर की कथा समुधृत् करते हैं। **भट्टयज्ञेश्वर** की टीका से ज्ञात होता है कि मयूर बाण के साले हैं, किन्तु **प्रबन्धचिन्तामणि** में बाण मयूर के साले माने गये हैं।[२]

काव्यप्रकाशकार मम्मट ने भी मयूर सम्बन्धी घटना की ओर संकेत दिया है।[३]

---

[१] Biihler : on the Authorship of the Ratnavli ; 1A, Vol, It (1873) PP. 127-128.
G.P. Quackenbos : The Sanskrit Poems of Mayura, General Introduction, PP., 6-7

[२] काव्यप्रकाश, झलकीकर की टीका, पृ० ८–६।

[३] 'आदित्यादेर्मयूरादीनामिवानर्थनिवारणम्'।
काव्यप्रकाश (झलकीकर की टीका से युक्त) उल्लास १, पृ० ८।

काव्यप्रकाश के टीकाकार **भीमसेन** अपनी सुधासागर नामक टीका (१७७६ संवत्) में इस घटना का वर्णन करते हैं।[1]

काव्यप्रकाश के टीकाकार **जयराम** भी कहते हैं –

'मयूरनामा कविः शतश्लोकेनादत्यं स्तुत्वा कुष्ठान् विस्तीर्ण इति प्रसिद्धिः।'[2]

उपर्युक्त स्थलो पर प्राप्त कथाओं के अतिरिक्त अन्यत्र भी **बाण** और **मयूर** का साथ ही साथ उल्लेख हुआ है। **सूक्तिमुक्तावली** में **राजशेखर** के नाम से श्लोक उद्धृत किया गया है।[3]

कन्नड़ कवि **नागवर्मा (लगभग ६८४ ई०)** बाण और मयूर का उल्लेख करते हैं।[4]

पद्मगुप्त (१०वीं शताब्दी ई० का अन्त और **११वीं शताब्दी का प्रारम्भ) नवसाहसांकचरित** में दोनों का साथ ही उल्लेख करते हैं।[5]

माधव (१३००-१३५० ई०) ने **संक्षेपशङ्करजय** में बाण और मयूर का उल्लेख किया हैं।[6]

---

[1] 'पुस किल मयूर शर्मा कुष्ठी कविः ..... एवं क्रियमाण काव्यपरिपुष्टो रविः सद्य एव नीरोगां रमणीयां च तत्तनुमकार्षीत्। प्रसिद्धं च तन्मयूरशतकम् (सूर्यशतकापरपर्यायम्)' इति।
काव्यप्रकाश (झलकीकरकी टीका से युक्त) उल्लास १, पृ० ८ पर उद्धृत।

[2] G.P. Quackenbos : The Sanskrit Poems of Mayura, General Introduction, PP., 30

[3] 'अद्वो प्रभावो वाग्देव्या यच्चण्डालदिवाकरः।
श्रीहर्षस्याभवत् सभ्यः समं बाणमयूरयो।।
– सूक्तिमुक्तावली ४/७०

[4] A Venkatasubbiah : 'A notes on Mayura as a writer on Prosody,' the journal of oriental Research, Madras, Vol. IX (for 1935) P. 82, and
S.V. Dixit : Banabhatta : His Life and Literature, P.11.

[5] स चित्तवर्णविच्छिचिहारिणोरवनीपतिः।
श्री हर्ष इव सङ्घट्टं चक्रे बाणमयूरयोः।।
– नवसाहसाङ्कचरित २/१८

[6] G.P. Quackenbos : The Sanskrit Poems of Mayura, General Introduction, PP., 30

उपर्युक्त जगहों पर यह निरूपण करने का प्रयास किया गया है कि बाण–मयूर विषयक कथा कहाँ–कहाँ प्राप्त होती है ? और उसका क्या स्वरूप है? यह भी देखने का प्रयास किया गया है कि बाण और मयूर दोनों का एक साथ कई स्थलों पर उल्लेख हुआ है। इन बातों से इतना तो निश्चित हो जाता है कि बाण और मयूर समकालिक थे और एक दूसरे के सम्बन्धी थे। इतने स्थलों के उल्लेखों का प्रत्यादेश नहीं किया जा सकता।

बाणभट्ट द्वारा रचित आख्यायिका **हर्षचरित** से ज्ञात होता है कि बाण मयूर के परम शिव थे – *'जांगुलिको मयूरकः'।*[1]

जांगुलिक का अर्थ **विषवैद्य** है। **सूक्तिमुक्तावली** में **राजशेखर** के नाम से अद्योलिखित श्लोक उद्धृत किया गया है –

'दर्प कवि भुजङ्गानां गता श्रवणगोचरम्।

विषविधेव मायूरी मायूरी वाङ् निकृन्तति।।[2]

उक्त श्लोक से ज्ञात होता है कि मयूर उच्चकोटि के कवि थे और विषवैध भी थे।

हर्षचरित में उल्लिखित जांगुलिक मयूरक मयूर कवि ही होते हें। ये बाण के मित्र थे। – मैक्समूलर[3], पीटर्सन[4]

वूलर महोदय ने भी अपने अन्वेषण के द्वारा यह सिद्ध किया है कि हर्षचरित के मयूरक सूयशतक के रचयिता मयूर ही हैं।[5]

सुभाषितावलि में मयूर कवि के नाम से समुधृत् –

---

[1] हर्षवर्धन १/१६

[2] सूक्तिमुक्तावली ४/६८

[3] F. Max.Muller : India : What can it teach us ? P. 329

[4] Peterson's Introduction to Subhasitaali, P. 86 .

[5] सुभाषितावलि, श्लोक २५/५

"भूपालाः शशिभास्करान्वयभुवः के नाम नासदिता भर्तारं पुनरेकमेव हि भुवस्त्वां देव मन्यामहे।

येनाङ्ग परिमृष्य कुन्तलमथाकृष्य व्युदस्थायतं चोलं प्राप्यच मध्यदेशमधुना काञ्चयां करः पातितः।।"[१]

यह श्लोक शायद राजा हर्ष की ओर संकेत करता है।[२]

आख्यायिका हर्षचरित के आधार पर यह स्वयं सिद्ध होता है कि मयूरक कवि बाण के मित्र थे। मयूरक ही सूर्यशतक के कर्त्ता मयूर है, यह भी उपरिनिर्दिष्ट कथनों से प्रमाणित हो जाता है।

उपर्युक्त कथाओं के गहन आलोड्न से यह परिलक्षित होता है कि मयूर या तो बाण के श्वशुर थे या साले। **बाण** ने अपने मित्रों की सूची जो **हर्षचरित** में दी है उसमें **मयूरक** का भी उल्लेख किया है। मयूर बाण की अवस्था में रहे होंगे, अतः उन्हें बाण का साला मानना तर्कसंगत प्रतीत होता है। **प्रबन्धचिन्तामणि** में **बाण मयूर** के साले तथा **सूर्यशतक** के कर्त्ता माने गये हैं, परन्तु यह कथन पूरी तरह से समीचीन नहीं प्रतीत होता। बाण **चण्डीशतक** के रचयिता हैं, इसके लिए अनेक विश्वसनीय प्रमाण उपलब्ध होते हैं। **भक्तामरस्तोत्र** के टीकाकार **मयूर** और **बाण** को राजा भोज की सभा में स्थित मानते हैं, किन्तु यह अत्यन्त कल्पना पर निर्भर है, क्योंकि बाण तो राजा हर्ष की राजसभा के राजकवि थे। उन्होंने हर्षचरित में इसका उल्लेख किया ही है। मैने कथाओं की एक–एक बात पर ध्यान नहीं दिया है। अपितु उनमें अनुस्यूत मर्म को ग्रहण कर बाण और मयूर के सम्बन्ध की गवेषवा की है। सभी कथाओं से यही निष्कर्ष प्रतिस्फुटित होता है कि बाण और मयूर के सम्बन्ध थे।

---

[१] सुभाषितावलि, श्लोक २५/५

[२] Peterson's Introduction to Subhasitaali, P. 86 .

बाणभट्ट की रचनाओं का वस्तु-विन्यास

बाणभट्ट की कृतियां

संस्कृत–वाङ्मय के दैदीव्यमान नक्षत्र गद्यकाव्य के पंचानन बाणभट्ट की दो रचनाएं – कादम्बरी और हर्षचरित तो सर्वप्रसिद्ध है ही। इनके अतिरिक्त बाण के नाम से कुछ अन्य रचनाओं का भी उल्लेख किया जाता है। ये रचनाएं हैं – 'चण्डीशतक', पार्वतीपरिणय, 'मुकुटताडितक तथा 'पद्य कादम्बरी'।

हर्षचरित -

यह बाण की प्रथम कृति है। इसमें सम्राट हर्षवर्धन का इतिहास समाविष्ट है। हर्षचरित बाण के शब्दो में ही एक आख्यायिका[1] है। जो आठ उच्छवासों में विभक्त है। कुछ विद्वानों का कथन है कि हर्षचरित अपूर्ण है।[2] परन्तु विचार करने से मत पुष्ट नहीं प्रतीत होता। यदि हम सम्यक् रूप से हर्षचरित का आलोड़न करें तो यह स्पष्ट होगा कि हर्षचरित पूर्ण रचना है। हर्षचरित में एतिहासिक कथानक को आधार बनाने के कारण कुछ विद्वान इसे 'ऐतिहासिक काव्य' की संज्ञा देते हैं। किन्तु इसे पूर्व रूप से ऐतिहासिक मानना उचित नहीं है। कथानक के नायक हर्ष का व्यक्तित्व ऐतिहासिक अवश्य है किन्तु कथानक में पर्याप्त रूप से कवि की निजी काल्पनिक उड़ान भी है। बाण ने वास्तव में तथ्य तथा कल्पना (Fact and Fiction) का मिश्रण किया है और कई लोककथात्मक रूढ़ियों (Folk tale motif) का भी प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ

---

[1] तथापि नृपतेर्भवत्या भीतो निर्वहणाकुलः।
करोम्याख्यायिकाम्भोधौ निह्लाप्लवचापलम्।।
– हर्षचरित

[2] कीथ– संस्कृत साहित्य का इतिहास (अनु० मंगलदेव शास्त्री) पृ० ३७६ तथा
Kane's Introduction to the Harshacharita, P. 28

आरम्भ में दधीचि तथा सरस्वती की प्रणय–गाथा है, तृतीय उच्छ्वास में पुष्यभूति की कथा है तथा आठवें उच्छ्वास में मन्दाकिनी एकावली की कल्पना है। ये सब लोककथात्मक रूढ़ियाँ ही है जिनका ऐतिहासिक आधार कुछ नहीं। हर्षचरित की शैली तो पूर्वरूपेण काव्यात्मक है जिसमें हर्ष के जीवन–चरित को कल्पना के ताने–बाने से बुना गया रंगीन परिधान पहना दिया गया है। जबकि हर्षचरित को लिखने के पहले बाण ने यह विचार किया था कि हर्ष के जीवन के केवल "एकदेश" का वर्णन करना है। जब श्यामल बाण से हर्षचरित का वर्णन करने के लिए कहते हैं, तब बाण कहते हैं– आर्य, आपने युक्ति–युक्त बात नहीं कही। आपके कुतूहल के मनोरथ को अपघटित–सा समझता हूँ। प्रायः स्वार्थ की इच्छाएं सम्भव और असम्भव के विवेक से शून्य होती है। दूसरे के गुणों में अनुरक्त, प्रियजनों की कथा को सुनने के रस से मोहित बुद्धि बड़े लोगों के विवेक का अपहरण कर लेती है। आर्य, देखें, कहाँ परमाणु के परिणाम वाला बटु–ह्रदय और कहाँ समस्त ब्रह्म स्तम्भ में व्याप्त देव का चरित। कहाँ परिमत वर्णों वाले कतिपय शब्द और कहाँ असंख्य वे गुण ! वे सर्वज्ञ के भी अविषय हैं, वाचस्पति के भी अगोचर हैं, सरस्वती के लिए भी अतिभार है, तो फिर हम जैसों के विषय में कहना ही क्या ? कौन पुरुषों की सौ आयु से भी इनके चरित्र का वर्णन कर सकता है ? यदि एक अंश के प्रति कुतूहल हो, तो हम प्रस्तुत हैं।

"कः खलु पुरुषा युष शतेनापि शक्युयाद विकलमस्य चरितं वर्णयितुम्। एकदेशे यदि कुतूहल वः सज्जा वयम्।" – हर्षचरित

कतिपय अक्षरों को प्राप्त करने से लघु इस जिह्वा का कहाँ उपयोग हो सकता है ? आप लोग श्रोता हैं। हर्षचरित का वर्णन किया जा रहा है।[1]

बाण के इस कथन से ही उनके विचार का पता लगता है। ये हर्ष के जीवन के केवल एक अंश का वर्णन करना चाहते हैं। इसका कारण क्या हो सकता है ? यह तो हम जानते ही हैं कि बाण किसी वस्तु का संक्षिप्त वर्णन नहीं करते। वे उस वस्तु की समुपस्थापना अनेक दृष्टियों से करते हैं। इसलिए हर्षचरित के आठ उच्छ्वासों में छोटी सी घटना का वर्णन हो सका है। बाण ने हर्ष के पूरे चरित का वर्णन के विषय में अपनी जो असमर्थता व्यक्त की है, उसका तात्पर्य यह हैकि हर्ष के पूरे जीवन का वर्णन नही कर सकते थे। जब उन्होंने थोड़े से अंश का वर्णन सात उच्छ्वासों में किया है, तो पूरे जीवन के वर्णन के लिए पचासों उच्छ्वासों की योजना करनी पड़ती। यह बहुत ही कठिन कार्य था। अतः उन्होंने पहले ही व्यक्त कर दिया है कि हर्ष के पूरे जीवन का वर्णन नहीं हो सकता। जब उन्होंने ऐसा विचार कर लिया, तो उन्हें इसका भी निर्णय करना था कि हर्ष के जीवन के कितने अंश का वर्णन किया जाये कि पूर्ण काव्य की मान्यता की दृष्टि से समीचीन हो। ऐसा उन्होंने दो दृष्टियों से किया। एक तो राज्यश्री की प्राप्ति का वर्णन भी आवश्यक था और दूसरी बात यह भी है कि राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति की ओर संकेत भी हो जायेगा। यही बाण के एकदेश का समापन हो जाता है। यह अपने में पूर्ण है। हर्षचरित में राज्यश्री की प्राप्ति ही फल है। बाण स्वयं कथा की समाप्ति की सूचना देते हैं –

---

[1] हर्षचरित ३/४१

'तत्र च राज्यश्री प्राप्तिव्यतिकरकथां कथयत एव प्रणयिभ्यों रविरपि ततार गगनतलम्।'[1]

यदि बाण आगे का वर्णन करते, तो उस सौन्दर्य का आधान नहीं कर सकते थे, जिसका आधान उन्होंने राज्यश्री की प्राप्ति के वर्णन के द्वारा किया। बाण ने हर्ष के जीवन का वर्णन केवल एक दिन किया। सन्ध्या हो जाने पर उन्होंने कथा समाप्त कर दी। इसका प्रमाण 'तत्र च ....गगनतलम्' है।

फ्यूरर के द्वारा सम्पादित हर्षचरित के अष्टम उच्छ्वास के अन्त में 'भद्रमोम्' प्रयोग प्राप्त होता है।[2] यह प्रयोग माङ्गलिक है तथा ग्रन्थ की समाप्ति की सूचना देता है। अन्य उच्छ्वासों के अन्त में 'भद्रमोम्' प्रयोग नहीं हुआ है। इससे अष्टमउच्छ्वास का अन्य उच्छ्वासों से वैशिष्ट्य प्रतीत होता है। कवि ने ग्रन्थ की पूर्णता को सूचित करने के लिए यह प्रयोग किया है। हर्षचरित का अन्तिम वाक्य माङ्गलिक है –

'संध्या–समय का अवसान होते ही निशा नरेन्द्र के लिए उपहार में चन्द्रमा ले आयी, मानो निज कुल की कीर्ति अपरिमित यश के प्यासे राजा के लिए मुक्ताशैल की शिला से बना पात्र ले आयी, माने राज्यश्री कृतयुग का आरम्भ करने के लिए उद्यत राजा के लिए आदिराज की राज्याधिकार की राजतमुद्रा ले आयी, मानो आपत्ति सभी द्वीपों को जीतने की इच्छा से प्रस्थान किए हुए राजा के लिए श्वेतद्वीप का दूत ले आयी। '[3]

---

[1] हर्षचरित ८/८६

[2] श्री हर्षचरित महाकाव्य (फ्यूरर द्वारा सम्पादित) पृ० ३४२

[3] 'अवसिते सन्ध्यासमये समनन्तरमपरिमित यशः पानतृषिताय मुक्ताशैल शिलाचषक इव निजकुल कीर्त्या, कृतयुग करणोंद्यतायादिराजराजतशासनमुद्रानिवेश इव राज्यश्रिया, सकलद्वीप जिगीषाचलिताय श्वेतद्वीपदूत, इव चापत्या, श्वेतभानु रूपा नीयत निशया नरेन्द्रायेति।' – हर्षचरित ८/८६

हर्षचरित की पूर्णता पर **डॉ० भोलाशंकर** व्यास का कथन अतीत महत्त्वपूर्ण है– "कादम्बरी को अधूरा छोड़ देने में बाण की असामयिक मृत्यु ही कारण है किन्तु हर्षचरित में केवल यही कारण जान पड़ता है कि कवि की कल्पनावृत्ति तृप्त हो चुकी थी।" – संस्कृत कवि दर्शन पृ० ४८६।

हर्षचरित एक गद्य काव्य है। इसमें घटनाओं की प्रामाणिकता और यथार्थता की खोज करना लेखक के साथ अन्याय है। ऐतिहासिक दृष्टि से हर्षचरित का मूल्य अधिक नहीं है। वास्तव में बाण के सामने अपने समकालीन राजाओं से सम्बन्धित घटनाचक्र स्पष्ट नहीं था और न उसे प्रस्तुत करने का उनका लक्ष्य ही था। **डॉ० कीथ** के शब्दों में 'इतिहास को जो उनकी देन है वह है सेना के, राजगृह के, विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के तथा बौद्धों के साथ उनके सम्बन्धो के और ब्राह्मणों के व्यवसायी तथा मित्रों के स्पष्ट चित्र।"[१]

डॉ० व्यास ने उचित ही लिखा है– "हर्षचरित की प्रकृति मूलतः गद्यकाव्य की है तथा ऐतिहासिक कथावस्तु चुनने के ही कारण वह ऐतिहासिक इसलिए नहीं माना जा सकता कि हर्षचरित की शैली, आत्मा तथा टेकनिक सभी एक रोमांटिक कहानी का रूप लेकर आती है।"

हर्षचरित में बाणभट्ट की शैली, चरित–चित्रण और वर्णन की वृहदता दर्शनीय है। सती होने के लिए तत्पर यशोवती के मनोभावों का हृदयग्राही, करूण तथा मार्मिक चित्रण अभूतपूर्व है।" बाण भाव और भाषा के धनी हैं। भावों की गहनता, विचारों की नूतनता, कल्पना की ऊँची उड़ान, रसों के परिपाक और अलङ्कारों के प्रयोग में वे अनुपम दिखाई पड़ते हैं।" इसी कारण सोड्ढल

---

[१] संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ० मंगलदेव शास्त्री कृत हिन्दी रूपान्तर – पृ०–१७७

ने हर्षचरित की प्रशंसा में लिखा है – हर्षचरित की उदात्तता को देखकर कविजन अपने कवित्व का दुरभिमान त्याग बैठते हैं।

बाणस्य हर्षचरिते निशितामुदीक्ष्य।

शक्तिं न केवऽत्र कवितास्त्रमदं त्यजन्ति।

उपर्युक्त साक्ष्यों के आलोक में देखने से यह प्रकट होता है कि हर्षचरित एक पूर्ण रचना है।

हर्षचरित के टीकाकार –

शङ्कर –

हर्षचरित की शङ्कर–कृत टीका का नाम संकेत है। यह प्रकाशित हो चुकी है। संकेत की एक पाण्डुलिपि मिली है, जिसका समय स्यात् विक्रम संवत् ७५२० है।[१] शङ्कर के समय का निश्चित पता नहीं है।

शङ्कर शायद कश्मीर के थे, क्योंकि उनकी टीका केवल कश्मीर में प्राप्त हुई है।[२] शङ्कर ने अपनी टीका में देशी–भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है।[३] इन शब्दों की पहचान हो जाने से शङ्कर की जन्मभूमि अथवा निवास–स्थान के सम्बन्ध में अधिक निश्चित धारणा बन सकेगी।

शङ्कर की टीका अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसमें प्रायः सभी क्लिष्ट शब्दों के अर्थ दे दिये गये हैं।[४] तात्कालिक संस्कृति को समझने में इससे पर्याप्त

---

[१] Kane's Introduction to the Harshacharita P. 41

[२] ibid, P.4

[३] गुञ्जासंज्ञः शङ्खभेदों यत्पृष्ठे जतु परिकलितं भवति। 'सन्ना' इति यस्य प्रसिद्धिः।'
– हर्षचरित, शंकरकृतटीका, पृ० ३५३

[४] दुर्बोधे हर्षचरिते सम्प्रदायानुरोधतः।
गूढार्थोन्मुद्रणां चक्रे शंकरो विदुषां कृते।। – हर्षचरित, शङ्करकृतटीका, पृ० ३५३

सहायता मिलती है। शङ्कर अपनी टीका में केचित्, अन्ये आदि पदों के द्वारा अन्य विद्वानों के मतों का भी निर्देश करते हैं।[1]

<u>रङ्गनाथ</u> :-

रङ्गनाथ की टीका का नाम मर्मावबोधिनी है।[2] यह केरल विश्वविद्यालय के हर्षचरित के संस्मरण के साथ प्रकाशित हुई है। रङ्गनाथ कृष्णार्य के पुत्र थे और गोष्ठी कुल में उत्पन्न हुए थे। वे नारायण के शिष्य और श्रीकृष्ण के भक्त थे।[3] श्री रङ्गनाथ केरल में उत्पन्न हुए थे इनकी रचनाओं में केरल भाषा (मलयालम) के पदों का भी प्रयोग हुआ है।[4]

मर्मावबोधिनी टीका हर्षचरित के अर्थ के निर्धारण में बड़ी सहायता करती है। टीकाकार ने व्याकरण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण शब्दों की व्युत्पत्ति भी प्रस्तुत की है और पाणिनी के सूत्रो का उल्लेख किया है।[5] टीका में ऋकसंहिता, रामायण, महाभारत, याज्ञवल्क्य स्मृति, रघुवंश, सूर्यशतक, कादम्बरी, जानकीहरण, काशिका आदि ग्रन्थों से उद्धरण दिये गये हैं।[6]

---

[1] हर्षचरित शङ्कर—कृत टीका, पृ० १,४,८,१० आदि

[2] स्पष्टार्थानां प्रदेशानां व्याख्यानं निष्फलं यतः।
अस्पष्टार्थानि वाक्यानि व्याख्यातानि पदानि च।।
निदर्शयन्त्य प्रसिद्धं नाम व्यावृण्वती तथा
दुबोधाख्यानियं व्याख्या नाम्ना मर्मावबोधिनी।।
— हर्षचरित, (के०वि०), रंङ्गनाथ—कृत व्याख्या, पृ० २

[3] जननेन यदोर्वंशं वंशं च वदनेन्दुना। पुनानं श्रुतिभिर्गीतं गायन्तं कष्णमाश्रये।। ....
अतोऽस्य व्याक्रिया गोष्ठीकुलेन यथामति। श्री रंङ्गनाथेन कृता श्री कृष्णार्यस्य सूनुना।।
— हर्षचरित, (के०वि०), रंङ्गनाथ—कृत व्याख्या, पृ० १२

[4] हर्षचरित, (के०वि०), परिशिष्ट २, पृ० १—१८।

[5] हर्षचरित, (के०वि०), अवतारिका, पृ० १८—२१।

[6] हर्षचरित, (के०वि०), परिशिष्ट १, पृ० १—६।

रुय्यक – हर्षचरित वार्तिक की रचना रूय्यक ने की थी।

शङ्करकण्ठ – श्री कृष्णमाचार्य ने शङ्करकण्ठ की टीका का उल्लेख किया। है।[1]

रङ्गनाथ की पद्यबद्ध टीका –

हर्षवर्धन का वर्णन करते हुए बाण ने अविसंवादी[2] पद का प्रयोग किया है। इसे स्पष्ट करने के तात्पर्य से रङ्गनाथकृत टीका में अधोलिखित श्लोक समुद्धृत किये गये हैं –

संवादस्त्वानुकूल्यं स्याद् विसंवादी विलोमता।
अत्रायमर्थोऽभिप्रेतः कविना क्रियते स्फुटम्।।
व्रतानुष्ठान समये कान्तया शयनस्थया।
सकामयाभिलषितः तस्यामविकृतेन्द्रियः।।
नाचरत्यानुकूलं यः सम्भोगकरणादिना।
स विसंवादिकोऽन्यो यः सोऽविसंवादिसंज्ञितः।।[3]

श्लोक जिस ग्रन्थ के हैं, उसका उल्लेख टीका में नहीं किया गया है। टीका में पहले संवाद का अर्थ आनुकूल्य और विसंवाद का अर्थ विलोमता दिया गया है। इससे भाव का प्रकटन नहीं होता। अतः टीकाकार कहता है कि कवि को जो अर्थ अभिप्रेत है, उसे स्फुट किया जा रहा है–

'अत्रायमर्थोऽभिप्रेतः कविना क्रियते स्फुटम्।'

---

[1] M. Krishnamachariar : History of Classical Sanskrit Literature, P. 449.
[2] अविसंवादिनं राजर्षिम्' – हर्षचरित २/३२
[3] हर्षचरित, रंङ्गनाथ–कृत टीका, पृ० १०२–१०३

इस श्लोकार्ध से प्रकट होता है कि हर्षचरित की कोई श्लोक बद्ध टीका थी।

शङ्करकण्ठ और रूय्यक की टीकायें उपलब्ध नहीं होती। यह नहीं कहा जा सकता कि इस टीका की रचना शङ्करकण्ठ या रूय्यक अथवा किसी अन्य ने की। किन्तु यह निश्चित रूप से प्रमाणित होता है कि हर्षचरित आख्यायिका की एक श्लोक–बद्ध टीका थी।[1]

हर्षचरित कथानक -

हर्षचरित आख्यायिका का शुभारम्भ शिव–स्तुति से होता है। इसके पश्चात् प्रस्तावना के २१ श्लोकों में कवि ने अपने पूर्व के अनेक कवियों की उदारता के साथ प्रशंसा की है। जिनमें महाभारत के व्यास इत्यादि का वर्णन तथा बाण ने यह भी बतलाया है कि उदीच्य, लोगों का काव्य श्लेष–बहुल होता है। पश्चिमी लोगों में केवल अर्थ पर ध्यान दिया जाता है, दक्षिणाओं में उत्प्रेक्षा को पसन्द किया जाता है और गौड़ देश में शब्दाऽम्बर को महत्त्व दिया जाता है।[2]

प्रस्तावनोपरान्त प्रथम उच्छ्वास में बाण अपने वंश का वर्णन तथा यौवन पर्यन्त अपने जीवनवृत्त का चित्रण करते हैं।

द्वितीय उच्छ्वास में बाण द्वारा कृष्ण के पत्र की प्राप्ति से लेकर उनकी राजसभा में जाने तक की कथा है। सम्राट हर्ष का भी कवि ने विस्तृत कलात्मक चित्रण किया है।

---

[1] आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेन्स, यादवपुर (१९६९) में पढ़े गये डॉ० अमरनाथ पाण्डेय के शोधपत्र 'ऐ नोट आन ए श्लोकबद्ध कमेण्टरी ऑन द हषचरित' के आधार पर।

[2] श्लेषगायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थ मात्रकम्।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरऽम्बरः।। — हर्षचरित, १–७।

द्वितीय उच्छ्वास में बाण द्वारा कृष्ण के पत्र की प्राप्ति से लेकर उनकी राजसभा में जाने तक की कथा है। सम्राट हर्ष का भी कवि ने विस्तृत कलात्मक चित्रण किया है।

तृतीय उच्छ्वास में बाण ने अपने गांव में सम्बन्धीजनों द्वारा हर्षचरित सुनाने की प्रार्थना करते हैं जिसे बाण स्वीकार कर लेते हैं।

चतुर्थ उच्छ्वास में पुष्यभूति से उत्पन्न राजाओं का अस्पष्ट निर्देश है और कवि प्रभाकरवर्धन पर पहुंच जाता है। फिर क्रमशः राज्यवर्धन, हर्ष और राज्यश्री का जन्म होता है जिस पर नगर में उत्सव मनाये जाते हैं। राज्यश्री और मौखरि नरेश गृहवर्मा का विवाह वर्णित है।

पॉचवे उच्छ्वास में कथा में महत्वपूर्ण मोड़ आता है। राज्यवर्धन हूणों पर आक्रमण के लिए चल देता है। पर पिता के मरणासन्न होने पर लौट आता है। यहाँ पर कवि ने अनेक सजीव चित्रों के द्वारा शोक–मग्न–परिजनों, पति के दुःख से दग्ध रानी, पिता की दशा पर दुःखी हर्ष तथा रोग की असह्य पीड़ा तथा प्राणों से निराश राजा का सुन्दर चित्रण किया है। हर्ष का गम्भीर विलाप राजा के मरणोपरान्त का चित्रण है।

छठा उच्छ्वास किसी भावी अनिष्टकारी घटन से प्रारम्भ होता है। राज्यवर्धन हूणों पर विजय प्राप्त कर लौटता है पिता के शोक से कातर हो जाता है। मालव–नरेश द्वारा राज्यश्री का पति गृहवर्मा मार डाला गया था तथा राज्यश्री को बन्दी बना लेता है।

सप्तम् उच्छ्वास में हर्ष प्रस्थान–काल के मंगल–कार्यों का सम्पादन कर एक विशाल सेना लेकर प्रयाण करता है। राज्यवर्धन की मृत्यु से शोकाकुल राज्यश्री अपने परिजनों के साथ विन्ध्य–वन में चली गई है इन सबका वर्णन है।

अष्टम् उच्छ्वास हर्ष विन्ध्याटवी पहुंच जाता है। वहाँ निर्घात नामक शबर युवक राज्यश्री को खोजने में मदद करता है। राज्य श्री अपने दुःखी जीवन का समाप्त करना चाहती है। किन्तु दिवाकर मित्र उसे समझाकर बड़े भाई की आज्ञा मानने का उपदेश देते हैं। यहीं वह हर्षचरित की कथा एकाएक समाप्त हो जाती है। बाण ने इससे आगे की कथा क्यों निबद्ध नहीं की यह विचारणीय है। सम्भवतः बाण इस बात से परिचित थे कि वे हर्ष के जीवन की सम्पूर्ण घटनाओं को नहीं सुना पायेंगे।

ऐतिहासिक दृष्टि से हर्षचरित का मूल्य अधिक नहीं है। उनके मानव–नृपति के व्यक्तिगत का पता नहीं चलता और गौण नृपति का भी असाक्षात् रूप से ह्वेनसांग द्वारा बताये गये शशांक होने का अनुमान होता है। वास्तव में बाण के सामने इन राजाओं से सम्बन्धित घटना–चक्र सम्भवतः स्पष्ट ही नहीं था और न उसे उन्होंने समझाने का प्रयत्न किया है। डॉ० कीथ का कथन उचित ही है कि – "इतिहास को जो उनकी देन है वह है। सेना के राजगृह के, विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के तथा बौद्धों के साथ उनके सम्बन्धों के, और ब्राह्मणों के व्यवसायों तथा मित्रों के स्पष्ट चित्र।"[१]

❏❏❏

[१] संस्कृत साहित्य का इतिहास (डॉ० मंगलदेव शास्त्रीकृत हिन्दी रूपान्तर), पृ० १७७

तृतीय अध्याय

कादम्बरी का वस्तु-विन्यास

कादम्बरी का वस्तु-विन्यास

कादम्बरी :-

'कादम्बरी' सरस्वती के वरदपुत्र बाणभट्ट तथा उनके पुत्र भूषण भट्ट की सम्मिलित अमर रचना है जो संस्कृत वाङ्मय का समुज्ज्वल हीरक है। जिसमें उनकी कला अपने ऐसे सशक्त समृद्ध, प्रौढ, परिपक्क, और उर्वर रूप में निखरी है कि कुछ न पूछो। वास्तव में यह संस्कृत साहित्य के गद्यकाव्य की एक अनमोल निधि या आगार है, रोमानी प्रेम–भावना से ओत–प्रोत एक ऐसा उपन्यास है जिसके सम्बन्ध में संस्कृत का यह कथन ही चल पड़ा कि **'कादम्बरीरसज्ञानाम् आहारोऽपि न रोचते'**। अलंकार तथा रस के मधुरमिलन में, भाषा तथा भाव के परस्पर सम्पर्क में, कल्पना तथा वर्णन के अभूतपूर्व संघटन में कादम्बरी संसार के सम्पूर्ण गद्यगन्थों में सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। 'कादम्बरी' समग्र रसिक सहृदयों को अपनी मदिरा से मत्त करने वाली मधुर मधु है। बाण तनय की यह उक्ति अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं कहा जा सकता–

कादम्बरी रस भरेण समस्त एव, मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयन्।

कादम्बरी 'कथा' काव्य है। आधुनिक काव्य शास्त्रीय शब्दोंमें यह संस्कृत का एक मनोरम उपन्यास है। बाण के असमय मे परममोक्ष को प्राप्त कर लेने पर 'कादम्बरी' अपूर्ण रह जाती है। बाण के पुत्र ने इसे पूरा किया था इस विषय में पुलिनभट्ट ने लिखा है कि –

याते दिवं पितरि तदवचसैव सार्धे, विच्छेदपि भुवियस्तु कथाप्रबन्धः।

दुःख सतां तद समाप्तिकृतं विलोक्य, प्रारब्ध एष च मया न कवित्वदर्पात्।।

इस रचना की अपूर्णता के सम्बन्ध में जनश्रुति है कि अपने जीवन के अन्तिम दिनों में कादम्बरी के अपूर्ण रह जाने की चिन्ता बाण को हुई। उन्होंने अपने दोनों पुत्रों के समझ अपनी इस विकट समस्या को प्रस्तुत की और इस विषय में उनकी य़ोग्यता की परीक्षा लेनी चाही और उने समक्ष खड़े हुए सूखे वृक्ष का वर्णन करने को कहा। ज्योतिषी पुत्र ने इस प्रकार कहा – *'शुष्कों वृक्षस्तिष्ठत्यग्रे'।*

आर रसिक पुत्र ने उस वृक्ष का इस प्रकार वर्णन किया– *"नीरस तरूरिह विलसति पुरतः"।*

बाणभट्ट ने दूसरे पुत्र की अपनी अपूर्ण कृति का पूरा करने का भार सौंप दिया उसके पश्चात् अपनी जीवन लीला समाप्त की।

कुछ विद्वानों का कथन है कि कादम्बरी (पूर्वार्द्ध) के प्रारम्भ के श्लोकों की रचना बाण ने नहीं की थी, अपितु उनके पुत्र ने या किसी अन्य ने की थी।[1] पर यह कथन समीचीन नहीं है। यदि बाण के पुत्र ने कादम्बरी के प्रारम्भिक श्लोकों की रचना की होती, तो वे अपनी कर्त्तृता के सम्बन्ध में इसका निर्देश करते, जैसा कि उन्होंने उत्तरभाग के प्रारम्भिक श्लोकों में कहा है।[2] क्षेमेन्द्र औचित्यविचारचर्चा और कविकण्ठाभरण में कादम्बरी की भूमिका के श्लोकों को बाण के नाम से समुद्रधृत् किया है।[3] बाण परम्परावादी कवि थे। मंगल का विधान किये बिना वे काव्य–रचना का विधान क्यों करते ? हर्षचरित के प्रारम्भ में भी उन्होंने मांगलिक श्लोकों की योजना की है। अतः कादम्बरी की भूमिका के श्लोकों की बाण विरचित न मानना न्याय संगत नहीं होगा।

---

[1] Kane's Introduction to the Harshacharita P. 41

[2] ibid, P. 19.

[3] काव्यमाला, प्रथम गुच्छक, औचित्य विचारचर्चा

कादम्बरी के टीकाकार -

बाद में कवियों ने कादम्बरी को उपजीव्य काव्य मानकर अनेकों रचनाएं की है। और अनेकों ने इस पर टीका भी लिखा है।

भानुचन्द्र तथा सिद्धचन्द्र -

कादम्बरी के पूर्व भाग बाण द्वारा रचित के टीकाकार भानुचन्द्र है और उत्तर भाग भूषणकृत के टीकाकार सिद्धचन्द्र हैं। भानुचन्द्र सूरचन्द्र के शिष्य थे और सिद्धचन्द्र भानुचन्द्र के शिष्य। ये दोनों अकबर के समय में हुए थे और सम्राट से सम्मानित भी हुए थे।[1] भानुचन्द्र और सिद्ध चन्द्र जैन थे।[2] इनकी टीकाओं में प्रायः प्रत्येक पद का स्पष्टीकरण किया गया है। इससे कादम्बरी का अर्थ समझने में बड़ी सहायता मिलती है। प्रत्येक टीका में कुछ न कुछ त्रुटियां रहती हैं इसमें भी कहीं–कहीं अर्थ करने में खींचातानी की गयी है और कहीं–कहीं अर्थ भी अशुद्ध है।[3]

---

[1] श्रीसूरचन्द्रः समभूत्तदीयशिष्याग्रणीर्न्याय विदां वरेण्यः।
यत्तर्कयुक्त्या त्रिदिव निषेवे तिरस्कृतश्चित्रशिखण्डिजोऽपि।।
तदीय पादाम्बुजचञ्चरीको विराजतेऽद्धाहरिधीसरवाभः।
श्री वाचकः सम्प्रति भानुचन्द्रो ह्यकब्बरक्ष्मापतिदन्तमानः।।
श्री शाहिचेतोऽब्जषड्ङ्घ्रितुल्यः श्री सिद्धचन्द्रोऽस्ति मदीयशिष्यः।
कादम्बरीवृत्तिरियं तदीयमनोमुदे तेनमया प्रतन्पते।।
— कादम्बरी, भानुचन्द्रकृत टीका, पृ० २

[2] कादम्बरी, भानुचन्द्रकृत टीका, पृ०–१

[3] Kane's Introduction to the Kandambari (Purvabhaga, PP. 1-124 of Peterson;s Edition), P. 45.

शिवराम, सुखाकर, बालकृष्ण, महादेव -

पीटर्सन ने अपनी टिप्पणी में शिवराम, सुखाकर, बालकृष्ण तथा महादेव की टीकाओं (केवल पूर्व भाग पर) से उद्धरण दिये हैं।[१]

वैद्यनाथ -

विषमपद विवृति[२] वैद्यनाथ की टीका का नाम है। यह कादम्बरी के केवल पूर्वभाग पर है। इसमें कठिन पदों का ही स्पष्टीकरण किया गया है।[३]

आमोद और दर्पण -

आमोद और दर्पण दोनों टीकाओं में बहुत स्थलों पर साम्य प्राप्त होता है। म०म० कावे का अनुमान है कि आमोद के टीकाकार दर्पण के टीकाकार के बाद के हैं।[४]

श्री कृष्णमाचार्य ने कादम्बरी की हरिदास[५] तथा घनश्याम[६] द्वारा रचित विरचित टीकाओं का भी उल्लेख किया है। सूरचन्द्र नामक टीककार का भी उल्लेख मिलता है।[७]

---

[१] Peterson's Notes on the Kadambari, PP. 111,112.....etc.

[२] यह टीका प्रकाशित नहीं हुई है। –डॉ० अमरनाथ पाण्डेय

[३] 'अवचूलेति गुच्दकं चाचूलकमितित्रिकांऽशेषः' ।

—कादम्बरीविषमपदविवृत्ति, चतुर्थ पर्ण।

'शोभानाप्ता जटायस्यप्ताजटापिप्रकीर्तितेतिकोशः'।

—कादम्बरीविषमपदविवृत्ति, पञ्चम् पर्ण।

[४] ibid, PP. 48-49.

[५] M. Krishnamachariar : History of Classical Sanskrit Literatur, P. 450.

[६] ibid P. 450

[७] Kane's Introduction to the Kandambari (Purvabhaga, PP. 1-124 of Peterson;s Edition), P. 46.

अष्टमूर्ति -

इनकी टीका का नाम आमोद है। यह श्लोकबद्ध है। अष्टमूर्ति के पिता का नाम नारायण था। ये केरल के रहने वाले थे तथा भृगुगोत्र के थे।[१] पूर्वभाग तथा उत्तरभाग दोनों की टीका की है।[२] टीका में निम्नलिखित कवियों ओर रचनाओं का निर्देश है – अमर, कालिदास, केशवस्वामी, कौटिल्य, क्षेमेन्द्र, दण्डी कामन्द कीय नीति आदि।[३]

अर्जुन -

म०म० कावे ने उत्तर भाग की एक टीका का उल्लेख किया है। इसके रचयिता अर्जुन पण्डित है। वे चक्रदास के पुत्र थे।[४]

कादम्बरी से सम्बद्ध कथाएं सोमदेव रचित कथासरितत्सागर[५], क्षेमेन्द्रकृत वृहत्कथामञ्जरी[६] तथा दण्डी की अवन्तिसुन्दरी कथा[७] में कादम्बरी की कथा उपलब्ध होती है।

---

[१] टीका के प्रारम्भिक श्लोक –
'उपास्महे जगज्जन्मस्थितिसंहारकारणम्।
अविद्याध्वान्तविध्वंसि जानकीरमणं महः।।१।।
पूर्वेण गुणतामासीत् केरलेषु भृगोःकुले।
विप्रो नारायणस्तस्मादष्ट मूर्ति रजायत।।२।। ....
जातिसमन्वयसम्भृतपरभागैः साधयाम्यहं विदुषाम्।
वृत्तैः साधु निबद्धैश्चम्पकदामभिरिवामोदम्।।५।।
Quoted on P. 46 in Kane's Introduction to the Kandambari (Purvabhaga, PP. 1-124 of Peterson;s Edition).

[२] ibid., P.47

[३] Kane's Introduction to the Kandambari (Purvabhaga, PP. 1-124 of Peterson;s Edition), P. 47.

[४] ibid, P. 49.

[५] कथासरित्सागर (द्वितीय खण्ड), दशमलम्बक, तृतीय तरङ्ग।

[६] वृहत्कथामञ्जरी १६/१८३ – २४८

[७] M. Krishnamachanriann : History of Classical Sanskrit Literature, P. 459.

कादम्बरी की कथा को उपजीव्य के रूप में अधोलिखित लेखकों ने ग्रहण किया है – अभिनन्द–कृत कादम्बरी कथासार (८ सर्गों में), विक्रमदेव (त्रिक्रमदेव) द्वारा रचित कादम्बरी कथासार (१३ सर्गों में), त्र्यम्बक–कृत कादम्बरी कथासार, श्री कण्ठाभिनवशास्त्री द्वारा विरचित कादम्बरी चम्पू, नरसिंह–कृत कादम्बरी कल्याण, क्षेमेन्द्र–कृत पदकादम्बरी[1], मणिराम–कृत कादम्बरी कथासार तथा काशीनाथ– विरचित संक्षिप्त कादम्बरी में कादम्बरी की कथा संक्षिप्त रूप में उपनिबद्ध हुई है।[2]

चण्डीशतक -

इसमें सौस्रग्धरा छन्दों में चण्डी की स्तुति[3] की गयी है। किंवदन्ती है कि बाण ने क्रुद्ध होकर मयूरकवि को कोढ़ी होने का शाप दिया और मयूर कवि ने प्रत्युत्तर में बाण को कोढ़ी का शाप दे दिया। मयूर ने कोढ़ से मुक्ति पाने हेतु 'मयूरशतक' या 'सूर्यशतक' की रचना की । बाण ने भी चण्डीशतक रचना करके कोढ़ से मुक्ति पाई। चण्डीशतक रचते समय बाण के सामने मार्कण्डेय पुराण के देवी माहात्म्य की कथा[4] या इसी प्रकार की अन्य कोई कथा रही होगी। देवी

---

[1] क्षेमेन्द्र ने अपने कविकण्ठाभरव में अपनी पद्यकादम्बरी से आ० श्लोक उद्धृत किये हैं। इससे विज्ञात होता है कि उन्होंने पद्यकादम्बरी की रचना की।
दृष्टव्य– काव्यमाला, चतुर्थ गुच्छक, कविकण्ठाभरव, पृ० १५७–६०, १६३–६५।

[2] M. Krishnamachanriann : History of Classical Sanskrit Literature, PP. 450-451.

[3] चण्डीशतक की गाठबन्ध शैली के लिए एक श्लोक दृष्टव्य है–
विद्राणे रूद्रवृन्दे सवितरितरले वज्रिविध्वस्त वज्रे,
जाताशङ्के शशाङ्के विरमति मरुतिव्यक्तवैरेकुबेरे।
वैकुण्ठे कुण्ठितास्त्रे महिषमतिरूषं पौरुषौपध्यननिघ्नं,
निर्विघ्नं निघ्नतो वः शमयतु दुरितं भूरिभावा भवानी।।

[4] दृष्टव्य–मार्कण्डेयपुराण, देवी महात्म्य (अध्याय ८१–६३)

महिषासुर का वध करती है, यही चण्डीशतक की कथावस्तु। यह संक्षिप्त कथानक १०२ श्लोकों में निबद्ध किया गया है।[1]

बाणभट्ट के काव्यानुशासन में चण्डीशतक के श्लो 'माभाङ्क्षीः .....।''[2] (चण्डी०श्लोक–१) तथा 'शूलं तूलं नु .....।।'[3] (चण्डी०श्लोक–२३) उद्घृत किये गये हैं।

अमरूशतक के टीकाकार अर्जुनवर्मदेव अपनी टीका में चण्डीशतक का एक श्लोक उद्घृत करते हैं और उसे बाण–विरचित बताते हैं।[4]

श्रीधर दास – प्रणीत सदुक्तिकर्णामृत[5] में 'विद्राणे ......भवानी'। श्लोक (चण्डीशतक, श्लोक–६६) उद्धृत किया गया है।

चण्डीशतक का 'विद्राणे .....भवानी।' श्लोक शार्ङ्गधर[6] पद्धति में भी उपलब्ध होता है। यह श्लोक हरिकवि–प्रणीत हारावलि या सुभाषित हाराबलि में भी उद्धृत किया गया है।[7]

---

[1] चण्डीशतक में स्त्रग्धरा और शार्दूलविक्रीडित छन्दों का प्रयोग किया गया है।
६ शार्दूलविक्रीडित (श्लोक २५,३२,४६,५५,५६,७२) है और शेष स्त्रग्धरा छन्द है।
दृष्टव्य– काव्यमाला, चतुर्थगुच्छक, चण्डीशतक।

[2] काव्यानुशासन, अध्याय २, पृ० २५।

[3] काव्यानुशासन, पृ० २७।

[4] "उपनिबद्धं च भट्ट बाणेनैवंविध एवसंग्राम प्रस्तावे देव्यास्तत्तद्भङ्गिभिर्भगवता भर्गेण सह प्रीतिप्रतिपादनाय बहुधा नर्म। यथा– –दृष्टावासक्तदृष्टिः प्रथममथ तथासंमुरवीनाभिमुख्ये स्मेरा हासप्रगल्भे प्रियवचसि कृतश्रोत्रप्रेयाधिकोक्तिः। उघुक्ता नर्मकर्मण्यवतु पशुवतेः पूर्ववत् पार्वती वः कुर्वाणा सर्वमीषद्विनिहित चरणालक्तकेवक्षतारिः।" – अमरूशतक, अर्जुनवर्मदेव–कृत टीका, पृ०३।

[5] सयुक्तिकर्णामृत १/२५/५,

[6] शार्ङ्गधर पद्धति, श्लोक ११२।

[7] G.P.Quackenbos : The Sanskrit Poems of Maurya,Indtroduction, P. 263.

हेमचन्द्र के अनेकार्थसंग्रह की महेन्द्र द्वारा की गयी टीका में अंह्रि (अंघ्रि?) पद पर विचार किया गया।[1]

भोजकृत सरस्वती कण्ठाभरण में चण्डीशतक के श्लोक उद्धृत किये गये हैं।[2]

'चण्डीशतक' के बाणकृत होने में सन्देह प्रकट किया गया है किन्तु इस पक्ष में प्रबल प्रमाण उपलब्ध नहीं होते, अतः इसे बाण की ही कृति प्रायः स्वीकार किया गया है। कादम्बरी में बाण ने चण्डिका के मन्दिर का जो भव्य चित्रण किया है उससे ऐसा आभास होता है कि उनके प्रति बाण के हृदय में पर्याप्त स्थान था[3]

चण्डीशतक के टीकाकार :–

चण्डीशतक की मुख्यतः चार टीकाओं[4] का उल्लेख प्राप्त होता है–

१. धनेश्वर–कृत   २. नागोजिभट्ट–कृत

३. भास्करराय–कृत   ४. लेखक का नाम अज्ञात।

काशीनाथ तथा पं० दुर्गाप्रसाद ने काव्यमाला के चतुर्थ गुच्छक में प्रकाशित चण्डीशतक की टिप्पणी के लिए दो टीकाओं[5] का उपयोग किया है–

१. सोमेश्वर सूनुधनेश्वर–कृत   २. लेखक का नाम अज्ञात

---

[1] हेमचन्द्र : अनेकार्थ संग्रह, Extracts from the Commentary of Mahendra, P 59.

[2] 'नीते निर्व्याजदीर्घामघवति ...... समुद्राः।' (चण्डीशतक, श्लोक ४०)
सरस्वती कण्ठाभरण के द्वितीय परिच्छेद, पृ० शापर, 'प्राक्कामं......यया।।'
(चण्डी शतक, श्लोक ४६) सरस्वतीकण्ठाभरण के पञ्चम परिच्छेद पृ० ६०६ पर तथा
'विद्राणे ....भवानी।।' (चण्डीशतक , श्लोक ६६)
सरस्वतीकण्ठाभरण के द्वितीय परिच्छेद, पृ० २११ पर उद्धृत किया गया है।

[3] कादम्बरी प्रथमोभागः सम्पादक– डॉ० श्रीनिवास शास्त्री डॉ० महेशचन्द्र 'भारतीय' पृष्ठ–२१

[4] M.Krishnamachariar : History of Classical Sanskrit Literature, P. 451.

[5] काव्यमाला, चतुर्थ गुच्छक, चण्डीशतक, पृ०१(पाठ–टिप्पणी)

मुकुटताडितक :–

इस नामांकित नाटक का संकेत नलचम्पू के टीकाकार चण्डपाल और गुणविनय ने अपनी व्याख्या में इसका एक श्लोक उद्‌धृत कर किया है।[1]

भोजराज–कृत श्रृंगार प्रकाश में भी इसका उद्धरण प्राप्त होता है।[2] किन्तु यह रचना सम्प्रति उपलब्ध नहीं और न इसका अन्यत्र कहीं उल्लेख है। अतः इसके विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

शारद चन्द्रिका :–

बाण ने शारदचन्द्रिका की भी रचना की थी इसका उल्लेख भाव प्रकाशन में हुआ है।[3] श्रीकृष्णमाचार्य ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में लिखा है कि दशरूप में बाणकृत शारदचन्द्रिका का उल्लेख हुआ है।[4] किन्तु दशरूप में बाणकृत शारद चन्द्रिका का कही नामोल्लेख नहीं मिलता।

---

[1] "यदाह मुकुट ताडितकनाटके बाणः – आशाः प्रोषितदिग्गजा इव गुहाः प्रध्वस्त सिंहा इव द्रोण्यः कृत्तमहाद्रुमाइवभुवःप्रोत्खातशैला इवा विभ्राणाः क्षपकालरिक्तसकलत्रैलोक्यकष्टां दशां जाताः क्षीण महारथाः कुरुपतेर्देवस्य शून्याः सभाः।।"

– नलचम्पू, चण्डपाल–कृत टीका, उ० ६, पृ०१८५।

[2] "यथा मुकुटतापिते भीमः–
ध्वस्ताः क्षुब्धा धार्तराष्ट्रस्समस्ताः पीतं रक्तं स्वादु दुश्शासनस्य।
पूणा कृष्णाकेशबन्धप्रतिज्ञा तिष्ठत्येकः कौरवस्योरूभङ्गः।।
ऊरू निपीडय गदया यदि नास्य पादेन रत्नमकुटं शकलीकरोमि।
देहं निपीतनिजधूमविजृम्भ मालज्वाला जटालवपुषिज्वलनेजुहोमि।।"

– श्रृंगार प्रकाश, द्वादश,पृ० ५४५, तथा

V. Raghvani Bhoja's Srigav Prakasa, P. 776.

[3] चन्द्रापीडस्य मरणं यत्प्रत्युज्जीवनान्ति मम्।
कल्पितं भट्‌टबाणेन यथा शारद चन्द्रिका।।

– शारदातनयः भाव प्रकाशन , अष्टम अधिकार, पृ० २५२

[4] M.Krishnamachariar : History of Classical Sanskrit Literature, P. 452, footnote

पद्यकादम्बरी :–

क्षमेन्द्र ने अपने 'औचित्यविचारचर्चा' में कादम्बरी की कथा से सम्बन्धित एकपद्य बाण के नाम से उद्धृत किया है और एक श्लोक भी उद्धृत किया है। इसमें चन्द्रापीड से वियुक्त कादम्बरी की विरह–व्यथा का वर्णन है।[१] परन्तु इस रचना के सर्वथा अनुपलब्ध होने से इस विषय में निश्चित रूपेण कुछ कहना असम्भव है।

सर्वचरित नाटक भी बाण–विरचित माना जाता है।[२] श्री कृष्णमाचार्य ने लिखा है कि बाण ने शिवस्तुति की रचना की थी।[३]

कादम्बरी का कथानक (पूर्व भाग)

कथानक की दृष्टि से कादम्बरी का संस्थान उस वसुधानकोश के समान है जिसमें ढ़क्कन के भीतर ढ़क्कन खुलता हुआ पद–पद पर नया रूप, नया विधान अविष्कृत करता है। यहाँ पात्रों के चरित्र एक जीवन में नहीं, तीन–तीन जीवन पर्यन्त हमारे सामने आते हैं। इस जन्म में जिसे हम शूद्रक के रूप में देखते हैं वही पूर्व जन्म में चन्द्रापीड था और चन्द्रापीड के रूप में भी शापवश चन्द्रमा ने अवतार लिया था। जिसे हम इस जन्म में वैशम्पायन तोते के रूप में

---

[१] "यथा वा भट्टवाणस्य –
'हारो जलाद्रवसनं नलिनीदलानि प्रालेयशीकरमुचस्तुहिनांशुभासः।
यस्येन्धनानि सरसानि च चन्दनानि निर्वाणमेंष्यति कथं स मनोभवाग्निः।।'
अत्रविप्रलम्भभरभग्न धैर्यायाः कादम्बर्या विरहव्यथावर्णने माधुर्य सौकुमार्यादिगुणयोगेन पूर्णेन्दुवदनेव प्रियंवदत्वेद ह्वदयानन्ददायिनीं दयिततमतामातनोति।"
–काव्यमाला, प्रथमगुच्छक, औचिंत्य विचारचर्चा, पृ०१२१।

[२] Theodor Aufrecht : Catalogus Catalogorum (Part 1) P. 368.

[३] M.Krishnamachariar : History of Classical Sanskrit Literature, P. 451.

देखते हैं वहीं उससे पूर्व जन्म में उज्जयिनी के मंत्री शुकनास का पुत्र और चन्द्रापीड का अभिन्न सखा वैशम्पायन था जिसे महाश्वेता के शाप से शुकयोनि में जन्म लेना पड़ा। वैशम्पायन ही अपने पूर्व जन्म में पुण्डरीक था जिसके लिए महाश्वेता अनुरागवती हुई थी। निम्नलिखित दो समीकरणो का स्मरण रखना अत्यन्त आवश्यक है। कादम्बरी के कथानक को हृदयंगम करने के लिए–

१. चन्द्रमा = २. राजकुमार चन्द्रापीड = ३. राजाशूद्रक

१. ऋषि कुमार पुण्डरीक = २. मंत्रीपुत्र वैशम्पायन = ३. वैशम्पायन तोता

कादम्बरी के आरम्भ में २० श्लोकों की एक प्रस्तावना है। इसमें सर्वप्रथम अजन्मा परमात्मा के प्रति नमस्कार है। तत्पश्चात् महेश की चरण–रज की वन्दना बाणभट्ट ने की है। तदनन्तर विष्णु की वन्दना करके अपने गुरू भत्सु के चरणकमलों में नमस्कार करते हैं। अब दुर्जनों की निन्दा और सज्जनों की प्रशंसा करते हैं। इसके बाद अभिनव वधू से कथा की तुलना करते हुए सुन्दर कथा के लिए अपेक्षित तत्वों का वर्णन करते हैं। तत्पश्चात् वात्स्यायन वंश में उत्पन्न कुबेर की चर्चा करते हैं और उनके वैदुष्य का उल्लेख करते हैं। अब अर्थपति और अपने पिता चित्रभानु की महिमा का निरूपण करते हैं। अन्त में अपना उल्लेख करते हैं। इसके बाद बाण कथा का शुभारम्भ करते हैं।

शूद्रक नामक अत्यधिक प्रतापी राजा था। वह यज्ञों का कर्त्ता, शास्त्रों का आदर्श, कलाओ का उत्पत्तिस्थल, गुणों का आश्रयदाता, गोष्ठियों का प्रवर्तक तथा रसिकों का आश्रय था। वेत्रवती नदी से परिगत विदिशा नामक नगरी उसकी राजधानी थी। प्रबुद्ध अमात्यों से वह घिरा रहता था। लावण्ययुक्त ओर

हृदय को आकृष्ट करने वाली स्त्रियों के रहने पर भी संगीत, काव्य प्रबन्ध रचना, मृगया–व्यापार आदि के द्वारा वह मनोविनोद करता था।

एक दिन राजदरबार में प्रतीहारी ने आकर राजा से निवेदन किया कि एक चाण्डाल–कन्यका पिजड़ें में एक तोता लेकर आयी है। वह द्वार पर खड़ी है और देव का दर्शन करना चाहती है। राजा ने उसे बुलाने की आज्ञा निर्गत की। चाण्डालकन्या ने प्रवेश करते समय दूर से ही राजा को देखा और उसका ध्यान आकृष्ट करने के लिए वेणुलता से सभाकुट्टिम का एक बार ताड़न किया। राजा उसे देखकर अत्यन्त विस्मित हो गया। उसके पीछे एक चाण्डाल बालक था, जो पिजड़ा लिए हुए था। उसके आगे एक मातंग था, जिसके केश श्वेत हो गये थे। चाण्डाल कन्या अद्वितीय सुन्दरी थी उसका लावण्य अक्षत था। चाण्डालकन्यका ने राजा को प्रणाम किया। इसके बाद शुक को लेकर कुछ आगे बढ़कर उस मातंग ने राजा से निवेदन किया– 'देव, यह शुक सभी शास्त्रों के तात्पर्य को समझता है, राजनीति के प्रयोग में कुशल है, सुभाषितों का अध्येता तथा स्वयं उनकी रचना करने वाला है। यह वैशम्पायन शुक समस्त भूतल का रत्न है। आप इसे स्वीकार करे' यह कहकर राजा के सामने पिंजड़ा रखकर दूर हट गया। विहंगराज ने अपने दाहिने चरण को उठाकर अतिस्पष्ट वाणी में जयशब्छ का उच्चारण किया और राजा के विषय में एक आर्या पढ़ी

स्तनयुगमश्रुस्नातं समीपतरवर्ति हृदयशोकाग्नेः।

चरति विभुक्तहारं व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम्।।

अर्थात महाराज ! आपके शत्रुओं की वनिताओं का स्तनयुगल नेत्रविगलित अश्रुजल से स्नान करके, स्वभर्तृवियोगजनित हृदयस्थ शोकाग्नि के अत्यन्त

समीप रहकार एवं आहार को तिलाञ्जलि देकर अथवा वैद्यव्यवश प्रत्येक अंग से हार का परित्याग करके मानो व्रत का आचरण कर रहा है।

राजा शूद्रक उस आर्या को सुनकर अत्यन्त विस्मित और प्रसन्न हुए। मध्याह्न के समय वे चाण्डालकन्या को विश्राम करने के लिए और ताम्बूल करंक–वाहिनी को वैशम्पायन को भीतर ले जाने के लिए स्वयं आदेश देकर राजपुत्रों के साथ घर के भीतर चले गये। उन्होंने स्नान किया और सूर्य को अर्ध्य देकर शिव की पूजा की। इसके बाद उन्होंने भोजन किया। तदन्तर वे आस्थान–मण्डप में गये। उन्होंने प्रतीहारी का अन्तःपुर से वैशम्यायन को ले आने के लिए आदेश दिया। वैशम्पायन के आने पर उन्होंने कथा कहने के लिए अपना सम्पूर्ण परिचय देनें के लिए कहा। वैशम्पायन ने सोचकर कहा– देव, यह कथा बड़ी लम्बी है। यदि कुतूहल है तो सुनिए–

विन्ध्याटवी नामक वनस्थली वृक्षों से सुशोभित है। वहाँ एक आश्रम था, जहाँ अगस्त्य, लोपामुद्रा और हढदस्यु रहते थे। वहाँ भगवान राम ने भी सीता और लक्ष्मण के साथ कुछ काल तक निवास किया था। उस आश्रम के समीप ही पम्पानामक सरोवर है। सरोवर के पश्चिमी तट पर एक अतीव विशाल सेमर का वृक्ष था। उस वृक्ष पर अनेक खग–वृन्द घोंसला बनाकर रहते थे। मेरे (शुक के पिता) एक जीर्ण कोटर में मेरी माता के साथ रहते थे। उनकी वृद्धावस्था में मैं ही एकमात्र पुत्र उत्पन्न हुआ। प्रसव–वेदना से अभिभूत मेरी माता परलोक चली गयी। वृद्ध पिता ने मेरा पालन –पोषण किया।

एक दिन प्रातःकाल मृगया–कोलाहल की ध्वनि सुनायी पड़ी। उसे सुनकर मैं कांपने लगा और भय से विह्वल होकर समीप स्थित पिता के शिथिल पंखों के भीतर घुस गया। मृगयाव्यापार में लगे लोगों के कोलाहल ने जंगल को

क्षुब्ध कर दिया। करिणियों के चीत्कार से, धनुषों के निनाद से , कुत्तों के शब्द से वह अरण्य कॉप सा उठा। कुछ समय के बाद मृगया–कलकल शान्त हो गया। उस समय मेरा भय कुछ कम हो गया। जब मैं पिता के गोद से थोड़ा बाहर निकलकर देखने लगा, तब शबरों की सेना दिखायी पड़ी। उसका झुण्ड वन को अन्धकारित कर रही थी। उसके मध्य में मातंग नामक सेनापति था। उसका नाम मुझे बाद में ज्ञात हुआ। सेनापति ने शाल्मली वृक्ष की छाया में विश्राम किया। थोड़े समय के बाद वह चला गया। शबरों की सेना में एक वृद्ध शबर था। सेनापति के ओझल हो जाने पर वह वृक्ष पर आरूढ़ हुआ और शुक–शावकों को मार–मार कर भूमि पर गिराने लगा। पिता ने स्नेहवश मुझे अपने पंखों से आच्छादित कर लिया। वह पापी एक शाखा से दूसरी शाखा पर चढ़ता हुआ मेरे कोटर के द्वार पर आया। उसने पिता जी को मार डाला। मैं पंखों के बीच छिप गया था, अतएव वह मुझे न देख सका। उसने मृत पिता को भूतल पर गिरा दिया। मैं भी चुपचाप उनकी गोद में छिपा हुआ उन्हीं के साथ भूमि पर गिरा। पुव्य के अवशिष्ट रह जाने पर मैं सूखे पत्तों पर गिरा। शबर के नीचे उतरने के पहले ही मैं समीप के तमाल वृक्ष की जड़ में घुस गया। वह शबर चला गया मुझे जीवन की आशा मिली। सभी अङ्ग को सन्तप्त करने वाली पिपासा ने मुझे परतन्त्र कर दिया। मैं अपनी कन्धरा को कुछ उठाकर चकित दृष्टि से देखता हुआ तृण के भी हिलनेपर उस पापी के लौट आने की उत्प्रेक्षा करता हुआ उस तमाल वृक्ष की जड़ से निकलकर जल के समीप जाने का प्रयत्न करने लगा। मैं मुहुर्मुह मुख के बल गिर पड़ता था और दीर्घ सांस ले रहा था। उस समय मेरे मन में विचार उत्पन्न हुआ– अत्यन्त कष्ट कारक अवस्था में भी प्राणी जीवन के प्रति निरपेक्ष नहीं होता। इस संसार में सभी

प्राणियों के लिए जीवन के अतिरिक्त कोई भी वस्तु अभिमततर नहीं हैं। मैं अत्यधिक अकृतज्ञ हूँ, अति निष्ठुर हूँ, अकरुण हूँ, जो पिता जी के मर जाने पर भी सांस ले रहा हूँ। मेरे प्राण अति कृपण हैं जो उपकारी पिता का अनुगमन नहीं कर रहे हैं।

उस समय सूर्य का आतप चारो ओर था। मेरे अङ्ग पिपासा के कारण अवसन्न थे, अतः चलने में अत्यन्त असमर्थ थे। उस समय जाबालि के पुत्र हारीत उस कमलसरोवर में स्नान करने के लिए आये। उस मरणासन्न अवस्था में मुझे देखकर उन्हें दया आयी। उन्होंने समीपोस्थित ऋषि कुमार को मुझे सरोवर के समीप ले चलने के लिए आदेश दिया। सरोवर के तट पर पहुँचकर उन्होंने अपने कमण्डलु और दण्ड को एक ओर रख दिया और मुझे जल की कुछ बूंदे पिलायी। उससे मुझमें चेतना का सञ्चार हुआ। स्नान करने के बाद वे मुझे लेकर तपोवन में चले गये। मैने अत्यन्त रमणीय आश्रम को देखा। उस आश्रम में मैने जाबालि ऋषि को देखा। उनकी तपस्या के प्रभाव से मैं अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गया। आश्रम में शान्ति का साम्राज्य था। ऋषि विद्याओं के अगार और पुण्य की राशि थे। मुझे एक अशोक वट की छाया में रखकर हारीत ने पिता के चरणकमलों को पकड़कर अभिवादन किया और पिता के समीपवर्ती कुशासन पर बैठ गये। मुझे देखकर उत्सुकुतावश मुनियों ने हारीत से मेरे विषय में पूछा। उन्होंने कहा कि जब मैं स्नान करने के लिए गया था तब कमलिनी सरोवर के तट पर स्थित वृक्ष के घोसले से गिरे हुए आतपक्लान्त इस शुकशिशु का देखा। दूर से गिरने के कारण इसका शरीर व्याकुल था। इसको इसके घोसलें में न रख सका, अतः यहाँ ले आया। इसके पंखे जबतक न निकले आये और उड़ने में समर्थ न हो जाये, तब तक आश्रम के किसी तरूकोटर में रहे

और मुनियों द्वारा लाये नये नीवारकणों से तथा फलों के रस से सम्पुष्ट होता हुआ जीवन धारण करे। अनाथोंका परिपालन हमारा धर्म है। पंखो के निकल आने पर जहॉ इसकी इच्छा होगी, वहाँ चला जाएगा अथवा परिचय हो जाने से यहीं रहेगा। मेरे विषय में इस प्रकार वार्तालाप को सुनकर भगवान् जाबालि को कुतूहल हुआ। उन्होंने अपनी कन्धरा को थोड़ा आवर्जित करके अतिप्रशान्त दृष्टि से देर तक मुझे देखकर कहा– 'अपने ही अविनय का फल भोग रहा है।' यह सुनकर ऋषियों को कुतूहल हुआ। उन्होंने जाबालि से मेरे पूर्वजन्म के विषय में कहने के लिए प्रार्थना की । महामुनि जाबालि ने कहा – यह विस्मयकरी कथा बड़ी लम्बी है। दिन थोड़ा अवशेष है। मेरे स्नान ध्यान का समय समीप है। आप लोग भी उठे और दैनिक कृत्य करें। अपराह्नसमय मे जब आप लोग फलाहार करने के पश्चात् विश्वस्त होकर बैठेगें, तब इसके विषय में निवेदन करूँगा। मेरे कहने पर इसे पूर्वजन्म के वृत्तान्त का पूर्णत : स्मरण हो जायेगा। यह कहकर जाबालि ने ऋषियों के साथ स्नान आदि दैनिक कृत्य का सम्पादन किया। उसी समय दिन ढ़ल गया। जब आधी प्रहर रात बीत गयी, तब हारीत मुझे लेकर मुनियों के साथ पिता के पास गये। उन्होंने पिता से मेरे विषय में कहने के लिए निवेदन किया। ऋषियों के एकत्रित होने पर जाबालि ने उस शुक का वृतान्त सुनाना आरम्भ किया।

यहाँ तक 'कथा–मुख' के रूप में मुख्य कथा की भूमिका है। इसके बाद मुख्य कथा का आरम्भ होता है जो अधोलिखित रूप से सुनाई जाती है–

अवन्ति में उज्जयिनी नाम की नगरी थी। वह सिप्रा से घिरी थी। उसमें ऊँचे–ऊँचे प्रासाद थे। वह समृद्धि से परिपर्णू थी। वहाँ तारापीड नामक प्रतापी राजाराज्य करता था। राजा तारापीड का मंत्री शुकनाथ था। वह नीतिशास्त्र के

प्रयोग में कुशल तथा सभी शास्त्रो में पारंगत था। शुकनास, धैर्य का धाम, सत्य का सेतु, आचारों का आचार्य था। राजा ने शुकनास को राज्य का भार सौंपकर चिरकाल तक यौवन के सुख का अनुभव किया। जैसे–जैसे यौवन बीतता जाता था और कोई सन्तान न होती थी, वैसे–वैसे उसका दुःख बढ़ता जाता था।

विलासवती उसकी प्रधान महिषी थी। एकदिन राजा जब विलासवती के पास पहुंचा तो वह रो रही थी। राजा ने रोने कारण पूछा, किन्तु उसने कुछ भी उत्तर न दिया। राजा ने तब परिजनों से पूछा। इस पर रानी की ताम्बूलकरङ्क वाहिनी मकरिका ने राजा से कहा कि पुत्र न उत्पन्न होने के कारण रानी सन्तप्त है। महारानी चतुर्दशी के दिन महाकाल की अर्चना करने के लिए गयी थी। वहाँ महाभारत की कथा हो रही थी। उन्होंने सुना कि पुत्रहीन लोगों को शुभ लोक नहीं मिलते। मुहूर्तभर रूककर दीर्घ तथा गर्म श्वांस लेकर राजा ने कहा– देवि दैवाधीन वस्तु के विषय में क्या किया जा सकता है। यदि यत्नपूर्वक ऋषियों की आराधना की जाय, तो वे दुर्लभवर प्रदान करते हैं।

विलासवती राजा के कथनानुसार ब्राह्मण–पूजा, गुरूजन–सपर्या आदि में लग गयी। एक बार राजा ने रात्रि के अन्तिम प्रहर में स्वप्न में विलासवती के मुख में चन्द्रमा को प्रविष्ट होते देखा। जागनेपर उसने शुकनास को बुलाकर स्वप्न की चर्चा की। शुकनास ने कहा – स्वामी शीघ्र ही पुत्र का मुखकमल देखेंगे। मैने भी स्वप्न में देखा कि मनोरमा की गोद में एक ब्राह्मण पुण्डरीक रख रहा है। मन्त्री शुकनास के साथ भवन में जाकर राजा ने दोनों स्वप्नों से विलासवती को आनन्दित किया।

कुछ दिवसों के बाद देवी विलासवती ने गर्भ धारण किया। कुलवर्धना नामका सेविका ने इस सुखद व वृत्तान्त को राजा से कहा। राजा इस वृतान्त से अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसके बाद शुकनास को भी पुत्ररत्न की प्राप्ति हुयी। राजातारापीड ने अपने पुत्र का नाम चन्द्रापीड रखा और शुकनास ने अपने पुत्र का नाम वैशम्पायन। चन्द्रापीड के चूड़ाकरण आदि संस्कार क्रमशः सम्पन्न किये गये। जब उसकी शैशवावस्था व्यतीत हो गयी, तब राजा ने उसके शिक्षण के लिए एक विद्या मन्दिर का निर्माण कराया। तत्पश्चात् अखिल विद्याओं में पारंगत होने के लिए राजा ने वैशम्पायन के साथ चन्द्रापीड को आचार्यों को सौंप दिया।

चन्द्रापीड शीघ्र ही अखिल विद्याओं में पारंगत हो गया। पद, वाक्य, प्रमाण, धर्मशास्त्र, आदि में उसे अत्यधिक कुशलता प्राप्त हो गयी। महाप्राणता को छोड़कर अन्य सभी कलाओं में वैशम्पायन ने चन्द्रापीड का अनुगमन किया। सहक्रीडा और सहसंवर्धन के कारण वैशम्पायन चन्द्रापीड का विस्त्रम्भ स्थानीय मित्र हो गया।

अध्ययन के समाप्त हो जाने पर चन्द्रापीड को विद्यामन्दिर से ले आने के लिए राजा ने बलाहक, नामक सेनापति को भेजा। चन्द्रापीड उसके साथ इन्द्रायुध नामक घोड़े पर चढ़कर वैशम्पायन के साथ नगर में आया। उसे देखकर पूरे नगरवाली अतीव प्रफुल्लित हुए । राजद्वार पर पहुँचकर चन्द्रापीड तुरङ्ग से उतर पड़ा। इसके बाद अपने पिता और माता का दर्शन किया । राजकुल से निकलकर वह मंत्री शुकनास से मिला। इसके बाद वह पिता तारोपीड द्वारा पहले से ही निर्धारित अपने भवन में गया। रात्रि में वह अपने पिता और माता से पुनः मिला। उसने रात्रि अपने भवन में व्यतीत की।

विलासवती ने कुलूतेश्वर की पुत्री पत्रलेखा को ताम्बूल करंकवाहिनी के रूप में उसे अर्पित किया। धीरे–धीरे पत्रलेखा चन्द्रापीड की कृपापात्र बन गयी।

कुछ समय के बीतने पर तारापीड ने चन्द्रापीड के यौवनाराज्याभिषेक का निश्चय किया। शुकनास ने चन्द्रपीड को राजनीति का उपदेश दिया। शुभदिन में चन्द्रापीड का यौवराज्याभिषेक हुआ। इसके बाद चन्द्रापीड दिग्विजय यात्रा के लिए निकल पड़ा। तीन वर्षों में उसने समस्त जगतीतल का अपने अधीन कर लिया। वसुधा की प्रदक्षिणा करके भ्रमण करते हुए उसने किरातो के निवास स्थान सुवर्णपुर को जीत लिया। वहाँ वह अपनी सेना के विश्राम के लिए कुछ दिनों तक रूक गया।

एक दिन चन्द्रापीड ने किन्नर–युगल को देखा। कुतूहलवश उसने दूर तक पीछा किया। वह मुहूर्त–भर में पन्द्रह योजन तक चला गया। उसके देखते ही वह किन्नर मिथुन पर्वत के शिखर पर चढ़ गया। इसके बाद घोड़े को मोड़कर जलाशय की खोज करता हुआ वह अच्छोद–सरोवर पर जो पहुँचा। जलाशय में स्नान करके बाहर निकला और कमलिनी पत्रों का बिछौना बिछा कर विश्राम करने लगा। उस समय उसे संगीत की ध्वनि सुनायी पड़ी। ध्वनि का अनुसरण करता हुआ वह शिव मंदिर के पास पहुँचा। उसने वहाँ एक कन्या देखा। वह अत्यन्त सुन्दर थी। समीप का प्रदेश उसके तेज पुञ्ज से प्रकाशमान हो रहा था। वह अद्भुत कन्या बीणा बजाकर शिव की स्तुति कर रही थी। चन्द्रापीड घोड़े से उतर गया। उसने घोड़े की वृक्ष की शाखा में बॉध दिया। मन्दिर में जाकर उसने भक्ति से शिव को प्रणाम किया और निर्निमेष नेत्रों से दिव्यकन्या को देखने लगा। वह उसकी रूप, सम्पत्ति को देखकर विस्मित हो गया। उस कन्यका से उसके विषय में पूछने की इच्छा से गीत की

समाप्ति के अवसर की प्रतीक्षा करता हुआ रूका रहा। गीत के समाप्त हो जाने पर चन्द्रापीड को देखकर उस दिव्यकन्या ने चन्द्रापीड ने उसका आतिथ्य स्वीकार कर लिया। उन दोनों ने फलाहार किया। जबवह कन्या शिलातल पर विश्रब्ध होकर बैठी, तब चन्द्रापीड ने सविनय उससे उसका वृतान्त पूछा। वह क्षणभर चुप रही और फिर रूदन करने लगी । चन्द्रापीड धोने के लिये झरने से जल ले आया। नेत्रों को धोकर तथा वल्कल–प्रान्त से मुँह पोछकर वह धीरे–धीरे बोली।

अप्सराओं के चौदह कुल हैं। उनमें दो कुल गन्धर्वों के हैं – एक दक्ष की कन्या मुनि से तथा दूसरा दक्ष की कन्या अरिष्टा से उत्पन्न हुआ है।
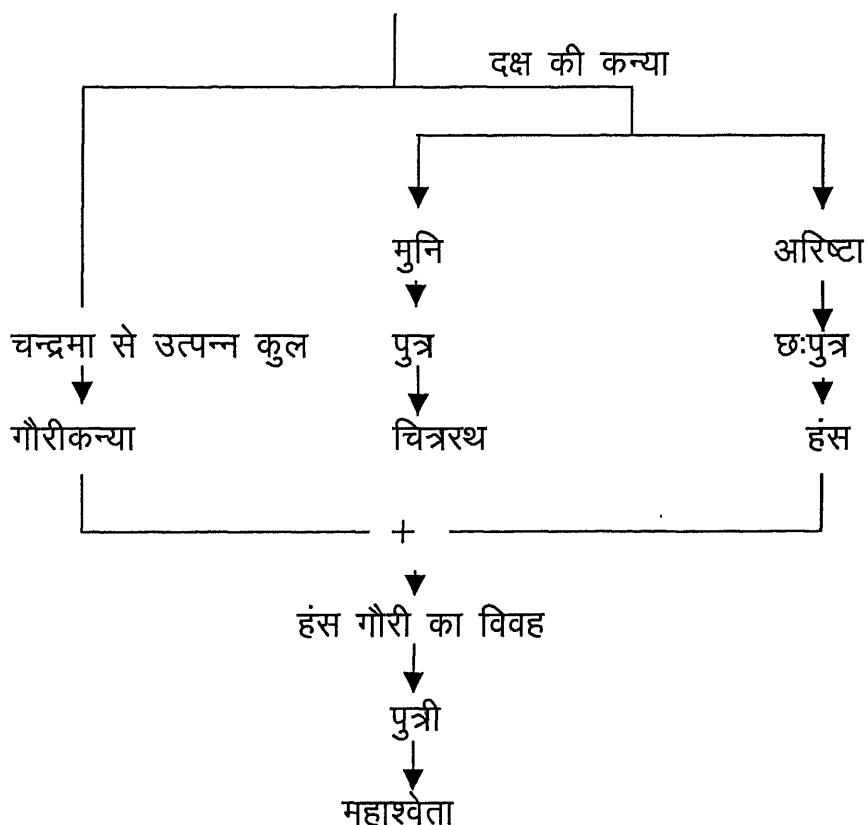
मुनि का पुत्र चित्ररथ अधिकगुणी हुआ। द्वितीय गन्धर्व कुल में अरिष्टा के छःपुत्रों में श्रेष्ठ हंस नामक गन्धर्व हुआ। चन्द्रमा से उत्पन्न अप्सराओं के कुल में गौरी नाम की कन्या उत्पन्न हुई । हंस ने गौरी से विवाह किया। मैं उनकी पुत्री हूँ। मैं अपनी माता के साथ एक दिन इस अच्छोद सरोवर में स्नान के उद्देश्य से आयी। भ्रमण करते हुए मैने तीव्र सुगन्ध का अनुभव किया। इससे आकृष्ट जब में आगे बढ़ी, तो दो मुनि कुमारों को देखा। उन दोनों में से एक के कान में कुसुममञ्जरी था। मैं समझ गयी कि सुगन्ध कुसुममञ्जरी की ही थी। उस मुनिकुमार की सुन्दरता ने मुझे अत्यधिक प्रभावित कर दिया। मैने उसे प्रणाम किया। अनङ्ग ने उसे भी चञ्चल कर दिया। मैने मुनिकुमार के सहचर से मुनिकुमार तथा कुसुममञ्जरी के विषय में पूछा। उसने कहा – श्वेतकेतु नामक मुनि है। एकदिन वे देवपूजन के निमित्त कमलपुष्प का चयन करने के लिए गंगा के जल में उतरे। उतरते समय सहस्त्रदल –युक्त पुण्डरीक पर बैठी हुई लक्ष्मी ने देखा। उनको देखते ही लक्ष्मी का मन काम के तीव्र वेग से विकृत हो गया। आलोकनमात्र से ही उन्हें सुरत–समागम का सुख मिला और वे जिस पुण्डरीक पर बैठी थीं, उसी पर बीजपात हो गया। उससे कुमार उत्पन्न हुआ। उत्संग में लेकर लक्ष्मी श्वेतकेतु के पास पहुंची और 'भगवन्, यह आपका पुत्र है, इसे सहर्ष ग्रहण कीजिए' कहकर उसे श्वेतकेतु को समर्पित कर दिया। श्वेतकेतु ने पुत्र का नाम पुण्डरीक रखा। नन्दनदेवी ने पुण्डरीक को परिजात कुसुम की मञ्जरी दी। वह मञ्जरी पुण्डरीक के कान में सुशोभित है। उसकी सुगन्ध फैल रही है। मित्र के इस प्रकार कहने पर पुण्डरीक ने मञ्जरी को मेरे कान में पहना दिया। मेरे कपोल के संस्पर्श से उसकी अंगुलियाँ काँपने लगी और उसके करतल से अक्षमाला गिर पड़ी। वह भूमि पह पहुँच नहीं पायी

थी कि उसे पकड़ लिया और अपने कण्ठ में डाल लिया। उसी समय छत्रग्राहिणी ने आकर मुझसे कहा कि अब घर चलने का समय हो रहा है, अतः स्नान कर लीजिए। मैं अत्यधिक कठिनता से अपनी दृष्टि उधर से हटाकर स्नान करने के लिए चल पड़ी। उस समय प्रणय–कोप प्रकट करते हुए उस द्वितीय मुनिकुमार ने कहा– मित्र पुण्डरीक यह आपके अनुरूप नहीं है। यह क्षुद्रजनों का मार्ग है। आप प्राकृत जन की भांति विकल होते हुए अपने को रोकते क्यों नहीं ? करतल से गिरी हुई अक्षमाला का भी आपको ज्ञान न रहा। इस अनार्य कन्या द्वारा आकृष्ट किये जाते हुए अपने हृदय को रोकिए। उसके ऐसा कहने पर पुण्डरीक लज्जित हुआ। उसने मुझसे अपनी अक्षमाला माँगी मैने अपने कण्ठ से एकावली उतार कर उसे अर्पित कर दी। इसके बाद स्नान करके मैं किसी प्रकार घर आयी।

मेरी ताम्बूलकरंकवाहिनी तरलिका ने मुझे पुण्डरीक का पत्र दिया। उसे पढ़कर मैं अत्यधिक आनन्दित हुई।

सूर्यास्त के समय छत्रग्राहिणी ने आकर कहा कि उन दोनों ऋषि कुमारों में से एक द्वार पर खड़ा है और अक्षमाला का मांग कर रहा है। मैने उसे भीतर ले आने के लिए कञ्चुकी को आदेश दिया। भीतर आकर मुनि कुमार कपिञ्जल ने बताया कि पुण्डरीक कामपीड़ित है और उसकी अवस्था शोचनीय हो गयी है। उस समय मेरी माता मुझे देखने के लिए आयी और कपिञ्जल उठकर चला गया। जब माता जी मेरे पास से चली गयी, तब मैने तरलिका से बात की और पुण्डरीक से मिलने के लिए चल पड़ी। ज्योंहि मैं चली, त्योंही मेरी दाहिनी आँख फड़कने लगी। जब मैं पुण्डरीक के स्थान के समीप पहुँची, तब मैने कपिञ्जल के रोने की ध्वनि सुनी। समीप पहुँचकर मैने देखा कि पुण्डरीक मर

चुका है। उस समय मैने बहुत विलाप किया। इतना कहकर महाश्वेता मूर्च्छित हो गयी। चन्द्रापीड ने उसे संभाला। जब महाश्वेता को चेतना आयी, तो चन्द्रापीड ने उससे कथा न कहने के लिए निवेदन किया। महाश्वेता ने कहा – 'महाभाग, जब उस दारूण रात्रि में मेरा प्राण न निकला, तो अब नहीं निकलेगा।'

महाश्वेता ने पुनः कथा प्रारम्भ की। उसने बताया कि मैने तरलिका से चिता बनाने के लिए कहा। उसी समय चन्द्रमण्डल से निकलकर एक दैदीव्यमान पुरुष नीचे आया और पुण्डरीक का मृत शरीर लेकर आकाश में चला गया। उसने कहा– वत्से महाश्वेते, प्राण का परित्याग न करना। पुण्डरीक के साथ पुनः तुम्हारा मिलन होगा। पुण्डीरक भी उस दिव्य पुरुष का पीछा करता हुआ आकाश में उड़ गया। मैने वहीं रहकर तपस्या का निश्चय किया। चन्द्रापीड ने महाश्वेता से कहा कि एक प्रेमी के प्रति जो कुछ किया जा सकता है, उसे आपने किया। आपको अनुमरण का विचार नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह क्षुद्रों का मार्ग है, मोह का विलास है, अज्ञान की पद्धति है। अनुमरण से न तो मरे हुए का कोई लाभ होता है और न तो मरने वाले का ही। पृथा, उत्तरा, दुःशला आदि ने भी अनुमरण के मार्ग का अनुसरण नहीं किया। इस प्रकार महाश्वेता को उन्होंने समझाया। इसी समय सूर्य का अस्त हो गया। कुछ समयोपरान्त चन्द्रापीड ने महाश्वेता से पूछा कि तरलिका कहाँ है ? महाश्वेता ने निवेदन किया।– महाभाग, अप्सराओं का जो कुछ अमृत से उत्पन्न हुआ, उसी में मदिरा नाम की कन्या उत्पन्न हुई। उसका विवाह गन्धर्व चित्ररथ के साथ हुआ। उनसे कादम्बरी नामक कन्या पैदा हुई। वह बाल्यावस्था से ही मेरी परम सखी हो गयी। जब उसने मेरा वृत्तान्त सुना, तो निश्चय कर लिया कि

जब तक महाश्वेता शोकवस्था में रहेगी, तब तक मैं विवाह नहीं करूँगी। गन्धर्व चित्ररथ ने क्षीरोद नामक कञ्चुकी से कहला भेजा– वत्से महाश्वेते, एक तो तुम्हारे ही दुःख से हम लोगों का हृदय जल रहा था। दूसरी ओर कादम्बरी का निश्चय हमें सन्तप्त कर रहा है। कादम्बरी को समझाने में तुम्ही समर्थ हो। मैने भी तरलिका के हाथ कादम्बरी के पास सन्देश भेजा है।

दूसरे दिन तरलिका बीणावादक केयूरक के साथ लौटी। केयूरक ने कादम्बरी का निश्चय महाश्वेता को बताया। महाश्वेता ने कहा तुम जाओ। मैं स्वयं आकर जो उचित होगा, वह करूँगी। जब केयूरक चला गया तब महाश्वेता ने चन्द्रापीड से कहा– राजपुत्र, यदि कष्ट न हो तो हेमकूट चलकर मेरी सखी कादम्बरी को देखकर लौट आइए। चन्द्रापीड ने स्वीकार कर लिया। चन्द्रापीड महाश्वेता के साथ हेमकूट पहुँचा। महाश्वेता ने कादम्बरी को चन्द्रापीड का परिचय दिया। कादम्बरी ने उसका बहुत सम्मान किया। चन्द्रापीड और कादम्बरी प्रथम दर्शन में ही एक दूसरे के प्रति अनुरक्त हो गये।

महाश्वेता कादम्बरी के माता–पिता को देखने के लिए गयी और चन्द्रापीड क्रीडापर्वतस्य मणि मन्दिर में गया। कादम्बरी ने चन्द्रापीड के पास उपहार–स्वरूप एक हार भेजा। कादम्बरी के घर पर कुछ दिनों तक रूककर चन्द्रापीड महाश्वेता के आश्रम में लौट गया। वहाँ इन्द्रायुध के खुर–चिन्हों अनुसरण करके आये हुए अपने स्कन्धावार को देखा। वैशम्पायन तथा पत्रलेखा के साथ महाश्वेता, कादम्बरी, मदलेखा, तमालिका तथा केयूरक के विषय में चर्चा करते हुए उसने दिन व्यतीत किया। दूसरे दिन प्रतिहारी के साथ प्रविष्ट होते हुऐ उसने केयूरक को देखा। केयूरक ने चन्द्रापीड को शेष नामक हार अर्पित किया। यह चन्द्रापीड की विस्मृति के कारण शय्या पर ही छूट गया था। केयूरक ने कामपीडित कादम्बरी की दशा

का वर्णन किया। चन्द्रापीड पत्रलेखा को कादम्बरी के घर पर छोड़कर स्कन्धावार को लौट गया। वहाँ उसे पिता द्वारा भेजा हुआ लेखहारक मिला। उसने चन्द्रापीड को एक पत्र दिया। चन्द्रापीड ने पत्र स्वयं पढ़ा। तारापीड ने उसे घर पर बुलाया था। शुकनास द्वारा प्रेषित पत्र में यही बात लिखी थी। उसी अवसर पर वैशम्पायन ने भी दो पत्र दिये, जिनमें उक्त पत्रों का ही विषय था। चन्द्रापीड ने बलाहक के पुत्र मेघनाद को आदेश दिया– आप पत्रलेखा के साथ आयें, केयूरक निश्चित ही उसे लेकर यहाँ तक आयेगा। उसने कादम्बरी और महाश्वेता को भी सन्देश भेजा। उसने वैशम्पायन की सेना के साथ धीरे–धीरे आने के लिए कहा और स्वयं घोड़े पर चढ़कर अश्वारोहियों के साथ चल पड़ा सायंकाल वह एक चण्डिकायतन के समीप पहुँचा। वहाँ एक द्रविढ़ धार्मिक रहता था। वह रात्रि में वहीं रूका। प्रातःकाल वहाँ से चल पड़ा और सुन्दर प्रदेशों में रूकता हुआ कुछ ही दिनों में उज्जयिनी पहुँच गया।

तारापीड ने चन्द्रापीड के पहुँचने पर भुजाओं को फैलाकर गाढ़ालिंगन किया। इसके बाद वह विलासती के भवन में गया। वहाँ दिग्विजय–सम्बन्धी कथाओं की चर्चा करत हुआ कुछ समय तक रूककर शुकनास को देखने के लिए गया। वैशम्पायन का कुशल बताकर तथा मनोरमा से मिलकर विलासवती के भवन में गया। उसने वहाँ स्नान आदि क्रियाएं सम्भावित की। अपराह्न में अपने भवन में गया।

कुछ दिनों के बाद पत्रलेखा आयी। चन्द्रापीड ने उससे कादम्बरी और महाश्वेता के विषय में पूछा। उसने कादम्बरी की कामजनित व्यथा का वर्णन किया और यह भी कहा कि कादम्बरी से निवेदन किया है– 'देवि, मैं शपथ लेती हूँ। आप मुझे सन्देश देकर भेजे और मैं आपके प्रिय को ले आऊँ।

कादम्बरी का कथानक (उत्तर भाग)

चन्द्रापीड ने पत्रलेखा की बात स्वीकार करली। पत्रलेखा के वचन को सुनकर वह उत्कण्ठित हो उठा। कुछ दिनों के बाद केयूरक आया और उसने कादम्बरी की अत्यधिक प्रवृद्ध काम–जनित पीड़ा का वर्णन किया। चन्द्रापीड सोचने लगा कि मैं हेमकूट जाने का प्रस्ताव पिताजी के सामने कैसे प्रस्तुत करूँ? उसे वैशम्पायन की अनुपस्थिति सताने लगी, क्योंकि यदि वह समीप में होता, तो उचित सलाह देता।

प्रातःकाल चन्द्रापीड ने सुना कि सेना दशपुर तक आ पहुँची है। उसने केयूरक और पत्रलेखा को कादम्बरी के पास चलने के लिए कहा। उसने मेघनाद को बुलाकर कहा– मेघनाद, जहाँ पत्रलेखा को लाने के लिए मैनें तुम्हें छोड़ा था, उसी स्थान पर पत्रलेखा को लेकर केयूरक के साथ चलो। मैं भी वैशम्पायन से मिलकर तुम्हारे पीछे ही अश्वसेना के साथ आ रहा हूँ। तारापीड चन्द्रापीड के विवाह के विषय में सोचने लगा। चन्द्रापीड ने विचार किया कि यदि इस समय वैशम्पायन आ जाये तो कादम्बरी के साथ मेरा विवाह सम्भव हो सके।

चन्द्रापीड वैशम्पायन से मिलने के लिए चल पड़ा। जब वह स्कन्धावार में पहुंचा और उसे ज्ञात हुआ कि वैशम्पायन नहीं है, तो अत्यन्त विकल हो उठा। पूछने पर उसे ज्ञात हुआ कि वैशम्पायन अच्छोद सरोवर मे स्नान करने और शिव की पूजा करने के लिए गया था। उस स्थान को देखकर वैशम्पायन की अनिर्वचनीय स्थिति हो गयी। लोगों के समझाने पर भी वह वहाँ से लौटने के लिए उद्यत न हुआ। उसने अपने साथियों से कहा कि आप लौट जाये। तीन

दिन तक उसके साथियों ने उसकी प्रतीक्षा की। अन्त में भोजनादि का प्रबन्ध करके और परिजनों को सेवा के लिए नियुक्त करके वे चले गये। इससे चन्द्रापीड अत्यन्त दुःखित हुआ और समझ न सका कि वैशम्पायन ने ऐसा क्यों किया। चन्द्रापीड ने पहले विचार किया कि मैं सीधे वैशम्पायन को खोजने के लिए जाऊँ। किन्तु अन्ततः उसने निश्चय किया कि पहले मैं उज्जयिनी लौटकर यह सूचित कर दूँ, तदनन्तर वैशम्पायन को खोजन के लिए निकलूं। यह विचार कर वह चल पड़ा और अपनी सेना के साथ उज्जयिनी में पहुंच गया।

चन्द्रापीड शुकनास के गृह पर गया। उस समय उसके माता और पिता शुकनास के घर पर थे। वैशम्पायन का समाचार सुनकर तारापीड ने कहा– वत्स चन्द्रापीड, मुझे संशय होता है कि इस विषय में तुम्हारा भी दोष है। इस पर शुकनास ने कहा–महाराज, यदि चन्द्रमा में ऊष्मा आ जाये, अग्नि में शीतलता आ जाये, महासागर सूख जाये, तो युवराज में भी दोष आ सकता है। इस विषय में कृतघ्न मित्रदोही वैशम्पायन का ही दोष है, गुणी तथा उदारचरित चन्द्रापीड का नहीं। चन्द्रापीड ने वैशम्पायन को खोजने के लिए आज्ञा मांगी। तारापीड ने उसे आज्ञा दे दी। चन्द्रापीड वैशम्पायन को खोजने के लिए निकल पड़ा।

मार्ग बहुत ही दीर्घ था। वह अर्द्धमार्ग ही पारकर सका था कि वर्षा ऋतु आ गयी। इसके उसे कठिनाई हुई। उसे मार्ग में मेघनाद मिला। चन्द्रापीड ने उससे वैशम्पायन के विषय में पूछा। मेघनाद ने उत्तर दिया– 'देव, जब आपके पहुँचन में देर हुई, तब पत्रलेखा और केयूरक ने कहा – वर्षाकाल का आरम्भ देखकर कदाचित् तारापीड, विलासवती तथा शुकनास युवराज को आने की अनुमति न दें। इस स्थान पर तुम्हें अकेले नहीं रूकना चाहिए। अब हम लोग प्रायः पहुँच गये हैं। ऐसा कहकर पत्रलेखा और केयूरक ने जहाँ से अच्छीद

सरोवर तीन प्रयाण दूर था, वहीं से मुझे लौटा दिया। मेघनाद ने चन्द्रापीड से यह भी कहा कि यदि कोई अन्तराय नहीं उपस्थित हुआ होगा, तो पत्रलेखा पहुँच गयी होगी।

इसके बाद चन्द्रापीड अच्छोद सरोवर के तट पर पहुँचा। वहाँ उसे वैशम्पायन नही दिखाई पड़ा। तब उसने महाश्वेता से उसके विषय में पूछने का निश्चय किया। जब चन्द्रापीड ने महाश्वेता को देखा, तो उसकी आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। चन्द्रापीड के पूछने पर महाश्वेता ने कहा– जब मैं गन्धर्वलोक से लौटी, तो मैने यहाँ एक ब्राह्मण युवक को देखा। वह मुझसे अनेक प्रकार से प्रेम की बातें करने लगा। मेरे रोकने पर भी दुष्ट मदन के दोष से अथवा अनर्थ की भवितव्यता से उसने अनुबन्ध या बारम्बार प्रेम निवेदन नहीं त्यागा। तब मैने उसे शुकयोनि में जन्म लेने का शाप दे दिया। वह कटे हुए वृक्ष की भांति भूमि पर गिर पड़ा। उसके मृत्यु के प्राप्त हो जाने पर रूदन करने वाले अनुचरों से मैने सुना कि वह आपका परममित्र था। ऐसा कहकर महाश्वेता रोने लगी। यह सुनकर चन्द्रापीड का हृदय विदीर्ण हो गया और वह भी मृत्यु कों प्राप्त हो गया। तरलिका और चन्द्रापीड के परिजन विलाप करने लगे।

उसी क्षण कादम्बरी महाश्वेता के आश्रम पर आयी। चन्द्रापीड की दशा देखकर वह अत्यन्त द्रवित हो गयी। उसने भी प्राण त्यागने का निश्चय कर लिया। उसी समय चन्द्रापीड के शरीर से एक ज्योति निकली और बाद में आकाशवाणी सुनायी पड़ी – 'वत्से महाश्वेते, तुम्हारे प्रियतम के साथ तुम्हारा समागम अवश्व होगा। उसे न अग्नि में जलाना, न पानी में डालना और न फेकना। जब तक समागम न हो, तब तक यत्नपूर्वक उसकी रक्षा करना। यह सुनकर सब आश्चर्यचकित हो गये। पत्रलेखा ने इन्द्रायुध घोड़े का परिर्द्धक के

हाथ से छीन लिया और उसे लेकर आच्छोद सरोवर में कूद पड़ी। कुछ देर पश्चात् अच्छोद सरोवर से कपिञ्जल निकला। उसने महाश्वेता से कहा– मैं उस दिव्य पुरुष का, जो पुण्डरीक का शरीर लिए हुए जा रहा था, पीछा करता हुआ चन्द्रलोक पहुँचा। उस पुरुष ने कहा मैं चन्द्रमा हूँ। मुझे पुण्डरीक ने शाप दे दिया कि तुम इस भारतवर्ष में बार–बार जन्म लेकर अपनी प्रिया के समागम का सुख प्राप्त किये बिना ही हृदय की तीव्र वेदना का अनुभव करके जीवन छोड़ोगे। मैने भी उसे प्रतिशाप दे डाला कि अपने दोष के कारण तुम्हें भी मर्त्यलोक में मेरे ही समान दुःख–सुख का भोग करना पडेगा। तुम श्वेतकेतु से यह वृत्तान्त कह दो।

जब मैं वहाँ से आ रहा था, तब आकाश में एक क्रोधी वैमानिक का मुझसे लंघन हो गया। उसने मुझे घोड़ा हो जाने का शाप दे डाला। जब मैने उससे शाप का संवरण करने की प्रार्थना की, तो उसने कहा– तुम उसका वाहन बनोगे, उसकी मृत्यु हो जाने पर जब तुम स्नान करोगे, तब तुम्हारा शाप समाप्त हो जायेगा। उसने पुनः मुझसे कहा– 'चन्द्रदेव तारापीड के पुत्र के रूप में जन्म होंगे। तुम्हारा मित्र पुण्डरीक भी तारापीड के मन्त्री शुकनास का पुत्र होगा। तुम राजा के चन्द्रात्मक पुत्र का वाहन बनोगे। उसके वचन के समाप्त होने पर मैं नीचे महोदधि में जा गिरा और घोड़ा बनकर बाहर निकला। घोड़ा हो जाने पर भी मेरी चेतना लुप्त नहीं हुई। इसलिए किन्नरमिथुन का पीछा करते हुए चन्द्रापीड को लेकर मैं यहाँ तक आया था। आपने जिसे शापाग्नि में भस्म कर दिया, वह मेरे मित्र पुण्डरीक का अवतार था। यह सुनकर महाश्वेता विलाप करने लगी। कपिञ्जल ने महाश्वेता को परिबोध दिया। कादम्बरी ने पत्रलेखा के विषय में पूछा। कपिञ्जल ने कहा– मैं उसका कोई वृत्तानत नहीं

जानता । मैं यह जानने के लिए श्वेतकेतु के पास जा रहा हूँ कि चन्द्रापीड और वैशम्पायन का जन्म कहाँ हुआ और पत्रलेखा का क्या हुआ ? यह कहता हुआ वह आकाश में उड़ गया।

कादम्बरी ने मदलेखा से कहा– शाप की समाप्ति–पर्यन्त चन्द्रापीड के शरीर की रक्षा मुझे करनी होगी। तुम जाकर पिता और माता को इस अद्भुत वृत्तान्त की सूचना दे दो। वर्षाकाल के व्यतीत हो जाने पर मेघनाद ने आकर कादम्बरी से कहा– महाराज तारापीड ने चन्द्रापीड का वृत्तान्त जानने के लिए दूत प्रेषित किए हैं। उनसे क्या कहा जाए ? कादम्बरी ने दूतों के साथ चन्द्रापीड के बालमित्र त्वरितक को भेज दिया। उज्जयिनी जाकर उसने सारा वृत्तान्त कह दिया। वृत्तान्त जानकर राजा तारापीड अपने बन्धुजनों के साथ अच्छोद सरोवर के तट पर जा पहुँचे। वे चन्द्रापीड के शरीर को देखकर आश्वस्त हुए।

इतना कहने के पश्चात् जाबालि ने कहा – शुकनास का पुत्र वैशम्पायन ही महाश्वेता के शाप के कारण शुक हो गया है। यह वही शुक है। यह सुनकर शुक को पूर्वजन्म की बातें याद आ गयी। शुक ने मुनि से प्रार्थना की–भगवन्, चन्द्रापीड के जन्म के वृत्तान्त को भी बताने की कृपा कीजिए, जिससे उनके साथ रहते हुए मुझे पक्षियोनि में उत्पन्न होने के दुःख का अनुभव न हो सके। महर्षि जाबालि क्रुद्ध होकर बोले–तू पहले उड़ने के योग्य हो जा, तब पूछ लेना।

कूतूहल जाग्रत होने के कारण हारीत ने पूछा– मुनिवंश में उत्पन्न होकर भी यह कामुक कैसे हुआ और दिव्यलोक में जन्म लेकर भी स्वल्प आयु वाला क्यों हुआ ? जाबालि ने कहा– वत्स, यह केवल अल्पबलयुक्त स्त्री की वीर्य से उत्पन्न हुआ था, अतः कामुक और क्षीण आयु वाला हुआ।

जाबालि द्वारा कही हुई कथा यहीं समाप्त हो गयी। शुक ने कहा कपिञ्जल मुझे खोजता हुआ जाबालि के आश्रम में आया। उसने मुझसे कहा कि तुम्हारे पिता कुशलपूर्वक हैं और तुम्हारे कल्याण के हेतु अनुष्ठान कर रहे हैं। उनका आदेश है कि जब तक कर्म समाप्त न हो जाये, तब तक तुम मुनि के चरणकमलों के समीप रहो। यह कहकर कपिञ्जल आकाश में उड़ गया।

जब मैं उड़ने के योग्य हो गया, तक एक दिन उत्तर दिशा की ओर उड़ा। मार्ग में मुझे एक व्याध ने जाल में फंसा लिया। उसने मुझे एक चाण्डाल कन्या को सौप दिया। चाण्डाल–कन्या ने मुझे काठ के पिजंड़े में बन्द कर दिया। कुछ समय के व्यतीत होने पर में तरूण हो गया। एक दिन प्रातःकाल जब मेरे नेत्र खुले, तो मैने अपने को सोने के पिजड़े में बन्द पाया। उसके बाद मैं श्रीमान् के चरणों के समीप लाया गया। यही शुक द्वारा कही हुई कथा समाप्त होती है। शुक की बात सुनकर शूद्रक की उत्सुकता बढ़ी। उन्होने चाण्डाल–कन्या को बुलवाया। उसने राजा से कहा– भुवनभूषण, आपने इस दुर्मति की और अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुन ही लिया। मैं इसकी माता लक्ष्मी हूँ। इब इसके पिता का अनुष्ठान समाप्त हो गया और अब इसके शाप के अवसान का समय है। शाप के समाप्त हो जाने पर आप और यह दोनों सुखपूर्वक साथ–साथ रह सकेंगे, इस विचार से ही इसे लेकर आपके समीप आयी हूँ। अतः अब दोनों प्रियजन के समागम का सुख भोगें। यह कहकर वह आकाश में उड़ गयी।उस चाण्डाल कन्या के वचन सुनकर शूद्रक को अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो आया।

उधर महाश्वेता के आश्रम में वसन्तकाल उपस्थित हो गया। कादम्बरी ने चन्द्रापीड के शरीर को अलंकृत किया और उसका आलिंगन किया। कादम्बरी

के गाढ़ालिंगन से चन्द्रापीड द्रवित हो गया। तत्क्षण पुण्डरीक कपिञ्जल के साथ गगन मण्डल से भूमि पर उतरा इस दृश्य को देखकर तारापीड, विलासवती, शुकनास आदि आनन्दातिरेक से भाव विह्वल हो गये। उसी आनन्दमय समय पर चित्ररथ और हंस भी वहाँ आ गये। कादम्बरी का चन्द्रापीड के साथ और महाश्वेता का पुण्डरीक के साथ शुभ–विवाह सकुशल सम्पन्न हुआ। अब दोनों प्रेमी आनन्दपूर्वक रहने लगे।

कथा सरित्सागर की कथा

कादम्बरी की कथा के सदृश कथा कथासरित्सागर और वृहत्कथा मञ्जरी में प्राप्त होती है। बाण ने पात्रों के नामों में परिवर्तन किया है और अपनी कल्पना के पुट से कथा के अनेक पटलों को सम्भूषित किया है। यहाँ कथा सरित्सागर में वर्णित राजा सुमनस् की कथा का संक्षिप्त रूप दिया जा रहा है–

सुमनस् नाम के राजा काञ्चनपुरी में राज्य करते थे। एक दिन उनकी सभा में एक चाण्डाल कन्या पिजड़े में स्थित एक तोते को लाकर राजा सुमनस् को उस तोते को उपहार में देते हुए कहती है कि – हे राजन् यह तोता सकल शास्त्र एवं वेदादि का पूर्ण ज्ञाता है। अपनी प्रशंसा में तोते द्वारा श्लोक से प्रसन्न होकर राजा ने मंत्री से प्रशंसा की तब मंत्री ने कहा कि यह कोई मुनि है जो किसी के शाप का भाजन बन गया है। तब राजा ने पूर्व जन्म की कथा सुनाने का तोते से आग्रह किया तो उस शुक ने आत्मकथा को सुनाते हुए कहा कि हिमालय के समीप एक विशाल वृक्ष पर रहने वाले शुक का पुत्र हूँ। माता का प्राणान्त जन्म देते ही हो गया। बड़ी ही कठिनता से पिता ने मेरा पालन किया। एकदिन एक भीलों की सेना उसी वृक्ष के नीचे आकर ठहरी।

उन भीलों में से एक भील ने पेड़ पर चढ़कर सभी पक्षियों को मार–मारकर नीचे डाल दिया। उस समय मैं भी पिता के पंखो में छुपा हुआ था। उनके गिरने से मैं भी नीचे गिरा। किसी प्रकार मेरे प्राण बच गये। रात्रि के उपरान्त प्रातः काल मुझे पिपासा में व्याकुल किया मैं जलाशय के समीप गया, वहाँ मारीचि नामक ऋषि स्नानार्थ आये थे। उन्होंने जल पिलाकर मुझे आश्रम में लाया। वहाॅ अगस्त ऋषि मुझे देखते ही हंस पड़े। तब समीपस्थ ऋषियो ने हंसने का कारण पूछा तो अगस्त्य ऋषि ने मेरे शाप तथा शुक होने के कारण का विस्तार से वर्णन करते हुए कहा कि रत्नाकर नामक नगर में ज्योतिष्प्रभ नामक राजा था। उसकी तीव्र तपस्या से तुष्ट महादेव की कृपा से उसकी रानी हर्षवती के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस पुत्र का नाम सोमप्रभ रखा। ज्योतिष्प्रभ के मंत्री प्रभाकर के पुत्र का नाम प्रियंकर था जो सोमप्रभ का अभिन्न मित्र एवं मंत्री था। एक दिन इन्द्र के सारथि मातलि ने उच्चैः श्रवा घोड़े के पुत्र अश्वश्रवा नामक घोड़े को सोमप्रभ को उपहार में अर्पण किया फिर सोमप्रभ ने पित्राज्ञा से दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया। दिग्विजय से लौटते हुए सोमप्रभ ने सेना का पड़ाव हिमालय के पास डाल दिया और अश्वश्रवा पर सवार होकर शिकार के प्रसंग से रमणीय किन्नर देखा और पीछा किया परन्तु उनके पर्वतगुफा में छुप जाने पर सोमप्रभ ने पश्चाताप करते हुए एक सरोवर देखा। वहाॅ आराम करने लगा। परन्तु उसी समय किसी गीतध्वनि को सुनकर घोड़े पर सवार होकर उसी ध्वनि की ओर प्रस्थान किया। इसके बाद चलते–चलते एक शिव मंदिर में अनुपम सुन्दरी एक कन्या देखी। अतिथि सत्कार प्राप्त करके निर्जन वन में एकाकी रहने का कारण पूछा तो उसने रोते हुए कहा कि विद्याधरों के राजा पद्मकूट की मैं पुत्री हूँ मेरी माता का नाम हेमप्रभा है और

मेरा नाम मनोरथ प्रभा है। एक बार स्नाानार्थ गयी हुई मैं मित्र सहित एक मुनि कुमार को देखा उसकी एक माधुरी पर मुग्ध हो गयी और वह भी मेरे उपर मुग्ध हो गया। मैने उसके मित्र से उसका परिचय पूछा तो ज्ञात हुआ कि उसका नाम रश्मिवान् है और वह लक्ष्मी का मानसिक पुत्र है। उसका पालन दधीचि ऋषि ने किया है। तत्क्षण पिता आमंत्रण को पाकर मैं चली गयी। उसके पश्चात् उसका मित्र मेरे पास आया और चन्द्रोदय के दर्शन से उद्दीप्त कामपीड़ा का वर्णन किया और मुझे उसके पास पहुँचने के लिए आग्रह किया। मैं तुरन्त उसकी रूप—माधुरी से आकृष्ट होकर चल पड़ी। परन्तु मेरे पहुँचने से पूर्व ही उसने प्राणो का परित्याग कर दिया था। मैने भी उसके वियोग से मरने का निश्चय किया। परन्तु इसी मध्य एक तेजस्वी पुरुष आकाश से उतरता हुआ आया और उसके शरीर को लेकर चला गया तथा उसी समय आकाशवाणी हुई कि विश्वास करो, प्राण परित्याग मत करो तुम्हें यह मुनिकुमार पति के रूप में प्राप्त होगा। फिर मैने उस आकाशवाणी के अनुसार प्राण परित्याग से विरक्त हाकर यहाँ शिव की आराधना कर रही हूँ। उस मुनि कुमार के मित्र का क्या हुआ मैं नही जानती हूँ।

फिर सोमप्रभ ने मनोरथ प्रभा से उसकी सखी के विषय में पूछा तो उसने कहा कि मेरी प्रिय सखी विक्रमासिंह की कन्या मकरन्दिका ने मेरे दुःख से व्याकुल होकर अपना विवाह तक तक न करने का निश्चय किया जबतक मेरा विवाह न हो जाये। उसी समय विक्रमसिंह ने मनोरथ प्रभा के पास संदेश भेजा कि आप ही मकरन्दिका को समझा दें कि जिससे यह विवाह करना स्वीकार कर लें। तत्पश्चात् मनोरथ प्रभा सोमप्रभ को साथ लेकर मकरन्दिका के पास गयी। जिस समय सोमप्रभ और मकरन्दिका ने एक दूसरे को देखा तो

दोनों आसक्त हो गयें। सोमप्रभ के साथ मकरन्दिका को विवाह के लिए तैयार करके सोमप्रभ के पास शिवमन्दिर को लौट आयी। सोमप्रभ के अपने मंत्री से सब वृतान्त कहते समय ही सोमप्रभ के पिता का बुलावा आ गया और उस समय सोमप्रभ ने पुनः लौटने का वचन देकर सेना सहित काञ्चनपुरी को प्रस्थान किया। मकरन्दिका सोमप्रभ के चले जाने के समाचार को सुनकर विरहाकुल होकर इधर–उधर भ्रमण करने लगी। उसके पिता ने बहुत समझाने का प्रयत्न किया। परन्तु उसके समझ में कुछ न आया तो पिता ने क्रोधित होकर मकरन्दिका को कुछ दिनों के लिए निषाद कन्या होने का शाप दे दिया। परन्तु उसके माता–पिता मकरन्दिका के दुःख से परलोकवासी हो गये। दूसरे जन्म में उसका पिता शास्त्रज्ञ ऋषि हुआ किन्तु एक शाप के कारण तीसरे जन्म में शुक हो गया और उसकी माता शूकरी हो गयी।

अगस्त्य ऋषि ने कहा यह शुक वही मकरन्दिका का पिता है। तपोबल के कारण इसे पूर्व जन्म की सभी विधायें स्मरण है और यह शुक राजसभा में कथा सुनाने से मुक्त हो जाएगा। मकरन्दिका का विवाह सोमप्रभ से हो जायेगा और रश्मिवान् का विवाह मनोरथ प्रभा से हो जायेगा। इस समय सोमप्रभ अपने पिता से मिलकर लौट आया है। मकरन्दिका को प्राप्त करने के लिए शिव की आराधना कर रहा है। यह कहकर अगस्त्य ऋषि चुप हो गये। शुक ने आगे कहा अब मुझे पूर्वजन्म की सारी घटनाएं स्मरण हो रही है। कुछ दिन मरीचि ने मेरा पालन किया पंख निकल आने पर वहाँ से उड़कर निषाद् कन्या के हाथ में पहुँच गया और आपकी सभा में लाया गया हूँ, अब मैं इस समय सभी पापों से मुक्त हो गया हूँ।

इस कथा से राजा सुमनस् बहुत प्रसन्न हुए। उधर सोमप्रभ की आराधना से प्रसन्न होकर भगवान् आशुतोष ने कहा कि हे सोमप्रभ तुम राजा सुमनस् जाओ। वहॉ मकरन्दिका निषाद् के रूप में शुकरूप में अपने पिता को लेकर उपस्थित होगी तुमको देखकर उसे अपनी जाति का स्मरण हो जायेगा और वह अपने रूप को प्राप्त करेगी। इसके पश्चात् शंकर ने मनोरथप्रभा से कहा कि राजा सुमनस् ही रश्मिवान् है तुम उसके पास जाओ, तुम्हें देखते ही शापमुक्त हो जायेगा और अपने शरीर को प्राप्त करेगा। इस शिव की आज्ञा से सोमप्रभ और मनोरथप्रभा दोनों राजा सुमनस् की सभा में गये सोमप्रभ को देखते ही निषाद कन्या को अपनी जाति का स्मरण हो गया और मकरन्दिका होकर सोमप्रभ के गले में निपट गयी और सुमनस् भी मनोरथ प्रभा को देखकर राजा के शरीर का परित्याग करके नभ से गिरे हुए अपने में प्रविष्ट होकर मनोरथप्रभा के साथ आश्रम चला गया और सोमप्रभ मकरन्दिका के साथ अपने नगर कञ्चनपुर चला आया । शुक भी अपने शरीर को त्यागकर तपोबल से मुक्ति को प्राप्त हो गया।

कादम्बरी कथा का मूल स्त्रोत

कादम्बरी की कथा मूलतः कल्पना प्रसूत अतएव मौलिक है। यद्यपि प्रायः सभी विद्वान् यह स्वीकार करते हैं कि कादम्बरी की कथा एक काल्पनिक कथा है। तथापि कादम्बरी की कथा केवल पूर्णरूप से बाणभट्ट की कल्पना नही कही जा सकती है, क्योंकि कादम्बरी का आधार या प्रेरणास्त्रोत बृहत्कथा का मकरन्दिकोपाख्यान है। वृहत्कथा आज मूल रूप में उपलब्ध नहीं है। इसके दो रूपान्तर सोमदेव–प्रणीत 'कथासरित्सागर' तथा क्षेमेन्द्रकृत 'वृहत्कथामञ्जरी' मिलते हैं। इनमें राजा सुमनस् की कथा ही रूपान्तरित होकर कादम्बरी की

कथा है। बाणभट्ट ने प्रेरणा अवश्य ही बृहत्कथा से ग्रहण किया है किन्तु बाण की कथा में कल्पना शक्ति, प्रतिभा और उनकी मौलिकता की छाप दृष्टव्य है। कथासरित्सागर की उपलब्ध कथा के कुछ नामों को परिवर्तन कर देने से कादम्बरी की कथा बन जाती है। तथापि यथास्थान बाणभट्ट ने पर्याप्त परिवर्तन करके कादम्बरी की मौलिक रचना की है। सर्वप्रथम कथा–सरित्सागर में वर्णित कथा को कल्पना का परिवेश पहनाकर सुसज्जित एवं विस्तृत कर दिया। पात्रों की संख्या में वृद्धि करके पात्रों के सभी नामों को परिवर्तित कर दिया और नवनवोन्मेष शालिनी प्रतिभा का परिचय प्रस्तुत किया है। चन्द्रापीड के शौर्य, औदार्य एवं प्रताप आदि का उत्कर्ष प्रदर्शित करते हुए नायक के अनुकूल चन्द्रापीड का चरित्र–चित्रण किया। शुकनाश की विद्वत्ता का अनुपम वर्णन बाण की निजी कल्पना है। वैशम्पायन के मित्र की कल्पना किन्नर के स्थान पर किन्नर मिथुन, नायक–नायिका के अनुरूप सूक्ष्म एवं भव्य भावनाओं का चित्रण, बाण की अपनी मौलिकता अथवा प्रतिभा का परिचायक है। चन्द्रापीड के पिता के पास वापस लौट आने के बाद तो प्राचीन कथा में पर्याप्त परिवर्तन किया है। प्राचीन कथा में मकरन्दिका अपने माता–पिता को सोमप्रभ के विरह में क्षुब्ध कर देती है। जिससे क्रुद्ध होकर पिता मकरन्दिका को निषाद कन्या होने का शाप दे देते हैं और मकरन्दिका के पिता स्वयं ही शुक का रूप धारण करते हैं और कादम्बरी में पुण्डरीक की माता लक्ष्मी ही चाण्डाल–कन्या का रूप धारण कर पुण्डरीक को ही शुक रूप में सोने के पिंजड़े में बन्द करके शूद्रक की सभा में आती है। चन्द्रापीड का मित्र वैशम्पायन ही महाश्वेता के अज्ञानता–वश शाप से शुक हो गया था और चन्द्रापीड ही शूद्रक है। शूद्रक का व्यक्तित्व राजा सुमनस् से भिन्न रूप में प्रदर्शित किया है।

बाण ने नामों में जो परिवर्तन किया है, वह इस प्रकार हैं–

कथा सरित्सागर	कादम्बरी
काञ्चनपुरी	विदिशा
सुमना	शूद्रक
शास्त्रगञ्ज(तोता)	वैशम्पायन
मरीचि	हारीत
सोमप्रभ	चन्द्रापीड
प्रभाकर	शुकनास
प्रियंकर	वैशम्पायन
आशुश्रवा	इन्द्रायुध
मनोरथ प्रभा	महाश्वेता
रश्मिमान्	पुण्डरीक
मकरन्दिका	कादम्बरी

बाण ने अन्य पात्रों की भी योजना की है, जो कथा के प्रवाह को बढ़ाने में सहायक होते हैं। वे हैं– पत्रलेखा, तरलिका, तमालिका, कुलवर्धना, कैलास, बलाहक, आदि। राजाओं के पास सेनापति, कञ्चुकी आदि होते हैं। बाण ने अन्य पात्रों की योजना इसीलिए की है।

बाण ने शाप की योजना अन्य प्रकार से की है। वैशम्पायन महाश्वेता से प्रेम करना चाहता है। महाश्वेता वैशम्पायन को शुक होने का श्राप दे देती है। इससे महाश्वेता के चरित्र तथा पुण्डरीक के प्रति उसके प्रेम की पवित्रता प्रकट होती हे। वैशम्पायन का महाश्वेता के प्रति आकृष्ट होना स्वाभाविक है, क्योंकि

वह पुण्डरीक का अवतार है। पूर्वजन्म के संस्कार बलवान् होते हैं और वे मनुष्य को प्रभावित करते हैं। चाण्डाल कन्या पुण्डरीक की माता लक्ष्मी है। वह अपने पुत्र की रक्षा के लिए अवतीर्ण होती है। बाण का यह परिवर्तन समीचीन तथा कमनीय है।

कथा सरित्सागर में एक तरफ प्रेमी सोमप्रभ अपनी प्रेमिका मकरन्दिका की प्राप्ति के लिए आराधना करता है और दूसरी ओर प्रेमिका मनोरथप्रभा अपने प्रेमी रश्मिमान् को प्राप्त करने के लिए आराधना करती है। कादम्बरी में दोनों प्रेमिकाएं ही अपने प्रेमियों को प्राप्त करने के लिए आराधना में लगी रहती हैं। कथासरित्सागर में दो जन्मों की योजना हुई है, जब कि कादम्बरी में तीन जन्मों की कथा निबद्ध की गयी है। बाण ने पात्रों को स्वर्ग की अवनि पर बैठा दिया है। पुण्डरीक, कपिञ्जल, चन्द्रापीड आदि इस लोक के पात्र नहीं। उनमें दैवी आभा है। कवि कल्पना के लोक में भ्रमण करते हुए ऐसे पात्रों का चित्रण करता है, जिनके कारण हम कथा के अन्त तक निर्निमेष दर्शनीय और स्वप्नवत् विस्मोत्पादक कथा की विभावना करते रहते हैं।

कादम्बरी में पत्रलेखा की कल्पना एकदम नवीन एवं बाण की निजी कल्पना है।

इस प्रकार कथा सरित्सागर की कथा तथा कादम्बरी की कथा का तुलनात्मक विवेचन करने पर हम पाते हैं कि कवि बाण ने काव्य सौन्दर्य की समुज्ज्वल प्रभा से अपनी कथा का अलंकरण किया है उसने कथासरित्सागर की कथा के विभिन्न पटलों को काव्यत्व का परिवेश पहनाकर राजसी ठाठ–बाट से अलंकृत करके मानवीय भावों का तथा प्रकृति के उदात्त चित्रों का चित्रण प्रस्तुत करते हुए शुकनास मन्त्री के द्वारा धन के अवगुणों को स्पष्ट प्रस्तुत किया है

और अपने तीव्र अनुभव के आधार से लक्ष्मी के दोषी का यथार्थ चित्रण किया है तथा नूतन विधाओं से आभूषित करके प्रसंगानुकूल परिवर्तन भी किये हैं। मानव जीवन के गूढ़ रहस्यों का भी अंकन हुआ है। कथा को आकर्षक बनाने के लिए नूतन प्रसंगो का विन्यास किया गया है।

❑❑❑

चतुर्थ अध्याय

कादम्बरी के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

कादम्बरी के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

कादम्बरी के पात्र कुछ दूसरी ही तरह के परिलक्षित होते हैं। वे केवल मर्त्यलोक ही नहीं चन्द्रलोक और गन्धर्व लोक में भी भ्रमण करने वाले दिव्य पात्र हैं। पात्रों की रूपरेखा उन्होंने **गुणाढ्य** की **वृहत्कथा** से ही ग्रहण की है। परन्तु अपनी कल्पनाशीलता से उनकी संख्या काफी बढ़ा दी है। उनके पात्र दिव्य होते हुए भी मानवीय गुणों को लिए हुए हैं। बाण ने पात्रों के माध्यम से प्रेम तत्व की गहनता का परिचय दिया है। उनके द्वारा प्रतिपादित प्रेम उद्दाम और कुल मर्यादा का विध्वंसक नहीं है, उसमें अश्लीलता की गंध नहीं है। उनकी दृष्टि में एक नायिका का एक नायक से सम्बन्ध वांछित है। उन्होंने कहीं भी एक नायक के लिए कई नायिकाओं की कल्पना नहीं की है। बल्कि प्रेम की अमरता पर विश्वास व्यक्त किया है। कादम्बरी और महाश्वेता अपने प्रेमियों के लिए एक से अधिक जन्मों के लिए तपस्या करती हैं तथा इन्तजार करती हैं।

पुरुष पात्र

चन्द्रापीड :-

उज्जयिनी के राजा तारापीड तथा रानी विलासवती ने तपस्या द्वारा चन्द्रापीड नामक पुत्र-रत्न प्राप्त किया। कादम्बरी का नायक यही चन्द्रापीड है। वह धीरोदात्त नायक है। धीरोदात्त का लक्षण साहित्य दर्पण में इस प्रकार किया गया है-

अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरोमहासत्वः।

स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तोदृढव्रतः कथितः ।।[1]

अर्थात् आत्मश्लाघा से रहित, क्षमायुक्त, अतिगम्भीर, महासत्व (हर्ष, विषाद आदि से अनभिभूत स्वभाव वाला), स्थिर प्रकृति, विनय से प्रच्छन्न गर्व वाला तथा दृढ़व्रत वाला धीरोदात्त कहा जाता है।

चन्द्रापीड चन्द्रमा का अवतार है, जिसे शापवश पुनः–पुनः जन्म लेना पड़ रहा था। वह अति सुन्दर बुद्धिमान और पराक्रमी है। बाल्यावस्था में पिता द्वारा गुरूकुल भेजे जाने पर उसने अनेक शास्त्रों और विद्याओं का अध्ययन किया। बाणभट्ट ने वर्णन किया है –

मणिदर्पण इवातिनिर्मले तस्मिन्संचक्राम सकलः कलाकलापः। तथाहि। पदे, वाक्ये, प्रमाणे, धर्मशास्त्रे, राजनीतिषु, व्यायामविद्यासु, ... ।[2]

उसमें अपने जेष्ठों और श्रेष्ठों के प्रति असाधारण भक्ति है। वह शुकनासमन्त्री के समक्ष भूमि पर बैठता है। तथा इनके उपदेश से वह अत्यन्त प्रभावित है–

"उपशान्त वचसि शुकनासे चन्द्रापीड स्ताभिरूपदेशवाग्भिः प्रक्षालित इव, उन्मीलित इव, स्वच्छीकृतइव, निर्मृष्टकृतइव, अभिसिप्तइव, अभिलिप्तइव, अलंकृतइव, पवित्रीकृतइव, उद्भासितइव, प्रीतहृदयो मुहूर्तस्थित्वा स्वभवनमाजगाम।"

चन्द्रापीड में प्रत्येक प्राणियों के प्रति प्रेम और स्नेह की भावना सन्निहित है। वह इन्द्रायुध को देखकर आश्चर्ययुक्त हो जाता है और कहता है –

---

[1] साहित्यदर्पण तृतीयः परिच्छेदः कारिका ३२ पृष्ठ १३६

[2] कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ २६२–२६३

'अहात्मन्नर्वन्, योऽसि सोऽसि। नमोऽस्तु ते। सर्वथा मर्षणीयोऽयमारोहणाति क्रमोडस्माकम्। अपरिगतानि दैवतान्यप्यनु चित भवभाञ्जिभवन्ति।'[1]

चन्द्रापीड मृगया प्रेमी और पराक्रमी है। वह युवराज होने के उपरान्त दिग्विजय के लिए प्रस्थान करता है, पहले पूर्व दिशा पर विजय प्राप्त करता हुआ क्रमशः उत्तर दिशा को भी विजित कर लेता है। एक दिन मृगया के लिए किन्नर–मिथुन का अनुसरण करता हुआ अच्छोद सरोवर का दर्शन करता है। वहाँ शिव सिद्धायतन में वीणावादिनी महाश्वेता के दुःखद घटना को सुनकर सान्त्वना देते हुए अनेक प्रनोत्तर की युक्तियों से धैर्य बंधाने का प्रयास करते हुए कहता है–

भगवति क्लेशभीरुरकृतज्ञः सुखासङ्गसुब्धो लोकः स्नेह सदृशं कर्मानुष्ठातु मशक्तो निष्फलेनाश्रुपातमात्रेण स्नेह मुपदर्शयन्रोदिति। त्वपातु कर्मणैव सर्वमाचरन्त्या किमिव न प्रेमोचितमाचेष्टितम् येन रोदिषि। .... धीरा हि तरन्यत्यापदम् इत्येवंविधैरन्यैश्च .... बलात्प्रक्षालितमुखीमकारयत्।[2]

इस प्रकार चन्द्रापीड की त्याग, शील, उदारता, वीरता, मृगया, कुशलता, दक्षता, सहानुभूति आदि का परिचय स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है।

चन्द्रापीड के चरित्र की एक प्रमुख विशेषता यह है कि वह आदर्श प्रेमी है। कादम्बरी के अनुपम सौन्दर्य को देखकर मुग्ध होने पर भी स्वयं तत्क्षण प्रणय निवेदन नहीं करता है। वह सोचता है कि मैं व्यर्थ ही प्रणय निवेदन करके अपने मन को क्यों दुःखी करूं क्योंकि यदि वह गन्धर्व कन्या कादम्बरी मुझ पर अनुरक्त होगी तो शीघ्र ही कामदेव इसकी मानसिक भावना को प्रकटित कर

---

[1] कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ ३१३

[2] कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ ६५३–६६२

देगा। यही नहीं वह कादम्बरी के सामने ही विनीत भाव से कहता है कि आपके अपरिमित प्रेम का पात्र होने के लिए मेरे में कोई गुणों का अंश भी नहीं है जिससे मैं आपके स्नेह का भाजन हो सकूं–

" न खलु चिन्तयन्नपि निपुणं तमात्मनोगुणमवलोकयामि। यस्यायमनुरुपोऽनुग्राहतिरेकः"।

इस प्रकार कादम्बरी के साथ चन्द्रापीड के वार्तालाप को देखने से चन्द्रापीड की उदारता, शालीनता, वाक्चातुर्य का उत्तम परिचय प्राप्त हो जाता है।

चन्द्रापीड पितृभक्त भी है। केयूरक द्वारा कादम्बरी की विरहवृथा जानकर व्याकुल हो उठता है परन्तु अपने कर्तव्य को समझते हुए पिता की अनुमति प्राप्त करके ही उज्जयिनी से कादम्बरी से मिलने के लिए प्रस्थान करता है। चन्द्रापीड की मित्रता भी अवर्णनीय है। वह सेनापति से वैशम्पायन की दशा को सुनता है, तो अनेक संकल्प और विकल्पों को करता हुआ महाश्वेता के समीप जाकर वैशम्पायन के शुक होने का हृदय विदारक समाचार सुनता है, तो फिर उसी क्षण चन्द्रापीड का हृदय विदीर्ण हो जाता है और वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। मित्रता का ऐसा ज्वलन्त उदाहरण विश्ववाङ्मय में अन्यत्र मिलता दुर्लभ है।

चन्द्रापीड परिहास कुशल भी है। कालिन्दी नामक सारिका के विषय में उसके हास्य से परिपूर्ण सुन्दर व्यंग्य भरे कहे गये वचन दृष्टव्य है।

जैसा कि कहा गया है कि नायक ही मूलकथा का आधार होता है– "महाप्रबन्धमूलं हि नेता" यह चन्द्रापीड में अक्षरक्षः सत्य प्रतीत होता है। वह नायक के गुण जैसे– परमसुन्दर, विनीत, उदार, उच्चकुलोत्पन्न, सहृदय, वीर, उत्साही, सकलकलाविशारद, सच्चरित्र से आप्लावित है।

पुण्डरीक :–

पुण्डरीक श्वेतकेतु और लक्ष्मी का पुत्र है। वह अत्यन्त सुन्दर है। वह केवल स्त्रीवीर्य से उत्पन्न हुआ है, अतएव उसमें कामुकता है। महाश्वेता को देखते ही उसमें काम जागरित हो उठता है। कपिञ्जल उसे समझाता है, किन्तु वह धैर्य की सीमा को पार कर चुका है। अतः कहता है–

'सखे, किं बहूक्तेन। सर्वथा स्वस्थोऽसि। आशीविषवेगविषमाणामेतेषां कुसुमचापसायकानां पतितोऽसि न गोचरे, सुखमुपदिश्यते परस्य। परस्य यस्य चेन्द्रियाणि सन्ति, मनोवा वर्तते, यः पश्यतिवा श्रृणोतिवा, श्रुतमवधारयतिवा, यो वा शुभमिदं न शुभमिदिमिति विवेक्तुमलं स खलूपदेशमर्हति।

अर्थात् 'मित्र, अधिक कहने से क्या लाभ ? तुम सब प्रकार से स्वस्थ हो सर्प के विष के समान विषम इन कामदेव के बाणों का विषय नहीं हुए हो। दूसरे को सहज में ही उपदेश दिया जा सकता है। वह दूसरा, जिसकी इन्द्रियां ठीक हैं या मन अपने वश में है, अथवा जो देखता है,अथवा सुनता है, या सुने हुए को समझता है, अथवा जो यह शुभ है, यह शुभ नहीं है, इस प्रकार विवेक करने में समर्थ है, वह वास्तव में उपदेश के योग्य है।'

पुण्डरीक के ये वचन सत्य का स्वरूप प्रकट करते हैं। काम अपने प्रभाव से वह स्थिति उत्पन्न कर देता है जिससे मानव किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। उसे उचित–अनुचित का विचार ही नहीं रहा जाता।

शूद्रक :–

शूद्रक शिप्रा नदी से घिरी हुई विदिशा का नृप था। वह चन्द्रापीड का अन्तिम अवतार था। उसके विषय में तथा उसके राज्य के विषय में बाणभट्ट ने श्लिष्ट परिसंख्या के माध्यम से वर्णन किया है।

'आसीद शेष नरपति शिरः समभ्यर्चितशासनः पाकशासन इवापरः, चतुरुदधिमालामेखला भुवो भर्त्ताद्व प्रतापानुरागावनत समस्तसामन्तचक्रः, चक्रवर्तिलक्षणोपेतः, चक्रधर इव कर कमलोपलक्ष्यमालशङ्खचक्र लाञ्छनः.... ।'[1]

सभी राजा नत होकर शूद्रक की आज्ञा स्वीकार करते हैं। उसकी शक्कित अप्रतिहत है। उसने मन्मथ को जीत लिया। वह शास्त्रों का ज्ञाता है और काव्यप्रबन्ध की रचना में निगुण है। वह गुणग्राही है। वह वैशम्पायन द्वारा कही गयी आर्याछन्द में रचना को सुनकर विस्मित हो जाता है। वह प्रधानामात्य कुमार पाम्लित से कहता है–

'श्रुता भवद्भिरस्य विहंगमस्य स्पष्टता वर्णोच्चारणे स्वरे च मधुरता'[2]

वैशम्पायन :–

वैशम्पायन पुण्डरीक का अवतार है। वह राजा तारापीड के मंत्री शुकनास का पुत्र है। चन्द्रापीड के साथ उसने भी सभी विद्याओं का अध्ययन किया है। वह चन्द्रापीड का सदा अनुसरण करता है। वह महाश्वेता की सुन्दरता से मुग्ध होकर उससे प्रणय निवेदन कर बैठता है जिससे कुपित होकर महाश्वेता उसे शुक हो जाने का शाप दे देती है।

तारापीड :–

तारापीड उज्जयिनी का प्रतापी सम्राट है। वे स्नेही पिता और सुन्दर पति है। वे धर्म के अवतार और परमेश्वर के प्रतिनिधि है। उन्होंने प्रजारञ्जन किया। उनके विषय में वर्णन बाणभट्ट ने निम्न प्रकार से किया है–

---

[1] कादम्बरी कथामुखम् पृष्ठ ८३

[2] कादम्बरी कथामुखम् पृष्ठ १४६

'प्रमुदित प्रजस्य परिसमाप्ति सकल महीप्रयोजनस्य नरपतेर्विषयोप भोग लीलाभूषणम्। इतरस्य तु विडम्बना। प्रजानुरागहेतोरन्तरान्तरा दर्शनं ददौ। सिंहासनं च निमित्तेष्व वासरोह।'[1]

प्रधान महिषी विलासवती पुत्र न होने के कारण दुःखित है। उसने आभूषण नहीं धारण किये हैं। राजा तारापीड कहते हैं– कया मैनें कोई अपराध किया है या मेरे किसी अनुजीवी परिजन ने ? बहुत विचार करने पर भी तुम्हारे विषय में अपना स्खलन नहीं देख पा रहा हूँ। मेरा जीवन और राज्य तुम्हारे अधीन है। हे सुन्दरी, शोक का क्या कारण है ?[2]

जब विलासवती की दासी मकरिका राजा को रानी के पुत्र न होने के दुःख से दुःखी होने की बात कहती हैं तब राजा धर्मोचित वाक्यों से रानी को सान्त्वना देते हुए कहते हैं –

"देवि, किमत्र दैवायत्ते वस्तुनि। अलमति मात्रं रुदितेना न वयमनुग्राहह्याः प्रायो देवतानाम्। आत्म परिण्वङ्गामृतस्वादसुखस्य नूनमभाज नमस्मांक हृदयं। अन्यस्मिञ्जन्मनिन न कृतमवदातं कर्म। जन्मान्तरकृतं हि कर्म फलमुपनयति पुरुषस्येहजन्मनि।"[3]

रजा तारापीड के ये वचन शाश्वत सत्य की आर संकेत करते हैं। गीता का सार – कर्मणेवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्" तारापीड के वचनों में शतसः सत्य होता है। इसका यहाँ संकेत है। ये वचन तारापीड का विलासवती के प्रति स्नेह का सम्भार और हृदय की विशालता द्योतित करता है।

---

[1] कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ २२८

[2] कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ २३७

[3] कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ २४०

तारापीड का चरित्र आद्योपान्त अत्यधिक पवित्र है। एक आदर्श भारतीय सम्राट के सभी गुण उनमें विद्यमान है।

शुकनास :–

शुकनास का चरित्र कादम्बरी में सर्वोत्कृष्ट है। शुकनाश राजा तारापीड का मंत्री है। उज्जयिनी वर्णन तथा तारापीड के गुणों के वर्णन के पश्चात् शुकनाश का परिचय प्राप्त होता है–

" तस्य च राज्ञा निखिलशास्त्रकलावगाहगम्भीरबुद्धिः, आशैश वादुपारुढ़ निर्भर प्रेमरसः नीतिशास्त्र प्रयोग कुशलः भुवन राज्यभारनौ कर्णधारः महत्स्वपि कार्य संकटेष्वविषण्णधीः धाम धैमस्य .... वृहस्पतिरिव सुनासीरस्य, कविरिव वृषपर्णवः, वशिष्ठ इव दशरथस्य, विश्वामित्र इव रामस्य, धौम्य इवाजात शत्रोः दमनक इव नलस्य सर्वकायेष्वा हित मतिरमात्यो ब्राह्मणः शुकनासो नामासीत्।"[1]

अर्थात् इस राजा तारापीड का सम्पूर्ण शास्त्रों व कलाओं के सम्यक्, अध्ययन से गम्भीर बुद्धि वाला, ब्राह्मण कुलोत्पन्न शुकनास नाम का मंत्री था, जो बाल्यकाल से ही राजा से अत्यधिक प्रेम करता था, जो नीतिशास्त्र के प्रयोग में कुशल जो संसार के राज्य भाररूपी नौका का कर्णधार बड़े–बड़े संकट के कार्यो में भी अप्रतिहत बुद्धि वाला, धैर्य का भण्डार मर्यादा का स्थान .... जो इन्द्र के मंत्री वृहस्पति, शुक के वृषपर्ण, जो दशरथ के मंत्री वशिष्ठ के समान .... सभी कार्यों में बुद्धि को लगाने वाला मंत्री शुकनास था।

---

[1] कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ २१७–२१६

तारापीड के समान शुकनास को पहले से पुत्र नही हुआ था। चन्द्रापीड के जन्म के पश्चात् शुकनास की पत्नी मनोरमा से वैशम्पायन नामक पुत्र उत्पन्न होता है। तारापीड शुकनास के दुःख–सुख को अपना समझता था। इसलिए वैशम्पायन के जन्म का उत्सव दुगने उत्साह से मनाया । शुकनास राजा का कितना अधिक शुभचिन्तक था, इसका परिचय उस समय मिलता है, जब चन्द्रापीड का राजतिलक होने वाला था, तो उससे पूर्व शुकनास चन्द्रापीड को "लक्ष्मीदोषाः" अर्थात् लक्ष्मी के दोष वर्णन करके वह उपदेश देता है। जिसके अनुसार आचरण करने वाला शासक कभी असफलता नहीं प्राप्त कर सकता है। लक्ष्मी के विषय में कहता है –

"लब्धापि खलु दुःखेन परिपाल्यते। .... न परिचयं रक्षति। नाभिजन मीक्षते। नरूपमालोकयते। .... दुष्टपिशाचीव दर्शितानेक पुरुषोच्छ्ज्ञया स्वल्पसत्त्वमुन्नमत्तीकरोति। सरस्वती परिगृहीत मीष्ययेव नालिङ्गति .... ।[1]

शुकनास के लक्ष्मी विषयक उपदेश सम्प्रति भी सत्य है आज के वातावरण में हम देखते हैं कि लक्ष्मी के आकर्षक रूप के पीछे सारा जगत् मतिभ्रम होकर भाग रहा है और चतुर्दिक भ्रष्टाचार व्याप्त है। विद्वानों का कोई सम्मान नहीं है।

इसके अतिरिक्त जब चन्द्रापीड की मृत्यु के समाचार को सुनकर तारापीड रानी और शुकनास सहित महाश्वेता के आश्रम में जाते हैं, तो शुकनास राजा को शास्त्र–संगत उपदेश से धैर्य एवं सान्त्वना देते हैं। इस प्रकार यह

---

[1] कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ ४०१–४०५

निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि बाण ने शुकनास का चरित्र–चित्रण एक आदर्श मंत्री के रूप में किया है।

जाबालि :-

भगवान जाबालि महान् तपस्वी हैं। सत्याचरण में उनकी अनुरक्ति है। वे दीन अनाथ और विपन्नों के रक्षक हैं। उनके विशेषण के लिए बाणभट्ट ने – वैनतेयमिव स्वप्रभावोपात्तद्विजाधिपत्यम्, कमलासनमिवाश्रम गुरुम् प्रयुक्त किया है। शुक जाबालि को देखकर विस्मित होता है और विचार करने लगता है–

"आह, तपस्या का प्रभाव कैसा अद्‌भुत है। इस महर्षि की यह अत्यधिक तपे हुए सोने के समान उज्ज्वल आकृति शान्त होती हुई भी दमकती हुई बिजली के समान आंखों की ज्योति को नष्ट कर रही है। सदा उदासीन होकर भी अत्यन्त प्रभावशील होने से प्रथम बार आये हुए व्यक्ति के मन में भय का सञ्चार कर देती है।"[१]

उनकी जीवों के प्रति दयालुता का वर्णन करते हुए कहा गया है – वे करूणारस के प्रवाह हैं, संसार सिन्धु के सन्तरण–सेतु हैं, क्षमारूपी जल के आधार हैं, तृष्णारूपी लतागहन के लिए परशु हैं, सन्तोष रूपी अमृतरस के सागर हैं, सिद्धिमार्ग के उपदेष्टा हैं, अशुभ ग्रहों के अस्ताचल हैं, शान्तिरूपी वृक्ष के मूल हैं, ज्ञानचक्र के मूलाधार हैं।[२]

---

[१] अहो प्रभावस्तपसाम्। इयमस्य ....भयमिवोपजनपति प्रथमोपगतस्य।

– कादम्बरी कथामुखम् पृ०–३४५

[२] 'एष प्रवाहः करुणारसस्य संतरण सेतुः संसार सिन्धोः .... नाभिः प्रज्ञाचक्रस्य।'

– कादम्बरी कथामुखम् पृ०–३५२

महर्षि जाबालि त्रिकालदर्शी हैं उन्होंने शुक को देखते ही कह दिया कि यह अपने कर्मों का फल भोग रहा है। उसके जन्मान्तर की बातें जान जाते हैं। तपस्वियों के द्वारा प्रार्थना करने पर वे शुक के पूर्वजन्म की कथा कहते हैं। जाबालि के द्वारा ही कथा आगे की ओर अग्रसर होता है। इस प्रकार वे सत्य, तपश्चर्या, सत्त्व, साधुता, मंगल तथा पुण्य के निधान हैं। उनके प्रभाव से हिंसक जीव भी आश्रम में शान्त हैं।

हारीत :-

हारीत दयालु युवक हैं। वह महर्षि जाबालि का पुत्र है। उसमें भी मुनितेज विद्यमान है। वैशम्पायन शुक उसके विषय में कहता है – 'जो कोमल छालों से ढ़ंके हुए शरीर वाले वृक्ष के तने की भांति कोमल वल्कल वस्त्र से ढके हुए शरीर वाला था, जो मेखलाओं से युक्त पर्वत की भांति मौञ्जी मेखला से युक्त था, जो अनेक बार चन्द्रमा को ग्रस्त करने वाले राहु की भाँति अनेक बार सोमरस का आस्वादन कर चुका था, ...'[१]

हारीत का हृदय करुणा से आप्लावित है। जीवो के प्रति उसके हृदय में दया की तरंगे उठती हैं। शुक की दशा देखकर उसका हृदय द्रवित हो जाता है। शुक की दशा देखकर उसका हृदय करुणा से आप्यायित हो उठता है। शुक उसके विषय में कहता है –

"प्रायेण कारणमित्राव्यतिकरुणार्द्राणि च सदा खलु भवन्ति सतां चेतासिं। यतः समा तदवस्य मालोक्य समुप जातकरुणः समीपवर्तिन

---

[१] विटप इव कोमल वल्कलावृत शरीरः .... – कादम्बरी कथामुखम् पृ०–३००

मृषिकुमारकमन्यतममब्रवीत– 'अयं कथमपि शुकशिशुर संजात पक्षपुट एव तरुशिखरादस्मात् परिच्युतः।'[1]

हारीत शुक को हाथ में लेकर जल की बूंदे पिलाता है। स्नान आदि कर लेने के बाद से आश्रम में ले जाता है। तरु की छाया में उसे देखकर पिता के चरणों की वन्दना करता है। उसमें विनमग्रता है और गुरुजनों के प्रति आदर की भावना निहित है।

कपिञ्जल :–

कपिञ्जल पुण्डरीक का सच्चा मित्र था। वह सर्वदा अपने मित्रता के कर्त्तव्य का निर्वाह करता है। पुण्डरीक स्नानार्थ आई हुई महाश्वेता को देखकर काममोहित हो जाता है। उस समय कपिञ्जल उसे समझाता है– मित्र पुण्डरीक यह आपके अनुरूप नहीं है। यह क्षुद्रजनों का मार्ग है। तुमसे कैसे यह अपूर्व इन्द्रिय विकार उत्पन्न हो गया, जिससे यह दशा हो गयी। तुम्हारा वह धैर्य कहाँ गया? वह इन्द्रियां विजय कहाँ गयी? वह चित्त को वश में करने वाली शक्ति कहाँ गयी? चित्त की शान्ति है? कुल क्रमागत व ब्रह्मचर्य कहाँ गया? सभी विषयों के प्रति वह निरुत्सुकता क्या हुई? गुरुओं के वे उपदेश कहाँ चले गये?[2]

वह जब देखता है कि पुण्डरीक का धैर्य विलुप्त हो गया। वह कामवेद की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका है तब वह महाश्वेता से मिलाने का प्रयत्न करता है। महाश्वेता के पहुंचने से पूर्व ही पुण्डरीक का प्राणान्त हो जाता है। उस समय का वर्णन अत्यन्त मार्मिक है। कपिञ्जल अपने दुःख को व्यक्त करते हुए कहता है –

---

[1] कादम्बरी कथामुखम् पृष्ठ–३०३

[2] कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ – ५६२–५६३

आः पाप दुश्चरित चन्द्र चाण्डाल कृतार्थोऽसि। इदानीमपगत दाक्षिण्यं दक्षिणानिलह तक, पूर्णास्ते मनोरथाः। कृतं यत्कर्तव्यम्। वहेदानीं यथेष्टम्। हा भगवन् श्वेतकेतो पुत्रवत्सल, न वेत्सि मुषित्मात्मानम्। हा, धर्म, निष्परिग्रहोऽसि। हा तपः निराश्रयमसि। हा सरस्वती, विधवासि। हा सत्य, अनाथोऽसि। हा सुरलोक, शून्योऽसि। सखे, प्रतिपालय माम्। अहमापि भवन्तमनुयास्यामि। न शक्नोमि भवन्तं बिनाक्षणमपि स्थातुमेकाकी।[1]

इस प्रकार कपिञ्जल के मित्रता की जितनी भी प्रशंसा की जाये कम है। वह अपने मित्रों को सद्मार्ग की ओर ले जाने का प्रयास करता है। कपिञ्जल शाप के कारण अश्व इन्द्रायुध हो जाता है। जब शाप से मुक्त होता है तो वैशम्पायन को खोजता हुआ जाबालि के आश्रम में जाता है। वह अपने मित्र पुण्डरीक के सुखों की कामना करता है। उसके सुख के लिए सम्पूर्ण प्रयास करता है।

केयूरक :–

केयूरक कादम्बरी का वीणावादक है। वह कादम्बरी का संदेश पहुंचाने में निपुण है। वह महाश्वेता से कादम्बरी का सन्देश करता है – जबकि पति–वियोग से विधुर, व्रत के कारण क्षीण अंगों वाली प्रियसखी अत्यधिक कष्ट का अनुभव कर रही है, तो मैं इसकी अवहेलना करके अपने सुख की इच्छा से कैसे विवाह कर लूँ ? मुझे कैसे सुख मिलेगा ? आपके प्रेम वशा मैं इस विषय में कुमारियों के विरूद्ध स्वतन्त्रता का आलम्बन करके अपयश का भाजन बनी, मैने विनय की अवहेलना की, गुरुओं के वचनों का अतिक्रमण किया,

---

[1] कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ – ६२४–६२५

लोकापवाद को कुछ नहीं समझा, वनिताओं के स्वाभाविक आभूषण लज्जा को छोड़ दिया, तो मैं कैसे पुनः इस विषय की ओर प्रवृत्त होऊँ ? मैं हाथ जोड़ती हूँ, प्रणाम करती हूँ, पैर पकड़ती हूँ, मुझ पर अनुग्रह कीजिए। आप यहाँ से मेरे प्राण के साथ वन में गयी हैं, अतः स्वप्न में भी इस बात को पुनः मन में न लायें।[१]

केयूरक का कथन का ढ़ंग आकर्षक और समीचीन है। केयूरक ही कादम्बरी का उपहार कादम्बरी के समीप पहुँचाता है। वह अपने कर्तव्य का पालन उचित ढ़ंग से करता है।

स्त्री-पात्र

कादम्बरी :-

कादम्बरी प्रतिष्ठा की प्रतिमा है। यह बाणभट्ट की अमर रचना कादम्बरी कथा की मुख्य नायिका है। कादम्बरी कन्या है। वह परकीया मुग्धा नायिका है। परकीया नायिका दो प्रकार की होती हैं –

'परकीया द्विधा प्रोक्ता परोठा कन्यका तथा'।[२]

मुग्धा नायिका का लक्षण साहित्यदर्पणाचार्य न अधोलिखित रूप में दिया है –

प्रथमावतीर्णयौवनमदनविकारा रसौवामा।

कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा।।[३]

---

[१] यत्र भर्तृ विरह विधुरा .... स्वप्नेऽपि पुनरिममर्थ मनसि।
– कादम्बरी प्रथमोभागः पृ० ६७८–७६

[२] साहित्य दर्पण – ३/६६

[३] साहित्य दर्पण – ३/५८

अर्थात् वह नायिका मुग्धा मानी जाती है जिसके शरीर में यौवन अवतरित हो चुका है, जिसके मन में काम का उन्मेष प्रारम्भ हो रहा है, जिसे रति लीला में झिझक होती हो, जिसका प्रणयकोप कोमलता लिए हुए हो और जो अपनी लज्जाशीलता के कारण प्रेम प्रकाशन में विवश रहा करे। कादम्बरी में मुग्धा नायिका के सभी लक्षण परिलक्षित होते हैं। कादम्बरी चित्ररथ नामक गन्धर्व की कन्या है। माता का नाम मदिरा है। आवास स्थान रमणीय हेमकूट पर्वत पर स्थिति राजधानी है। सौन्दर्य की पराकाष्ठा, भावनाओं की परिपक्वता, जीवन के आदर्शों की समापत्ति, लौकिक व्यवहारों के प्रति–निष्ठा, मित्रता की चरमलेखा, औदार्य, दृढ़ता, स्नेह, तपश्चर्या आदि की मनोरम मूर्ति – ये सब कादम्बरी के अनुभाव के अंग हैं। अपनी प्रिय सखी महाश्वेता के प्रणय भंग से दुःखी होती हुयी सहानुभूति प्रदर्शित ही नही करती है, अपितु प्रतिज्ञा करती है कि जबतक महाश्वेता का सुखद मिलन अपने प्रियतम से नहीं होगा तब तक मैं भी अपना विवाह नहीं करूंगी और अविवाहित जीवन व्यतीत करूंगी जैसा कि निम्न पक्ति से स्पष्ट हो रहा है–

"नाहं कथचिदपि सकोकायां महाश्वेतायां पाणिग्राहयष्यिामि"।

इसके अतिरिक्त महाश्वेता का सन्देश प्राप्त करके भी कादम्बरी अपनी प्रतिज्ञा को छोड़ने के लिए उद्यत नहीं होती है और अपने वीणावादक केयूरक के द्वारा महाश्वेता के पास सन्देश भेजती है 'जिससे कादम्बरी के दृढ़ निश्चय, अनुराग और अटल सौहार्द्रता का परिचय सहज भाव से मिल जाता है।' जैसा कि निम्नस्थ पंक्तियों से स्पष्ट हो रहा है –

जानास्येव में सहजप्रेमनिस्यन्दनिर्भरं हृदयम्, एवमतिनिष्ठुरं संदिशन्ती कथमपि न लज्जिता। .... सुहृद्दुःखखेदिते हि मनसि

कैव सुखाशा, कैव निवृत्तिः, कीदृशाः संभोगाः, कानि वा हसितानि ....
यत्र च भर्तृविरहविधुरा व्रतकर्शिताङ्गी प्रियसखी, महत्कृच्छ्रमनु भवति,
तत्राहमवगणय्यैतत्कथमात्मसुखार्थिनी पाणिं ग्राहयिष्यामि।.......................तदय
मञ्जलिरूपरचितः प्रणोमोऽयम इदं च पादग्रहणम्, अनुगृहाणमाम्, वनमितो गतासि
में जीवितेन सहेति माकृथाः स्वप्नेऽपि पुनरिममर्थ मनसि।'[१]

अर्थात् "तुम जानती हो ही कि मेरा हृदय तुम्हारे स्वभाविक प्रेम के प्रवाह से परिपूर्ण है फिर भी ऐसा अत्यन्त कठोर सन्देश प्रेरित करते हुए तुम्हें लज्जा क्यों नहीं आई ? प्रिय सखि के दुःख से दुःखी मन होने पर सुख की इच्छा ही क्या ? अथवा शान्ति ही कैसी? सम्भोग ही कैसा ? हास उपहास कैसा ? ....। जहाँ एक ओर पति के विरह से दुर्बल अंगो वाली मेरी प्रियसखी अतीव कष्टों की अवहेलना करके मैं अपना पाणिग्रहण कैसे कराऊँगी .... इसीलिए मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करती हूँ और पैर पकड़ती हूँ मेरे ऊपर कृपा करो यहाँ से तुम मेरे जीवन के साथ ही वन में चली गई थी, अतः स्वप्न में भी फिर मेरे विवाह का विचार मन में न लाना।"

यद्यपि बाण आदर्श प्रेम क पक्षपाती हैं तथापि स्वाभाविक मानवीय दुर्बलता का वर्णन करने में संकोच नही करते । जैसे कादम्बरी ने प्रतिज्ञा की है कि विवाह नहीं करूँगी पर चन्द्रापीड के प्रथम दर्शन से उसके हृदय का सम्राट बन जाता है। महाश्वेता कादम्बरी से कहती है – सखि, चन्द्रापीड, कहाँ ठहरेंगे? कादम्बरी उत्तर देती है – 'सखि महाश्वेते, आप ऐसा क्यों कहती हैं ? जब से इनका प्रथम दर्शन हुआ है, तब से ये शरीर के प्रभु हो गये हैं, परिजन और भवन का तो कहना ही क्या ? जहाँ इन्हें अच्छा लगे अथवा आपको अच्छा लगे

---

[१] कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ – ६६७–६८

रहें।[1] चन्द्रापीड को देखकर कादम्बरी के मन में विकार उत्पन्न होता है। उसे रोमाञ्च हो जाता है (दृष्ट्वा च प्रथमं रोमद्गिमः, ततो भूषणरवः, तदनु कादम्बरी समुत्तस्थौ) जब चन्द्रापीड को ताम्बूल देने के लिए हाथ फैलाती है, तब उसके अंग काँपने लगते हैं। उसके नेत्र व्याकुल हो जाते हैं। वह स्वेद के प्रवाह में डूब जाती है। उसका रत्नवपल हाल से गिर पड़ता है, किन्तु इसका उसे भान नहीं है।

कादम्बरी अनिन्द्य सुन्दरी है जब चन्द्रापीड प्रथम बार कादम्बरी को देखता है, तब कादम्बरी का शारीरिक सौन्दर्य मुख्यरूप से उसके सामने प्रकट होता है। कादम्बरी का प्रतिबिम्ब मणिकुट्टिम पर पड़ रहा है। उसके आभूषणों के रत्नों की प्रभा चारो ओर विकीर्ण हो रही है। उसके स्तन मकरकेतु के पादपीड है। उसकी भुजाएं मृणालकाण्ड की भाँति है।

कादम्बरी में मर्यादा है। वह लज्जाशील है। यद्यपि वह चन्द्रापीड की ओर खिंच चुकी है। तथापि अपने आचरण से संतुष्ट नहीं है७

"अगणित सर्वशङ्कया तरलहृदयतां दर्शयन्त्याद्य मया किं कृतमिदं मोहान्धया। तथाहि अदृष्टपूर्वीऽयमिति साहसिकतया मया न शाङ्कितम्। लघुहृदयां मामयं कलयिष्यतीति निर्ह्रीकया नाकलितम्। कास्य चित्तवृत्तिरिति मया परीक्षितम्। दर्शमानुकूलाहमस्य नेति वा तरलता न कृतो विचारक्रमः।"[2]

वह भारतीय नारी का आदर्श चित्रण है। वह इनका प्रतिनिधित्व करती है तथा चन्द्रापीड के मृत्यु को प्राप्त हो जाने पर रोना अमंगल समझती है और भारतीय

---

[1] कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ – ७३१

[2] कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ – ७३४–७३५

प्राचीन संस्कृति के अनुकूल स्वर्गीय अपने प्रियतम का अनुसरण उसी प्रकार करने के लिए तैयार होती है जिस प्रकार पैरों की धूल पैरों का अनुसरण करती है, जैसा कि कादम्बरी के उत्तरार्द्ध से उद्धृत निम्नांकित पंक्ति से स्पष्ट हो रहा है–

"कथं स्वर्गगमनोन्मुखस्य देवस्य रुदितेनामङ्गलं करोमि। कथं पादधूलिरिव पादावनुगन्तुमुद्यता हर्ष स्थानेऽपि रोदिमि।"[1]

यद्यपि कादम्बरी में नायिका का चित्रण मध्य में होता है और पाठक क्लान्त–सा हो जाता है किन्तु कादम्बरी के प्रथम प्रभाभुञ्ज से उसकी क्लान्ति दूर हो जाती है।

कादम्बरी के चरित्र–चित्रण की प्रशंसा पीटर्सन ने भी की है। कादम्बरी में एक स्वकीयामुग्धा नायिका के सभी गुण परिलक्षित होते हैं। उसमें आकर्षण की शक्ति है मादकता है। वह आदर्श की पराकाष्ठा है।

महाश्वेता :-

महाश्वेता की तपःपूत मूर्ति का चित्रण करते समय तो बाण ने ऐसा समाँ बाँधा है कि जेसा वेदत्रयी स्वयं ही कलियुग के धर्मलोप से दुःखी होकर वनवासिनी बन गई (त्रयीमिव कलियुगध्वस्त धर्मशोक गृहीत वन वासाम्), जैसे मुनियों की ध्यान सम्पत्ति स्वयं मूर्तरूप में समाने आ खड़ी हो (देहवतीमिव मुनिजनध्यानसम्पदम्), जैसे वह धर्म के हृदय से निकलकर आई हो (धर्महृदयादिव विनिर्गताम्)। काली चाण्डाल कन्या से ठीक उलटें रूप रंग वाली गौरवर्ण यथानाम्नी महाश्वेता की गौर आकृति को उपस्थित करने में बाण ने एक से एक उत्कृष्ट कल्पना उपस्थित की है। यथा उसे शंख से कुरेद दिया गया

---

[1] कादम्बरी उत्तरभागः पृष्ठ – १८०–१८१

हो, जैसे वह मोतियों से निकाली गई हो, या फिर उसके अंग प्रत्यंग मृणाल के द्वारा बनाये गये हो अथवा चन्द्रमा की किरणों के ब्रुश से उसे साफ किया गया हो, चाँदी के घोल से मार्जन किया गया हो, और जब सारी कल्पनायें समाप्त हो जाती हैं, पर बाण की भावना पूरी तरह स्फुट नहीं हो पाती, तो उसे वह धवलिमा की परमावधि–अन्तिम सीमा (ईयत्ता) घोषित कर देते हैं।[१]

चन्द्रापीड किन्नर युगल का पीछा करते हुए जिस समय आच्छो सरोवर पर पहुँचकर शिव के मन्दिर में वीणा बजाती हुयी और शिव की आराधना करत हुई महाश्वेता का दर्शन करता है। यहीं पाठकों को महाश्वेता का दर्शन होता है वह कन्या है, उसके जीवन में तरलता नहीं बल्कि संयम, त्याग, तपस्या, औदार्य अतिथि परायण, संकोच रहित, तपस्वियों के सभी गुणों का संगम प्राप्त होता है। महाश्वेता तन ही नहीं बल्कि मन की भी सुन्दर है। वह चन्द्रापीड को देखकर कहती है–

"स्वागतमतिथये। कथमिमां भूमिमनुप्राप्तो महाभाग। तदुत्तिष्ठ। आगम्यताम्। अनुभूयतामतिथि सत्कारः' इति।

अर्थात् अतिथि का स्वागत है। हे महाभाग आप इस भूमि पर कैसे आये? तो उठिये, आइए अतिथि–सत्कार को ग्रहण कीजिये।' वह चन्द्रापीड से प्रथम दर्शन से ही चिर–परिचित सी प्रतीत होने लगती है। जब चन्द्रापीड महाश्वेता से उसके विषय में पूछता है, तब वह रोने लगती है। वह चन्द्रापीड से अपना सारा वृतान्त कहती है। वह पुण्डरीक को देखकर कामपीड़ित होती है। वह स्तम्भित–सी, लिखित–सी, उत्कीर्ण–सी, संयत–सी, मूर्च्छित–सी हो जाती है।

---

[१] ....शंखादिवोत्कीर्णा, मुक्ताफलादिवाकृष्टाम्, मृणालैरिव विरचितावयवाम्, ... इन्दुकरकूर्च कैरिवाक्षालिताम् .... रजतद्रवेणेव निर्मृष्टां ....इयत्तामिव ध्वलिम्नः ....।
– कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ ५३०–५३१

"निस्यन्द सकलावयवा, तत्कालाविर्भूतेनावष्टम्भेन, अकथित शिक्षितेनानाख्येयेन, स्वसंवेद्येन केवणम् न विभाव्यते किं तद्रूपसम्पदा ....अहं न जानामि कथंकथमिति तमतिचिरं व्यलोकयम्।"[1]

महाश्वेता का प्रेम पुण्डरीक को भी कामपीड़ित कर देता है। जिससे उसकी दशा सोचनीय हो जाती है।

कपिञ्जल महाश्वेता के गृह पर जाकर पुण्डरीक की कामदशा का वर्णन करता है। महाश्वेता उससे व्याकुल होकर पुण्डरीक से मिलने के लिए निकल पड़ती है। उसके पहुँचने के पहले ही पुण्डरीक मर जाता है। महाश्वेता हा तात, हा अम्ब कहकर मार्मिक विलाप करती है।

'ईषदपि विलोकय। पूरय में मनोरथम्। आर्तास्मि। भाक्तास्मि। अनुरक्तास्मि। अनाथास्मि। बालस्मि। अगतिकास्मि। दुःखितास्मि। अनन्यशरणास्मि। .... कस्मिन्वा त्वदनुकूले नाभिरतम् येन कुपितोऽसि।

आकाशवाणी से महाश्वेता पुण्डरीक के मिलन की प्रतीक्षा करती हुई तपश्चर्या करने लगती है। महाश्वेता का प्रेम एक जीवन से नहीं है बल्कि जन्मान्तरों का है। वह एक को ही पति मानकर उसके प्रति समर्पित रहती है। वह किसी और के विषय में भारतीय नारी की तरह मनसा, वाचा, कर्मणा विचार भी नहीं करती इसलिए वैशम्पायन के प्रणल निवेदन पर उसे शुक होने का शाप दे देती है। महाश्वेता अपनी सखी कादम्बरी का हित करना चाहती है। वह चन्द्रापीड और कादम्बरी को एक सूत्र में बांधने का प्रयत्न करती है। वह चन्द्रापीड से कहती है राजपुत्र हेमकूट रमणीय है, चित्ररथ की राजधानी विचित्र है, किम्पुरुष देश कुतूहलपूर्ण है, गन्धर्व लोग पेशल हैं, कादम्बरी सरलहृदया और

---

[1] कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ — ५४६—५४७

महानुभावा है। यदि गमन को कष्ट कारक न समझें, या किसी गुरु प्रयोजन की हानि न हो, या चित्त में अदृष्ट देशों को देखने का कुतूहल हो, अथवा मेरे वचन को स्वीकार करते हों .... तो मेरी अभ्यर्थना को निष्फल न करें।[१]

बाण की कृति का आधार ही प्रेमतत्व है। महाश्वेता के प्रेम की दृढ़ता कादम्बरी से अधिक है, क्योंकि कादम्बरी अपने में असमर्थ हो जाती है। महाश्वेता का प्रेम असाधारण एवं आदर्श होने के कारण आदर्श भारतीय नारियों के लिए अनुकरणीय है। वैशम्पायन की मृत्यु होने पर चन्द्रापीड की भी मृत्यु होने पर अपने को कादम्बरी के दुर्भाग्य का कारण मानकर दुःखी जीवन व्यतीत करती है। यही नहीं जब महाश्वेता को यह ज्ञात होता है कि चन्द्रापीड के माता–पिता चन्द्रापीड की मृत्यु का समाचार सुनकर आ रहे हैं तो महाश्वेता अत्यन्त दुःख के वेग से एक गुफा में छुप जाती है क्योंकि वह चन्द्रापीड की मृत्यु का कारण स्वयं को मानती है। 'इस प्रकार हम देखते हैं कि महाश्वेता बड़ी दृढ़ता एवं धैर्य के साथ विपत्तियों की परम्परा को सहन करती हुई अपने प्रणय से विमुख नहीं होती। [२]

इस प्रकार हमें परिलक्षित होता है कि महाश्वेता का प्रेम उस सरोवर की भांति है जहां पहले प्रवेश करने पर तो उथलापन मिलता है किन्तु क्रमशः गहराई बढ़ती जाती है। जैसे–जैसे वह विरहरूपी अग्नि में तपता है वैसे–वैसे स्वर्ण की भांति उज्ज्वल हो जाता है।

---

[१] 'राजपुत्र, रमणीयो हेमकूटः, ...कर्तुमभ्यर्थनामिमाम्।'

– कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ – ६८०–८१

[२] संस्कृत – गद्यकार बाण– पृष्ठ ११८

पत्रलेखा :–

पत्रलेखा का वर्णन उस समय प्राप्त होता है जब चन्द्रापीड विद्याध्ययन के लिए अनन्तर राजकुल में प्रवेश करता है, उसकी माता विलासवती पत्रलेखा को काञ्चुकी के साथ सन्देश देकर भेजती है। कञ्चुकी पत्रलेखा को साथ लेकर आदरपूर्वक कहता है –

यह कुलूत के राजा की पुत्री पत्रलेखा नाम की कन्या, बाल्यावस्था में ही महाराज द्वारा पहले कुलूत देश की राजधानी को जीतकर, बन्दीजनों के साथ लाकर अन्तःपुर की सेविकाओं के बीच में रख दी गयी थी। यह अनाथ राजपुत्री है। इस कारण उत्पन्न स्नेह से युक्त मैने इतने समय पुत्री के समान पालन–पोषण किया है। यह इस समय आपकी पान की पिटारी को वहन करने वाली होने योग्य है, ऐसा समझकर मैने भेजा है। आयुष्मान तुमको इसके प्रति सेवकों जैसे सामान्य दृष्टिवाला नहीं होना चाहिए। बच्चों के समान इसका लाड् प्यार करना चाहिए।[1] ऐसा कहकर कैलास के चुप हो जाने पर, चन्द्रापीड ने कुलीन व्यक्ति के समान प्रणाम करने वाली पत्रलेखा को अपलक बहुत देर तक देखकर 'यथाज्ञापयत्यम्बा' ऐसा कहकर केचुकी को भेज दिया।

पत्रलेखा का सेवाभाव का वर्णन करते हुए बाणभट्ट ने लिखा है– *'पत्रलेखा तुततः प्रभृति दर्शनेनैव समुप्जात सेवारसा न दिवा न रात्रौ न सुप्तस्य ना सीनस्य नोत्थितस्य न भ्रमतो न राजकुलगतस्य छायेव राजसूनोः पार्श्वं मुमोच।*[2]

---

[1] कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ ३८६–६०

[2] कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ – ३६२

चन्द्रापीड पत्रलेखा को अत्यन्त विश्वसनीय मानता था। *'आत्महृदयादव्यतिरिक्तामिव चैनां सर्वविश्रम्भेष्वमन्यत।'*

चन्द्रापीड के राजतिलक के बाद दिग्विजय के लिए प्रस्थान करता है। पत्रलेखा भी चन्द्रापीड के साथ ही जाती है। पत्रलेखा चन्द्रापीड और कादम्बरी के प्रेम के लिए एक सूत्र या कड़ी की भूमिका निभाती है। जब कादम्बरी के पास से उज्जयिनी चला जा रहा था तो कादम्बरी पत्रलेखा को अपने पास रोक लेती है। केयूरक के साथ आकर पत्रलेखा ही कादम्बरी की विरह दशा का वर्णन चन्द्रापीड से करती है। इस प्रकार पत्रलेखा के चरित्र पर्यवेक्षण करने से ज्ञात होता है कि पत्रलेखा एक योग्य, शिष्ट, उच्च कुलोत्पन्न, विश्वासपात्र, मित्र अथवा सेविका है। प्रारम्भ में पत्रलेखा का चरित्र ऐसा प्रतीत होता है कि इसका कोई अपूर्व महत्व प्रदर्शित किया जायेगा किन्तु कथा के अन्दर पत्रलेखा के प्रति कवि की उपेक्षा ही प्राप्त होती है।

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी कहा है कि बाणभट्ट अन्धे हैं क्यों कि उन्होंने पत्रलेखा की उपेक्षा की है, उसके नारी हृदय की अवहेलना की है। वस्तुतः पत्रलेखा चन्द्रमा की पत्नी रोहिणी है। जो शापग्रस्त चन्द्रमा की सहायता के लिए पृथ्वी पर जन्म धारण करती है ।

कादम्बरी के पूछने पर चन्द्रापीड कहता है–

"प्रिये कुतोत्र सा। साहि खलु मददुःखदुःखिनी रोहिणी शप्त मामुपश्रुत्य कथं त्वमेकाकी मर्त्यलोकनिवासदुःखमनुभवसि' इत्यभिधाय निवार्य माणादि प्रथमतरमेव मच्चरणपिरचर्यायै मर्त्यलोके जन्माग्रहीत्।"[१]

---

[१] कादम्बरी उत्तरभागः पृष्ठ २६३

इस प्रकार हम देखते हैं कि पत्रलेखा का जितना चित्रण हुआ है वह अत्यन्त सुन्दर है। वह युवक चन्द्रापीड के साथ रहती है, परन्तु उसके मन में कोई विकार उत्पन्न नहीं होता । संयम की कितनी पराकाष्ठा है! सेवा का कैसा वैशध!

विलासवती :-

विलासवती उज्जयिनी के राजा तारापीड की पत्नी हैं। वह पुत्र प्राप्ति के लिए अनेक पुण्य कर्मों को सम्पादित करती हैं। क्योंकि उन्होंने सुना हे कि 'पुन्नाम्नो नरकात् त्रायत इति पुत्रः' इस महाभारत के वाक्य को सुन रखा था। वे चन्द्रापीड से अत्यन्त प्रेम करती हैं। विद्याध्ययन से वापस लौटने पर वे चन्द्रपीड को गले से लगा लेतीं हैं और कहती हैं – *'वत्स कठिन ह्रदयस्ते पिता येनेय माकृतिरीदृशीत्रिभुवन लालनीया क्लेशमतिमहात्तमियत्तं कालं लम्भिता। कथमपि सोदवानति दीर्धामिमां गुरुजनयन्त्रणाम्। अहो बालस्यापि सतः कठोरस्येव ते महद्धैर्यम्।'*[1]

इससे विलासवती का वात्सल्य स्पष्ट परिलक्षित होता है। वह आज्ञा कारिणी भार्या, स्नेहयुक्त माता तथा उदार स्वामिनी है।

कुलवर्धना :–

कुलवर्धना रानी विलासवती की प्रधान सेविका है वह राजा को रानी के गर्भवती होने एवं पुत्र जन्मोत्सव का समाचार देती है। उसका परिचय निम्न प्रकार से वर्णित है–

---

[1] कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ ३६५

"अथ तस्याः सर्व सेवकवर्ग प्रधान भूता, सदा राजकुल संवाद चतुरा, सदा चराजसं निकर्ष प्रगल्भा, सर्वमङ्गल कुशला कुलवर्धना नाम महत्तरिका।"[१]

पशु-पक्षी पात्र

इन्द्रायुध :-

इन्द्रायुध पुण्डरीक के मित्र कपिञ्जल का अवतार है। वह शापवश अश्व बनता है। उसमें उच्चैःश्रवा के लक्षण विद्यमान हैं। चन्द्रापीड उसे देखते ही समझ जाता है कि वह दिव्य है। वह तुरंग के समीप जाकर कहता है –

"महात्मन अश्व, तुम जो भी हो, तुम्हें प्रणाम है। आरोहण की धृष्टता को सर्वदा क्षमा करना। अज्ञात देवता भी अनुचित अपमान के भागी हो जाते हैं।"[२] इन्द्रायुध का वर्णन रसपरिशीलन के अन्तर्गत अद्भुत रस में वृहद् वर्णन किया गया है। यहाँ दुबारा करने पर पिष्टपेषण ही होगा।

सम्पूर्ण कथानक में इन्द्रायुध का वर्णन विस्मय उत्पन्न करने वाला है। वहाँ चन्द्रापीड को ऐसे स्थल पर पहुँचा देता है जहाँ से कथा का स्वरूप ही बदल जाता है। इन्द्रायुध का वर्णन कथा के विकास में नितान्त सराहनीय है।

वैशम्पायन शुक :-

वैशम्पायन शुक पुण्डरीक का ही अवतार है। वैशम्पायन चन्द्रापीड का अभिन्न मित्र था। महाश्वेता के शाप से ग्रस्त होकर सुख के रूप में अवतरित होता है। पूर्व जन्म के संस्कारवश वह ज्ञानवान् तथा बुद्धिमान है। लक्ष्मीरूपी

---

[१] कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ २५७

[२] कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ ३११–३१२

माता चाण्डाल के द्वारा शूद्रक के दरबार में लाने पर आर्यावृत्त में शूद्रक के विषय में वर्णन करके चमत्कृत कर देता है। रसपरिशीलन के अन्तर्गत करुणरस में इसके शुकरूप में जन्म का दारुण वर्णन है।

परिहास :—

परिहास कादम्बरी का तोता है। वह कालिन्दी नामक सारिका का पति है। वह चन्द्रापीड के व्यंग्योक्ति का मर्म समझता है। चन्द्रापीड के प्रति उसका उत्तर कादम्बरी के कथा—प्रवाह में सुनियोजित है। इनका वार्तालाप मनोरञ्जक है। परिहास बहुत चतुर है।

कालिन्दी :—

कालिन्दी परिहास नामक शुक की पत्नी है। वह परिहास पर एकाधिकार समझती है। वह परिहास को कादम्बरी की ताम्बूलकरङ्कवाहिनी तमालिका से एकान्त में बात करते देख लेती है। तो प्रणय कोप कर बैठती है। वह न तो परिहास के समीप आती है, न उससे बात करती है, न उसे छूती है, न उसे देखती है।

परिहास और कालिन्दी की योजना से कादम्बरी और चन्द्रापीड के मिलन के प्रसंग में सजीवता आ गयी। बाण ने दोनों का बड़ी सफलता से चित्रण किया है।

इसके अतिरिक्त कुमारपालित, शबरसेनापति, शुक का पिता इत्यादि अन्य सामान्य पात्रों की योजना की गयी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि बाण की कादम्बरी उनकी अन्य रचनाओं से पृथक है। शिल्पाचार्य बाण ने इस वाङ्मय प्रासाद को सुसङ्गत रीति से सजाया है। इसका कथा का प्रवाह पात्रों के माध्यम से लहरिया गति से आगे बढ़ता है। बाढ़ के सभी पात्र केवल एक ही व्यक्ति को प्रेम करते हैं। जो आज के परिप्रेक्ष्य में समाज के विघटन के लिए आदर्श उदाहरण है। कादम्बरी और महाश्वेता बिना किसी अपेक्षा के अपने प्रेमियों से निःस्वार्थ प्रेम करती हैं।प्रारम्भ में दोनों का प्रेम ब्राह्म रूप के आकर्षण पर आधारित यौन प्रेम हैं किन्तु क्रमशः जैसे–जैसे वह विरह रूपी अग्नि में तपता है। वैसे–वैसे स्वर्ण की भाँति उज्ज्वल हो जाता है और उसकी गम्भीरता बढ़ती जाती है। बाण ने ब्राह्म सौन्दर्य की निष्फलता भी दिखला दी है। किन्तु वही प्रेम विरह और दीर्घ तपस्या रूपी अग्नि में तपकर शुद्ध हो जाता है तो सफलता प्राप्त करता है।बाण की प्रेम–भावना बहुत कुछ कविकुल गुरु कालिदास जैसी ही है। कालिदास ने भी शकुन्तला के प्रथम यौन–प्रेम की असफलता दिखलाई है। किन्तु शकुन्तला दीर्घ विरह और तपस्या के बाद उसमें सफलता प्राप्त करती है। कालिदास की तरह बाण की प्रेम भावना भी पूर्व जन्मों के संस्कार पर आधारित है। इसी संस्कारवश वैशम्पायन महाश्वेता पर अनुरक्त होता है। दशकुमार चरित से तुलना करने पर हम पाते हैं कि उसका प्रेम वासनात्मक है। दण्डी नितान्त यर्थाथवादी हैं परन्तु बाण के प्रेम के सम्बन्ध में आदर्शवादिता उनकी अनन्यता से ही प्रकट होता है। डॉ० अमरनाथ पाण्डेय ने बाणभट्ट की प्रशस्ति में कहा है–

" कादम्बरी रसेनैव सौहित्यंजायते नृणाम् ।

बाणभट्ट वचो भङ्गी मनाहत्य कुतः सुखम् ।।

❑❑❑

पञ्चम अध्याय

कादम्बरी में प्रकृति-चित्रण

कादम्बरी में प्रकृति-चित्रण

भारतीय चिन्तन परम्परा ने मानव और प्रकृति को एक–दूसरे का सहचर माना है। प्रकृति वर्णन कवियों एवं लेखकोंका एक सहजगुण होता है। प्रकृति वर्णन के माध्यम से ही कवि की मौलिकता, अन्तःकरण के उद्‌गार एवम् उसकी कल्पना शक्ति का अभास पाठकों को अवश्य हो जाता है। कविता के द्वारा केवल ऐतिहासिक पद्य का वर्णन करने के द्वारा ही कवि को साहित्य जगत मे अतुलनीय यश का लाभ नहीं प्राप्त होता बल्कि इतिवृत्त के अतिरिक्त, उसे अन्य साहित्यिक कलाओं का भी प्रदर्शन करना पड़ना है । जैसा कि ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धनाचार्य ने कहा है कि–

'न हि कवेरितिवृत्त मात्रनिर्वहेणात्मपदलाभः, इतिहासादेरेवेतसिद्धेः' इत्यादि।

– सा०द०परि० १, पृ० १६

अर्थात् कवि का महान्पद् काव्य के कथा शरीर के निर्माण पर किसी को नहीं मिला करता वह तो वस्तुतः रसानुगुण काव्य प्रबन्ध–निर्माण पर मिला करता है क्योंकि कथा–शरीर तो इतिहास आदि में बना बनाया रहता है।

निष्कर्षः कहा जा सकता है कि साहित्यिक उत्कर्ष को बढ़ाने वाली जितनी भी कलाएं होती हैं, उनमें प्रकृति वर्णन का भी एक विशिष्ट स्थान होता है। अतएव कवियों ने प्रातः, सन्ध्या, रात्रि, सूर्य, चन्द्रमा, सरोवर................ इत्यादि प्राकृतिक वर्णनों के माध्यम से अपनी–अपनी कृतियों को विभूषित किया है।

संस्कृतवाङ्मय के वाल्मीकि, कालिदास, बाणभट्ट, माघ आदि कवियों ने प्रकृति के माध्यम से मानव को नैतिकता की शिक्षा का प्रदर्शन करते हुए कहा है कि –

अनन्तरत्न प्रभवस्य यस्य, हिम न सौभाग्य विलोपि जातम्।

एकोहि दोषो गुण सन्निपाते, निमज्जतीन्दो किरणेविष्ववांकः।।

— कुमारसम्भव, सर्ग—१, श्लोक—३

— कालिदास, एकादश संस्करण, निर्णयसागर, मुद्रालय, बम्बई, सन् १६३० ई०

बाणभट्ट का प्रकृति वर्णन साहित्यिक उत्कर्ष को उत्पन्न करने में अतिशय सहायक सिद्ध हो चुका है। बाण प्रकृति के परम प्रेमी थे। अनेक स्थानों का परिभ्रमण करने के कारण वह प्रकृति के रंगीन, मधुर, मृदु, रूद्र आदि विभिन्न स्वरूपों से भलिभँाति परिचित थे। वृक्ष, जंगल, मंगल, लताएं, सरोवर, उनमें रहने वाले बतख, कमल, फल—फूल, आश्रम,तत्रस्थ प्राणिजगत, साधु, पवित्र अग्नि, सुनहने प्रातः सायं के रंगीन चित्र, ऋतुओं का वातावरण पर परिवर्तित स्वरूप, पशु—पक्षी आदि कवि के ह्रदय को स्पर्श करते हैं, जिनका उन्होंने विशद वर्णन प्रस्तुत किया है।

बाण के प्रकृति प्रेम के परिचायक प्रकृति के मनोहर और भयावही दोनों प्रकार के चित्र पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं। इसके उदाहरण विन्ध्याटवी के भयावह एवं कठोर वर्णन तथा जाबालि आश्रम एवं अच्छोद सरोवर के पवित्र एवं रमणीय वर्णन है। आपने प्रकृति के वर्णनों में उपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, परिसंख्या आदि अलंकारो का प्रचुरता से प्रयोग किया है।

पूर्णोपमा अलंकार के माध्यम से विन्ध्याटवी का चित्र निम्नस्थ पंक्तियों में दृष्टव्य है—

"क्वचित् प्रलयवेलेव महावराह दृष्टासमुत्खातधरणि मण्डला, क्वचिद्रदशमुख नगरीव चटुलवानरवृन्द भुज्यमानतुङ्ग शाखाकुला, क्वचिदचिनिर्वृत्त विवाह भूमिरिव हरित कुशसमित्कुसुमं समीपलाशशोभिता, क्वचिदुन्मत्तमृगपतिनादभीतेवकण्टकिता।।'

यह विन्ध्याटवी कहीं पर प्रलयकाल के समान प्रतीत होती थी, क्यों कि जिस प्रलय काल में बाराहवतार (विष्णु) ने जल में डूबी हुई पृथिवी का अपनी दृष्टा के द्वारा उद्धार करक बाहर निकाला था, उसी प्रकार यहाँ के बड़े जंगली सूअरों ने अपनी दाढ़ी में (यत्र–तत्र) पृथिवी को खोद डाला था और कहीं रावण की नगरी लंका के समान प्रतीत होती थी, जिस प्रकार लंका के ऊँचे विशाल भवनों को वानरों ने नष्ट कर डाला था उसी प्रकार यहाँ वानरों ने उँचे विशाल 'शाल' के वृक्षों को तोड़ डाला था, कहीं पर तो ऐसी प्रतीत होती थी जैसे अभी विवाह कार्य सम्पन्न हुआ जिस प्रकार विवाह भूमि हरे–हरे कुश, समिधा, पुष्, शमी(लता) और पत्तों (आम, गूलर, पंच पल्लवों) से सुशोभित होती है उसी प्रकार यहाँ भी कुश, समिधा, शमी लता के पत्तों से सुशोभित थी, कहीं पर मन्दोन्मन्त सिंहों के गर्जनों से भयावह होने के कारणकण्टकित प्रतीत हो रही थी।

बाणभट्ट के प्रकृति चित्रण एवं उदान्त चित्र जाबालि ऋषि के आश्रम के वर्णन से द्योतित होता है–

उपचार्य मालातितिथिवर्गम्, पूज्यमान पितृदैवतम्, अर्च्यमान हरि हर पितामहम्, उपदिश्यमान श्राद्ध कल्पम्, व्याख्यायमान गद्यविद्यम, आलोच्यना धर्मशास्त्रम्, वाच्यायमानविविध पुस्तकम्, विचार्यमाण सफल शास्त्रार्धम्, आरम्भ्यमाण पर्णशालम्। ....यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु, मुखरागः शुकेषु न कोपेषु तीक्ष्णता कुशाग्रेषु न स्वभावेषु।

इस प्रकार यदि बाण ने विन्ध्याटकी एवं शबर सेना जैसे वर्णनों का वर्णन करना प्रारम्भ किया तो ऐसा चित्र प्रस्तुत किया कि जिसके पढ़ने से पाठक के सामने साक्षात् भय का चित्र उपस्थित हो जाये तो दूसरी तरफ जाबालि आश्रम और आच्छोद सरोवर की पवित्रता का वर्णन करने से पाठक के हृदय में एक

अलग प्रकार की अनुभूति होती है। इन सब विशेषताओं के होते हुए भी **बाणभट्ट** ने प्रकृतिचित्रण **कालिदास** के प्रकृति चित्रणों के समकक्ष नही है इसका मुख्य कारण परिलक्षित होता है बाणभट्ट की अलंकार प्रियता **वाल्मीकि** और **कालिदास** के प्रकृति चित्रणों में स्वाभाविक उपलब्ध होती है उसका बाण में अभाव है। अतः यदि **बाल्मीकि, व्यास, कालिदास** आदि के प्रकृति चित्रणों को वन में स्वयं उत्पन्न लताओं के रमणीय कुञ्ज कहें और बाण के प्रकृति–चित्रणों को उपवन में माली के द्वारा सिंचन करके कैंची से काट–छांटकर पुष्पों के गुच्छों से सुसज्जित लता–कुञ्ज तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। बाणभट्ट अलंकारों के चक्कर में पड़कर प्रकृति की स्वाभाविकता विस्मरण कर देते हैं परन्तु उनका समग्र चित्रण ऐसा नहीं है पहले वे प्रकृति का स्वाभविक चित्रण करते है और फिर आलंकारिता के फेर में पड़ते हैं। डॉ० भोलाशंकर व्यास ने लिखा है– *"सुबन्धु की भांति बाण इन कलाबाजियों में सदा नही फँसते और वे पहले वर्ण्य विषय को पूरी ईमानदारी के साथ वर्णित कर देते हैं, तब श्लेष की जटिल पगडंडी का आश्रय लेते हैं"*

– संस्कृत कवि दर्शन पृ० ५११

बाणभट्ट ने जाबालि आश्रम के हृदयावर्जक वर्णन के अतिरिक्त प्रातःकाल, सन्ध्याकाल आदि प्रकृति के रमणीय चित्रों का चित्रण किया है। अधोलिखित पंक्तियों में प्रातःकाल का रमणीय चित्र दर्शनीय है–

"एकादा तु प्रभात–सन्ध्यारागलोहिते गगनतले, कमलिनी मधुरक्त पक्षपुटे, वृद्ध हंस इव मन्दाकिनीपुलिनादपरजलनिधितटमवतरति चन्द्रमसि, परिणततरङ्कु, रोमपाण्डुनि ब्रजति विशाल तामा शाचक्रवाले.........सन्ध्यामुपासितु मुत्तराशाक्वम्बिनी मानससरस्वतीरमिवातरति सप्तर्षिमण्डले।"

इसी प्रकार चन्द्रोदय के अनन्तर छिटकी हुई चन्द्रिका की शोभा निम्नप्रकार दर्शनीय है–

"गंगा सागरानापूरयन्ती हंसधवलाधरण्यामापतज्जयोत्स्ना। हिमकरसर– सिविकचपुण्डरीकसिते, चन्द्रिकाजलपानलोभादवतीर्णो निश्चलमर्तिरमृतपङ्क लग्न इवादृश्यत हरिणः।"

इसी प्रकार सूर्योदय के वर्णन में अनुकरणनात्मक सौन्दर्य प्रेक्षणीय है–

"एकदा तु नतिदूरादिते नवनलिनदल सम्पुटिभिदिकिञ्चिन्मुक्त पाटलिग्निभगवति सहस्रमरीचिमालिनि।"

बाण ने उत्प्रेक्षा का सहारा लेकर जो प्रकृति चित्रण किया है उसका सशक्त चमत्कार काव्य–सौन्दर्य का द्विगुणित कर देता है। जैसे प्रातःकाल होने पर प्रकाश बहुत दूर तक फैला हुआ दिखाई पड़ता है, जो स्वाभाविक भी है, किन्तु कवि की कल्पना विचित्र है मानो दिशायें ही फैल गई हैं। निम्नस्थ पंक्तियों में सन्ध्याकाल का प्रकृति चित्रण संस्कृत गद्य साहित्य की अनुपम निधि है–

"क्वापि विहृत्य दिवसावसाने लोहिततारका तपोवनधेनुरिव कपिला परिवर्तमाना सन्ध्या तपोधनैरदृश्यत। अचिरप्रोषिते सवितरि शोक विधुरा कमलमुकुलकमण्डलु धारिणी हंससितदुकूल परिधानामृणालवलययज्ञोपवितिनी मधुकरमण्डलाक्षवलयमुद्वहन्ती कमलिनी दिनपतिसमागमव्रत मिवाचरत्।"

प्रस्तुत गद्यांश में जहाँ सन्धया का मनोहर चित्र–चित्रित किया है, वहाँ इसमे वर्णित अप्रस्तुत वर्णन भी आश्रम के जीवन और उसके वातावरण के लिए बहुत उपयुक्त बन गये हैं। **डॉ० भोलाशंकर व्यास** ने इस सन्ध्या–वर्णन में

कमलिनी को विरहिणी नायिका मानकर सूर्य रूपी नायक के समागम के लिए व्रत करती हुई तपस्विनी बनाकर वर्णन करने में "नाटकीय पताकास्थानक' या 'ड्रेमेटिक आइसी' होने की सम्भावना प्रगट की है। जिसके द्वारा बाणभट्ट ने **महाश्वेता** के भविष्य की घटना का संकेत किया है।।

बाण की रचना में प्रकृति कथावस्तु का अंग है, अतएव वह कथासूत्र में संयोजित होकर कथा की विभिन्न स्थितियों का निखरा चित्र उपस्थित करती है। यदि प्रकृति–वर्णन की योजना न की जाए, तो कथा के अंशों की उद्भावना न हो सके। बाण इसे भली–भाँति हृदंयगम करते हैं अतः पात्र तथा घटना के स्वरूप को पूर्णतः अंकित करने के लिए प्रकृति के परिवेश की कल्पना करते हैं। प्रकृति की सीमा के अन्तर्गत विद्यमान प्रत्येक स्थिति के अंगो–उपांगो की ऐसी आकर्षण विच्छित्ति विनिविष्ट की जाती है, जिसके द्वारा कथा का महनीय कक्ष उद्घाटित होने लगता है। बाण की रचना में प्रकृति भी मानव की अनुभूतियो को अभिव्यक्त करती देखी जाती है। **महाश्वेता**– वृत्तान्त श्रवण के समकाल ही सूर्य अस्त हो जाता है मानो उसके वृत्तान्त से शोकयुक्त होकर वह अपने समस्त दिवस व्यापार को समेट लेता है।

इसी प्रकार बाण की प्रकृति कालिदास की प्रकृति की भांति मानव जीवन से प्रभावित तथा समुदवेल्लित है। पञ्चवटी की प्रकृति भगवान राम के वियोग में विषाद मग्न है। *'आधुनापि यत्र जलधर समये गम्भीरमभिनव जलधरनिवहनिनादमाकर्ण्य भगवतो रामस्य त्रिभुवनविवरवयापिनश्चापघोषस्य*

स्मरन्तो न गृहणन्ति शष्पकवलमजस्रमश्रुजललुलितदृष्टयो वीक्ष्य शून्यादश दिशो जरार्जरित विषाणकोटयो जानकी सवंर्धिता जीर्णमृगाः।[1]

बाण के रमणीय प्रकृति चित्रणों में आलम्बन रूप का ही चित्रण प्राप्त होता है। यह नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि बाण की रचना में प्रकृति के उद्दीपन चित्रों का भी चित्रण–सरस रूप में प्राप्त होता है। परन्तु प्रकृति के उद्दीपन चित्रों के चित्रण अल्पमात्रा में प्रापत होते हैं। जैसे महाश्वेता स्नाान करने के लिए सरोवर पर जाती है। उस समय प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन किया गया है–[२]

'उस समय नवनलिन् वन में विकसित हो रहे थे। आम की कोमल कलिकाएं कामुकों का उत्कण्ठित कर रही थी। कोमल मलय–पवन के आगमन से अनंग की ध्वजाओं के वस्त्र तरंगित हो रहे थे। मदमत्त कामिनियों के गडूष–मद्य को प्राप्त करके बकुल पुलकित हो रहे थे। भ्रमर–समूह रूपी कलंक से कालेयक के पुष्प और कुऽमल काले हो रहे थे। अशोक के वृक्षों पर ताडन करने से सुन्दर मणिमय नुपुरों की झंकार खेल रही थी। खिले हुए मुकुलों के सौरभ के कारण पुञ्जित हुए भ्रमरी के मधुर रव से सहकार सुन्दर लग रहे थे। अविरल पुष्प–परागरूपी सिकतातट से धरातल धवलित हो रहा था। मधुमद से विह्वल मधुकरियों से लतादोलाएं आन्दोलित हो रही थी। उत्फुल्ल पल्लवों वाली लवली लताओं में निलीन मत्त कोयलों द्वारा उल्लासित मधुकणों से प्रबल दुर्दिन हो रहा था।

---

[१] कादम्बरी पूर्वभागः, पृष्ठ ७६–८०

[२] कादम्बरी प्रथमो भागः पृष्ठ ५३४–५३५

इसी प्रकार पुण्डरीक के दर्शन से उत्पन्न महाश्वेता की व्याकुलता उस समय और अधिक बढ़ जाता है जब चन्द्रोदय का दर्शन करती है। यह चन्द्रोदय पुण्डरीक के विरह में ऐसा लग रहा था जैसे स्वर से सन्तप्त व्यक्ति पर अंगारों की वर्षा हो रही हो, अथवा ठण्ड से व्यथित व्यक्ति पर हिमखण्डों की वर्षा हो रही हो। अथवा जहरीले फोड़े से उत्पन्न जलन से पीड़ित एवं मूर्च्छित व्यक्ति को सांप काट ले, जैसे कि निम्नस्थ पंक्ति में देखा जा सकता है–

'अस्यचोद्गममिव सदाहज्वरग्रस्तस्याङ्गारवर्षः, शीतार्तस्य तुषारपातः विषस्फोट मूर्च्छितस्य कृष्णसर्पदंशः।'[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बाणभट्ट का प्रकृति–चित्रण संजीव, अलंकृत, विस्तृत और वर्ण्य विषय के अनुकूल शब्दावली से सुसज्जित है। जो बाणभट्ट की सूक्ष्म निरीक्षण–शक्ति एवं अद्भुत प्रतिभा का परिचायक है। बाण की सूक्ष्म दृष्टि प्रकृति के रमणीय और भयंकर दोनों पक्षों पर समान रूप से पड़ी है। बाण भट्ट ने प्रकृति के आलम्बन तथा उद्दीपन दोनों रूपों का चित्रण किया है। यह निश्चित है कि बाणभट्ट प्रकृति–चित्रण में बेजोड़ और अद्वितीय कलाकार हैं।

कवि बाणभट्ट ने अप्रस्तुत रूप में भी प्रकृति का चित्रण किया है। इस प्रकार के चित्रण में प्रकृति के पदार्थ उपमान–रूप में आते हैं। जिस समय चन्द्रापीड विद्याध्ययन के बाद नगरी में प्रविष्ट होता है, उस समय ललनाएं उसे देखने के लिए दौड़ती है। कवि ने इसका बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है–

---

[1] कादम्बरी संस्करण, पृष्ठ ६१२–६१३।

'कुछ बायें हाथ में दर्पण लिए हुए थी, वे उन पौर्णमासी रात्रियों की भांति थी, जिनमें चन्द्रमा का पूर्ण मण्डल प्रकाशित होता है। कुछ जिन्होंने गीले अलक्तक रस से चरणपुटों को लाल किया था । अतः जो कमल द्वारा पी हुई प्रातःकालीन धूप से युक्त नलिनियों कमल के पौधों सी प्रतीति होती थी, कुछ जिनके चरण–पल्लव घबराहट में खिसकी हुई मेखला कलाप से बन्ध गये थे, तथा श्रृङ्खला के बंधन के कारण मन्द–मन्द चलने वाली हथनियों सी प्रतीति होती थीं, कुछ जिन्होंने इन्द्र धनुष के समान रंग वाले सुन्दर वस्त्र धारण कर रखे थे, इन्द्र–धनुष के रंगों से मनोहर आकाश को धारण करने वाली वर्षाकालीन दिवस की शोभा सी प्रतीति होती थी।'[1]

उपर्युक्त बाण के प्रकृति–चित्रण सम्बन्धी अध्ययन को हम छोटे से अध्याय में नहीं समेट सकते इसकी वृहत्ता के लिए अपूर्ण ग्रन्थ लिखना पड़ेगा। उदाहरणार्थ सामान्य कवि लाल रंग को लाल रंग कहेगा। परन्तु बाणभट्ट के वर्णन में अनेक प्रकार के लाल रंग है। उनका कोई लाल रंग है लाख के समान, कोई लाल रंग कबूतर के पैर के समान, कोई लाल रंग खूनभरे सिंह के नख के समान है। प्रकृति–चित्रण में इन्होंने इसी शैली का प्रयोग किया है। रविन्द्रनाथ टैगोर ने बाण के विषय में सत्य ही कहा है–

"इस प्रकार वर्ण सौन्दर्य के विकास की क्षमता संस्कृत का दूसरा कोई कवि नहीं दिखा सका।"[2]

---

[1] काश्चिद्वामकरतलगत दर्पणाः स्फुरितसकलरजनिकर मण्डला इव पौर्णमासी जन्यः, काश्चिद्रालक्तकरसपाटलित चरणपुटाः कमलपरिपीत बालातया इव नलिन्यः, ... इवेन्द्रायुध रागरूचिराम्बरधारिण्यः।

– कादम्बरी – डॉ० श्रीनिवास शास्त्री पृष्ठ ३२०–३२१

[2] प्राचीन साहित्य, पृष्ठ ६२

बाण की रचना में इतना चमत्कार है कि उनकी भारती वीणा की सुमधुर तान का हरण कर लेती है गंगादेवी ने लिखा है–

वाणीपाणिपरामृष्ट वीणानिक्वाणहारिणीम्

भावयन्तिा कथं वान्ये भट्टवाणस्य भारतीयम्।।

षष्ठ अध्याय

कादम्बरी में रस-परिशीलन

कादम्बरी में रसपरिशीलन

जैसे आत्मकथा के अभाव में शरीर महत्त्वहीन हो जाता है उसी प्रकार साहित्यिकों ने रस को काव्यात्मा के रूप में स्वीकारी किया है। रस के बिना काव्य भी निष्प्रभ हो जाता है।

'कादम्बकरी गद्य का साहित्यिक मूल्ङ्काकन' अनुसंधेय शोध विषय में कादम्बरी में रसपरिशीलन अध्याय के अन्तर्गत रस के स्वरूप एवम् उसकी उपयोगिता का उल्लेख करने के अनन्तर उसके भेदों को निरूपित किया जायेगा।

अमरकोश के अनुसार 'रस' शब्द श्रृंगारादि समस्त रस, विष, वीर्य, गुण, राग और द्रव के अर्थ में विविध प्रकार से प्रयुक्त होता है।[१] किन्तु काव्यजगत् में रस शब्द का प्रयोग मुख्यतः श्रृंगारादि रस और रस के अन्तर्गत समाविष्ट किये जाने वाले भावादि के लिए किया जाता है। साहित्यिक परम्परा के अन्तर्गत प्रयुक्त होने वाले 'रस' तत्व के ऐतिहासिक पक्ष की ओर यदि हम दृष्टिपात् करें, तो इस तथ्य से अवगत होंगे कि प्रागैतिहासिक काल में भी 'रस' का पर्यालोचन किया गया था तथा विविध चिन्तनों एवम् विवेचनाओं के अनन्तर परमानन्द का अनुभव किये जाने के परिणामस्वरूप उसे 'परमपद' पर प्रतिष्ठापित किया गया था। इसी उदात्त भावना से प्रेरित होकर तैत्तिरीय उपनिषद में आनन्द एवम् रस को पर्याय के रूप में स्वीकर किया गया है।

---

[१] "श्रृङ्गारादौ विषे वीर्ये गुणे रागे द्रवे रसः।"

— अमरकोश, काण्ड ३, श्लोक २२६, पृष्ठ ६०

इसके साथ ही लक्षण ग्रन्थों का प्रलयन करने वाले काव्यानुरागी समीक्षकों द्वारा इस युक्ति का भी निरूपण किया जाता है वेदान्तादिदर्शनों की तत्त्वचिन्तन प्रक्रिया एवम् समाधि आदि के माध्यम से साधक ब्रह्म का साक्षात्कार करके जिस परमानन्द का अनुभव करता है, उसका अनुभव काव्यानुरागियों को रसात्मक काव्य का अनुशीलन करने से तत्काल ही होने लगता है। रस तथ्य की परिपुष्टि के लिए, काव्य के प्रमुख प्रयोजन का प्रतिपादन करते समय काव्यप्रकाशकार द्वारा अभिव्यक्त की गयी अद्योलिखित समीक्षा पर दृष्टिपात् करना नितान्त अपेक्षित है–

"सकल प्रयोजन मौलिभूतं समनन्तरमेव रसास्वादन समुद्भूतं विगलित वेद्यान्तरमानन्दं।"

आचार्य **मम्मट** की ही भांति पाश्चात्य काव्यालोचक भी काव्य के प्रयोजनों में रसानुभव को ही मुख्य प्रयोजन मानते हैं–

'Delight is the chief if not the only and of Poetry : Instruction can be admitted but in the second place, for poesy only instructs as it delights.'[1]

- (जान ड्राइडन)

अर्थात् आनन्द ही काव्य का परम प्रयोजन है, भले ही इसे एकमात्र प्रयोजन माने या न माने। उपदेश का स्थान तो आनन्द के बाद आता है क्यों काव्य जो उपदेश देता है वह सीधे नहीं अपितु रसास्वाद करा कर देता है।

---

[1] काव्यप्रकाश प्रथम उल्लास पृष्ठ ७

उपनिषद् कालान्तर सर्वप्रथम काव्य जगत् में रस के महत्व का प्रतिपादन और उसकी निष्पत्ति की समीक्षा आचार्य **भरत** ने अपने **नाट्यशास्त्र** में किया। उनके कथन है कि "काव्य का सर्वोपरि चमत्कार पदार्थ रस ही है।"

"नहि रसादृते कश्चित् पदार्थः प्रवर्तते।"[1]

रस की निष्पति विषयक परिभाषा आचार्य भरत मुनि के रस–सूत्र के बिना अधूरा है– *'विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्रसनिष्पत्तिरिति।'*[2]

अर्थात् स्थायी भाव–विभाव, अनुभाव एवम् व्यभिचारियों के संयोग से रसत्व को प्राप्त होते हैं।

आचार्य भरत की इसी रस प्रक्रिया– समीक्षा का अनुसंधान काव्यानुशासनकार आचार्य हेमचन्द्र ने इस व्यक्ति में किया है–

'विभावानुभाव व्यभिचारिभिरभिव्यक्तः स्थायीभावो रसः।'[3]

–काव्यानुशासन (२–१)

इसके साथ ही अग्निपुराण द्वारा प्रतिपादित निम्नांकित परिभाषा को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वह **भरतमुनि** के नाट्यशास्त्र की भांति काव्याचार्यो की रसविषयक समालोचना का प्रथम सोपान होने के कारण विशेष दृष्टव्य है–

" वेदान्तसार में जिस अक्षर (अविनाशी), सनातन, अजन्मा और व्यापक परंब्रह्म परमेश्वर को अद्वितीय, चैतन्यस्वरूप, और ज्योतिर्मय करते हैं, उसका सहज

---

[1] चन्द्रलोक, डॉ० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी की प्रस्तावना पृ० १९

[2] काव्यप्रकाश चतुर्थ उल्लास पृष्ठ ६६

[3] काव्यप्रकाश चतुर्थ उल्लास पृष्ठ ६६

(स्वरूपभूत) आनन्द कभी–कभी व्यंजित होता है, इस आनन्द की अभिव्यक्ति का ही 'चैतन्य', 'चमत्कार' और 'रस' के नाम से वर्णन किया जाता है।[1]

इसके अतिरिक्त, उसी अध्याय में रस के महत्व का प्रतिपादन करते हुए यह भी कहा गया है कि – 'जैसे बिना त्याग के धन की शोभा नहीं होती, वैसे ही रसहीन वाणी की भी शोभा नहीं होती है।'[2]

वेदान्तसूत्रकार वेदव्यास के समक्ष अवश्य ही 'रसो वैसः' यह उपनिषद् वाणी भी रही है। अतएव स्वतः स्पष्ट है कि उक्त वाणी के प्रति श्रद्धाधिक्य होने के कारण उन्होंने ब्रह्म के सहज आनन्द की अभिव्यक्ति को ही 'चैतन्य', 'चमत्कार' और 'रस' नाम दिया है। रस को ब्रह्म चैतन्य से अभिन्न बताकर महर्षि व्यास ने अपने विमल वैदुष्य और विपुल बुद्धिमत्ता के माध्यम से साहित्य के धरातल पर जो बीजारोपण किया, अद्यावधि प्रायः समस्त परवर्ती काव्याचार्य एवम् समालोचक उसी का पल्लवन एवम्परिष्कार करने में लगे रहे तथा काव्य के अन्तकरण में निनास करने वाले रस की उपयोगिता पर विशेष बल दिये।

भोजदेव ने रस के स्वरूप एवम् उसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए कहा कि

"रसोऽभिमानोऽहंकारः श्रृंगार इति गीयते।
योऽर्थस्यस्यान्वयात्कव्यं कमनीयत्वमश्नुते।।"[3]

---

[1] अग्निपुराणांक (अग्नि पुराण के आधार पर गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित) अध्याय ३३६, श्लोक १–२, पृष्ठ–५७७

[2] अग्निपुराणांक (अग्नि पुराण के आधार पर गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित) अध्याय ३३६, श्लोक १–२, पृष्ठ–५७७

[3] सरस्वती कण्ठाभरण, परि० ५, पृष्ठ–३३५

अर्थात "रस, अभिमान, अहंकार तथा श्रृंगार इन नामों से गाया जाता है। उसके योग से काव्य कमनीयता को प्राप्त करता है। प्रसिद्ध लक्षण ग्रन्थकार मम्मटाचार्य ने रस के स्वरूप का निर्धारण करते हुए इस प्रकार कहा है–

" कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणियानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्योः।।
विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
व्यक्त स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः।।[१]

तात्पर्यतः "लोक में रत्यादि रूप स्थायीभाव के जो कारण, और सहकारी होते हैं, वे यदि नाट्य या काव्य में प्रयुक्त होते हैं, तो क्रमशः विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव कहलाते हैं तथा इन विभावादि से व्यक्त वह रत्यादि रूप स्थायी भाव रस कहलाता है।

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने उपर्युक्त परिभाषाओं एवम् रसविषयक धारणाओं का अनुशीलन और मूल्याङ्कन करने के उपरान्त काव्य को परिभाषित करते हुए रस की अपरिहार्यता का प्रतिपादन इस प्रकार किया–

'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।'[२]

इसके अतिरिक्त, उन्होंने रसानुभवकाल में उसके स्वरूप का आत्मसाक्षात्कार जैसा आनन्दात्मक बताया है। विश्वनाथ का कथन है कि –"यह एक ऐसा अनुभव है, जिसके साथ अन्य किसी भी ज्ञेय वस्तु का स्पर्श नहीं हो

---

[१] काव्यप्रकाश चतुर्थ उल्लास कारिका २७–२८ पृष्ठ ६५
[२] साहित्यदर्पण प्रथमः परिचछेदः पृष्ठ–२३

सकता। यदि इसे किसी भी अनुभव के समान बताया जा सके, तो वह अनुभव एक मात्र आत्म साक्षात्कार ही हो सकता है।''

'वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वाद सहोदरः।'[1]

इस प्रकार उपर्युक्त उपनिषद्, पुराण, नाट्यशास्त्र एवम् परवर्ती काव्यालोचकों की रसविषयक धारणाओं का पर्यालोचन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि काव्य में रमणीयता का दर्शन करने के लिए अलंकार आदि समस्त साधनों की अपेक्षा रस की विद्यमानता नितान्त अपेक्षित है। साहित्यिकों ने रसात्मक वाक्य उस वाक्य को माना है जिसका आत्मतत्त्व 'रस' हुआ करता है। अथवा जिसे जीवित –जागृत रखने वाला एकमात्र तत्वरस है। जैसे आत्मतत्व के अभाव में शरीर निष्प्राण हो जाता है वैसे ही रस के बिना कोई भी वाक्य काव्य नहीं हो सकता यह काव्य की आत्मा है।

सम्प्रति, काव्य में रस के स्वरूप एवम् उसकी उपयोगिता का उल्लेख करने के अनन्तर उसके भेदों को निरूपित किया जाएगा।

साहित्यदर्पणकार श्री विश्वनाथ में रस के विभेदों का निरूपा इस प्रकार किया है–

श्रृंगार हास्य करूणरौद्र वीर भयानकाः।
वीभत्सोऽद्भुत इत्यष्टौ रसाः शान्तस्तथा मतः।।[2]

---

[1] साहित्यदर्पण तृतीयः परिचछेदः का०–२ पृष्ठ–१०५

[2] साहित्यदर्पण प्रथमः परिचछेदः पृष्ठ–२३

यहाँ पर सभी रसों के पूर्वापर क्रम का निर्धारण रस की पुरुषार्थ चतुष्टय के प्रति उपयोगिता को ध्यान में रखकर किया जाता है। इस तथ्य के समर्थन में हम काव्यानुशासन की निम्नांकित पंक्तियों को प्रस्तुत करते हैं–

अत्र कामस्य सकल जाति सुलभ तयाऽत्यन्त परिचत्वेन सर्वान् प्रति हृदयेतिपूर्व श्रृंगारः। तदनु गामी च हास्यः। निरपेक्ष भावत्वात्त द्विपरीतस्ततः करुणः। ततस्तन्निमित्तमर्थप्रधानो रौद्रः। ततः कामार्थ यो धर्ममूलत्वाद्धर्मप्रधानो वीरः। तस्य भीताभय प्रदान सारत्वादनन्तरं भयानकः। तद्विभाव साधारण्य संभावनात्ततो बीभत्सः। इतीय द्वीरेणाक्षिप्तम्। वीरस्य पर्यन्तेऽद्भुतः फलमित्यनन्तरं तदुपादानम्। ततस्त्रिवर्गात्मकप्रवृत्ति धर्म विपरीत निवृत्तिधर्मात्मको मोक्षफलः शान्तः। एते नवैव परस्परासङ्कीर्णा रसाः।[१]

श्रृंगार :–

श्रृङ्गार रस अपनी व्यापकता एवम् प्रभाव के कारण साहित्यिक परम्परा के अन्तर्गत प्रमुख रस के रूप में अंगीकृत किया जाता है। इसके स्थायी भाव रति की स्थिति मनुष्य तथा मनुष्येतर प्राणियों में भी होती है। यही सृष्टि का कारण है। अपनी सर्वजन सुलभता, व्यापकता एवम् स्थायित्व के कारण श्रृङ्गार को रसराज होने का गौरव प्राप्त है। श्रृङ्गार रस का लक्षण आचार्य विश्वनाथ के शब्दों में इस प्रकार प्रतिपादित किया गया है –

श्रृङ्गं हि मन्मथाद्भेदस्तदागमनहेतुकः।

उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः श्रृङ्गार इष्यतेः।।

परोढां वर्जयित्वा तु वेश्यां चाननुरागिणीम्।

---

[१] डॉ० सत्यव्रत सिंह का सविमर्श "शशिकला" हिन्दी व्याख्योपेत सा०द०, पृ० २३०

आलम्बनं नायिकाः स्युर्दक्षिणाद्याश्च नायकाः।।

चन्द्र चन्दनरोलम्बरूताद्युद्दीपनं मतम्।

भ्रूविक्षेपकटाक्षादिरनुभावः प्रकीर्तितः।।

त्यक्त्वौग्रथमरणालस्यजुगुप्साव्यभिचारिणः।

स्यायिभावो रतिः श्यामवर्णोऽयं विष्णुदैवतः।।[1]

अर्थात् कामदेव के उद्‌भेद (अंकुरित होने) को श्रृङ्ग कहते हैं। उसकी उत्पत्ति के कारण, अधिकांश उत्तम प्रकृति से युक्त रस श्रृङ्गार कहा जाता है। पर स्त्री या अनुराग शून्य वेश्या को छोड़कर अन्य नायिकायें तथा दक्षिण आदि नायक इस रस के आलम्बन विभाव माने जाते हैं। चन्द्रमा, चन्दन, भ्रमर आदि इसके उद्‌दीयन विभाव होते हैं। उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा को छोड़कर अन्य निवेदादि इसके संचारी भाव होते हैं। इसका स्थायी भाव रति है और वर्ण श्याम है एवम् इसके अभिमानी देवता विष्णु भगवान है।

श्रृङ्गार दो प्रकार का होता है–

१. विप्रलम्भ २. सम्भोग या संयोग

बाणभट्‌ट द्वारा रचित कादम्बरी श्रृङ्गार रस प्रधान रचना है। कादम्बरी मानव ह्रदय की मूक प्रणय गाथा है जो कि वेदना तथा करूणा से अनुप्राणित होकर गर्मस्थल का भेदन कर देती है। **डॉ० डे** ने लिखा है – "बाण के रोमांस का मुख्य मूल्य कथा–वर्णन, चरित्र–चित्रण एवं आलंकारिक योजना के उपस्थापन में नहीं है। अपितु कवित्व और रस की अभिव्यंजना में है।"[2]

---

[1] साहित्यदर्पण परिच्छेद–३, कारिका १८३, ८४, ८५ पृ० २३०

[2] कादम्बरी कथामुखम् भूमिका पृष्ठ–४५

कादम्बरी के कथानक में श्रृङ्गार के दोनों पक्षों की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। इसमें दोनों भेदों का चित्रण प्राप्त होता है। कादम्बरी में विप्रलम्भ का विशेष रूप से वर्णन किया गया है । अमरनाथ पाण्डेय ने अपनी रचना 'महाकवि श्री बालभट्ट गौरवम्' में लिखा है–

श्रृङ्गार प्रमुखोऽलम्भीतरे गौणत्व माश्रिताः।

विप्रलम्भविधानेन प्रौज्ज्वल्यं प्रकटीकृतम्।।[1]

विप्रलम्भ :-

आचार्य विश्वनाथ ने विप्रलम्भ श्रृङ्गार के लक्षण एवम् भेदों का उल्लेख साहित्य दर्पण में इस प्रकार किया है–

यत्र तु रतिः प्रकृष्टा नाभीष्टमुवैति विप्रलम्भोऽसौ।

स च पूर्वरागमानप्रवास करुणात्मकश्चतुर्धा स्यात्।।[2]

अर्थात् विप्रलम्भ वह श्रृङ्गार भेद है, जिसमें नायक नायिका का परम्परानुराग तो प्रगाढ़ होता रहता है, किन्तु परस्पर मिलन नहीं होने पाता। इस विप्रलम्भ श्रृङ्गार के चार भेद होते हैं–

१. पूर्वराग विप्रलम्भ

२. मान विप्रलम्भ

३. प्रवास विप्रलम्भ

४. करूण विप्रलम्भ

---

[1] 'बाणभट्ट का साहित्यिक अनुशीलन' पृष्ठ ११६ – अमरकोश पाण्डेय

[2] साहित्यदर्पण तृतीयः परिचछेदः कारिका १८७, पृष्ठ–१३२

पूर्वराग –

सौन्दर्य आदि के श्रवण अथवा दर्शन से परस्पर अनुरक्त नायक–नायिका की उस दशा को पूर्वराग कहते हैं, जो समागम के पहले होती है।

श्रवणाद्दर्शनाद्वापि मिथः संरुद रागयोः।

दशा विशेषो योऽप्राप्तौ पूर्वरागः स उच्यते।। १८८।।[1]

कादम्बरी में पूर्वानुराग का संकेत मिलता है। चन्द्रापीड जिस समय कादम्बरी को देखता है, उस समय वह केयूरक से चन्द्रापीड के विषय में पूछ रही थी– 'वे कौन हैं ? किसके पुत्र हैं ? उनका क्या नाम है ? उनका रूप किस प्रकार का है ? अवस्था कितनी है ? क्या कह रहे थे ? आपने क्या कहा? उन्हें कितनी देर तक देखा ? उनका महाश्वेता से परिचय कैसे हुआ ? क्या वे यहाँ आयेंगे?' [2]

कादम्बरी के प्रश्नों से यह सुस्पष्ट है कि उसमें चन्द्रापीड के प्रति अनुराग उत्पन्न हो रहा है। यहाँ अनुराग श्रवण से उत्पन्न होता है।

पूर्वानुराग में पहले स्त्री कें अनुराग का वर्णन कमनीय होता है।[3] उसके बाद पुरुष के अनुराग का वर्णन करना चाहिए। बाण ने कादम्बरी में पहले स्त्री के ही अनुराग का वर्णन किया है। पहले महाश्वेता को देखकर अनुरक्त होती है– महाश्वेता पुण्डरीक के बारे में कहती हैं – "अहो विधाताः के रूप उत्पादन

---

[1] साहित्यदर्पण उपरिच्छेदः का० १८८ पृ० २३२–२३३

[2] 'कोऽसौ, कस्य वापत्यम्, किमभिधानो या कीदृशमस्य रूपम ....किंमयमत्रागमिष्यति'

— कादम्बरी पूर्वभागः पृष्ठ ७०६

[3] 'आदो वाच्यः स्त्रिया रागः पुंसः पश्चात्तदिङ्गितैः।'

— साहित्यदर्पण ३/१६५ पृ० २३६

के उपकरण–कोष की अक्षयता (कितनी है) कि त्रिभुवन में अद्भुत सौन्दर्य–समूह वाले भगवान कामदेव को उत्पन्न करके उसके आकार से अधिक रूप की अधिकता वाले इस दूसरे मुनि रूप मायामय कामदेव की उत्पन्न कर दिया है। ....मानो 'तुम्हारे अधीन हूँ'। ऐसा करती हुई मानो सामने हृदय को अर्पित करती हुई मानो सब प्रकार से (उसमें) प्रवेश करती हुई ....।"[१] महाश्वेता के पश्चात् पुण्डरीक महाश्वेता को देखकर अनुरक्त होता है। – "मेरे विकार(को देखने) से हरे गये धैर्य वाले उस (मुनिकुमार) को भी काम ने इस प्रकार चंचल कर दिया जैसे पवन दीपक को चंचल कर देता है।"[२]

पूर्वराग तीन प्रकार का होता है–

नीलीराग, कुम्भराग तथा मञ्जिष्ठाराग।

नीली कुसुम्भं मञ्जिष्ठा पूर्वरागोऽपि च त्रिधा।। १६५।।[३]

इन तीनों में महाश्वेता और पुण्डरीक तथा कादम्बरी और चन्द्रापीड का अनुराग मञ्जिष्ठाराग का कमनीय निदर्शन है।

मञ्जिष्ठाराग उस अनुराग को कहते हैं, जो कभी दूर न हो और शोभित भी हो।[४] भाव प्रकाशन में भी मञ्जिष्ठाराग का लक्षण इस प्रकार दिया है–

---

[१] 'अहो रूपातिशयनिष्पादनोपकरणकोश ....मकर केतुरुत्पादितः।
.........................'त्वदायत्तास्मि' इति वद्तीव ....सर्वात्मनानुप्रविशत्तीव।।
– कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ ५४३, ५४५

[२] 'मद्विकारापहृत धैर्य प्रदीपमिव पवनस्तरलतामनयददनङ्गः।
– कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ ५५२

[३] साहित्यदर्पण ३/१६५ पृ० २३७

[४] 'मञ्जिष्ठारागमाहुस्तद् यन्नापैत्यतिशोभते।'
– साहित्यदर्पण तृतीय परिच्छेदः कारिका १६७, पृ० २३८

"अतीव शोभते यस्तु नापैति क्षालितोऽपि सन्।

स एव कविभिः सर्वैर्मञ्जिष्ठाराग उच्यते।।[1]

काम की दशा अवस्थाएं वर्णित की गयी हैं–

अभिलाषश्चिन्तास्मृतिगुण कथनोद्वेगसंप्रलापाश्च।

उन्मादोऽथ व्याधिर्जडतामृतिरिति दशात्र कामदशाः।। १६०।।[2]

इन दसों में से प्रथम पांच अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग अवस्थाओं का वर्णन हर्षचरित में किया गया है। सम्प्रलाप, उन्माद, व्याधि तथा जड़ता का वर्णन कादम्बरी में किया है। चूंकि विप्रलम्भश्रृङ्गार में 'मरण' का वर्णन निषिद्ध है क्योंकि इससे रस विच्छिन्न हो जाता है इसलिए इसका वर्णन नहीं किया गया है।

<u>सम्प्रलाप</u> :–

'इसका तात्पर्य है अटपटी बातचीत का जो कि मन के बहक जाने स्वाभाविक ही है' इस अवस्था का वर्णन कादम्बरी मे उस समय आता है जब महाश्वेता पुण्डरीक को देखकर काम पीडित होती है। वह कन्यकातःपुर में जाती है। उसे पता नहीं है कि यहाँ आ गयी है या नहीं, वह अकेली है या सखियों से घिरी है, वह चुप है या किसी से बात कर रही है, वह जाग रही है या सो रही है। उसमें सुखः, दुःख, उत्कण्ठा, व्याधि, व्यसन, उत्सव, दिन–रात तथा सुन्दर–असुन्दर को जानने का विवेक नहीं रह गया है। वह झरोखे से उस

---

[1] भावप्रकाशन, चतुर्थ अधिकार पृ० ८१।

[2] साहित्यदर्पण तृतीय परिच्छेदः कारिका १६० पृ० २३३

दिशा की ओर देखती है, जिस दिशा में पुण्डरीक था। वह बार–बार पुण्डरीक का चिन्तन करती है।[1]

व्याधि :–

दीर्घ निःश्वास, पाण्डुता, कृशता आदि–आदि का नाम 'व्याधि' है। इस अवस्था का वर्णन पुण्डरीक की कामपीडित अवस्था के चित्रण में किया गया है।

जब कपिञ्जल पुण्डरीक को एक लता–कुञ्ज में देखता है, तब पुण्डरीक चित्रित–सा, उत्कीर्ण–सा, स्तभित–सा, मृत–सा, प्रसुप्त–सा तथा समाधिस्थ–सा दिखायी पड़ता है। वह पाण्डु वर्ण का हो गया था, उसका अन्तः कारण सूना था। वह मौन था और निश्चल था। उसके नेत्रों से आँसू गिर रहे थे। वह उच्छ्वासों से युक्त था। वह कृश हो गया था। वह ग्लान था और अपरिचित–सा प्रतीत हो रहा था।[2]

उन्माद :–

'उन्माद' कहते हैं जड़–चेतन में विवेक न कर पाने को । उन्माद अवस्था का उल्लेख कादम्बरी में उस समय आता है जब तपस्वी मुनिकुमार महाश्वेता के प्रेम में निमग्न हो गये हैं कपिञ्जल जो उनका मित्र है के समझाने पर कहते हैं –

---

१ "गत्वा च प्रविश्य कन्यान्तःपुरं ततः प्रभृतितद्विरह विधुरा
किमागतास्मि, कि तत्रैव स्थितास्मि .... प्रसाधितामिव।"

– कादम्बरी प्रथमोभागः पृ० ५६५–६६, ६७

२ '....................लता गहने कृतावस्थानम्, उत्सृष्ट सकल व्यापार तया लिखित मिवोत्कीर्णमिव स्तम्भितमिवोपरतमिव प्रसुप्तमिव योग समाधि स्थमिव .... वाष्पजलदुर्दिनमुत्सृजन्तम् ....अनभिज्ञेयपूर्वाकारं तमहमद्राक्षम्।'

– कादम्बरी प्रथमोभागः पृ० ५८४–८६, ८६

'मेरा ज्ञान समाप्त हो गया है, मुझमें धैर्य नहीं रहा गया है, मैं सदसद् का विवेचन करने में समर्थ नही हूँ, मैं अपने को रोक नहीं सकता।'[1]

जड़ता :–

यह शारीरिक किंवा मानसिक निश्चेष्टता है। इस अवस्था का वर्णन पुण्डरीक के काम पीड़ा आदि में वर्णित है।

पुण्डरीक महाश्वेता के आने के पहले ही काम–वेदना से पीड़ितहोकर मर जाता है। महाश्वेता भी अग्नि में जलना चाहती है। उसी समय एक पुरुष आकाश से उतरता है और मृत पुण्डरीक को लेकर आकाश में चला जाता है। वह महाश्वेता से कहता है– 'वत्से महाश्वेते, प्राण का परित्याग न करना। पुण्डरीक के साथ तुम्हारा पुनः समागम होगा।'[2]

विश्वनाथ कविराज ने पुण्डरीक तथा महाश्वेता के वृतान्त को करुण विप्रलम्भ का उदाहरण माना है। करुणविप्रलम्भ का लक्षण उन्होंने निम्न प्रकार से किया है–

यूनोरेकतरस्मिन्गतवति लोकान्तरं पुनरलभ्ये।

विमनायते यदैकस्ततो भवेत् करुणविप्रलम्भाख्यः।।[3]

---

[1] अवष्टम्भो ज्ञानं धैर्य प्रतिसंख्या नमित्यस्तमितैषाकथा।
.... समतिक्रान्तो धैर्यावसरः। .... अतीतो ज्ञानवष्टम्भसमयः..........।
– कादम्बरी प्रथमोभागः पृ० ५६५

[2] 'मन्मथ व्यथा सहैतान सूनस्वयमिवोत्सृज्य .... काष्ठान्याहृत्य विरचय चिताम् अनुसरामि जीवितेश्वरम् इति। .... वत्से महाश्वेते न परित्याज्यास्त्वया प्राणाः ....भविष्यति समागमः।' – कादम्बरी प्रथमोभागः पृ० ६२८–६४१–६४४

[3] साहित्यदर्पण तृतीय परिच्छेदः कारिका २०६ पृ० २४७।

अर्थात् – 'करुण' विप्रलम्भ वह श्रङ्गार प्रकार है, जिसमें प्रेमी और प्रेमिका में से किसी एक के दिवंगत हो जाने, किन्तु पुनरुज्जीवित हो सकने की अवस्था में, जीवित बचे दूसरे के हृदय के शोक संवलित रतिभव का अभिव्यञ्जन कहा गया है।

उदाहरण के रूप में उन्होंने 'कादम्बरी' के पुण्डरीक–महाश्वेतावृतान्त में किया है। उनका कहना है कि पुनरुज्जीवित होने वाले पुण्डरीक की मृत्यु पर महाश्वेता के शोक संविग्न रतिभाव का अभिव्यञ्वन है।इसके समर्थन में उन्हेंाने कहा है कि–

'किञ्चात्रा काश सरस्वती भाषानन्तरमेव श्रङ्गारः, संगमप्रत्याशया रतेरुद्भवात्। प्रथमं तुं करुण एव, इत्यभियुक्ता मन्यन्ते।'[1]

अर्थात प्रेमी और प्रेमिका में से किसी एक की आत्यन्तिक मृत्यु से मिलन की अत्यन्त निराशा अथवा परलोक में मिलन की आशा की अवस्था में जो रस अभिव्यङ्ग्य हो सकेगा, वह करुणरस ही होगा। क्योंकि मिलन की आशा के अभाव में रति कहाँ? वहाँ तो शोक ही शोक संभव है न कि करुणविप्रम्भश्रङ्गार।

कवि बाणभट्ट ने कादम्बरी में महाश्वेता तथा पुण्ड़रीक की भांति नायिका कादम्बरी की भी काम जनित अवस्था का वर्णन किया है। वह निरन्तर रोती रहती है, मुख नीचे किये रहती है। वह इतनी चिन्ता–निमग्न है कि उसके मुख से वाणी नहीं निकलती। वह पत्रलेखा से अपनी वेदना का वर्णन करती है और कहती है कि मैं प्राण–परित्याग के द्वारा अपने कलंक का प्रक्षालन कना चाहती हूँ।

---

[1] साहित्यदर्पण तृतीयः परिच्छेद पृष्ठ २४७।

हास्य :-

हास्य–रस का स्वरूप निरुपण विश्वनाथ ने निम्न प्रकार से किया है–

विकृताकारवाग्वषचेष्टादेः कुहकाभ्दवेत्।

हास्यो हास स्थायिभावः श्वेतः प्रमथदैवतः।। २१४।।

विकृताकार वाक्चेष्टं यमालोक्य हसेज्जनः।

तमत्रालम्बनं प्राहुस्तच्चेष्टोद्दीपनं मतम्।। २१५।।

अनुभावोऽक्षिसङ्कोचवदन स्मेरतादयः।

निद्रालस्या वहित्थाद्या अत्र स्युर्व्यभिचारिणः।। २१६।।[1]

अर्थात् 'हास्य' वह रस है जिसे 'हास' स्थायिभाव का अभिव्ञ्जन कहा जाया करता है। इसका आविर्भाव आकार–विकृति, वाग्विकृति, वेषविकृति, चेष्टा विकृति किं वा अन्यान्य प्रकार की विकृतियों के वर्णन अथवा अभिनयन से हुआ करता हे। इसका वर्ण श्वेत है और इसके अधिष्ठातृदेव प्रमथगण है। इसका आलम्बन वह व्यक्ति है जिसमें आकार, वाणी और चेष्टा की विकृतियां दिखायी दिया करती है, और जिसे देख–देख लोग हँसा करते हैं। ऐसे हासास्पद व्यक्ति की जो चेष्टाएं हैं, वे ही यहाँ 'उद्दीपन' का काम किया करती है।

इसके अनुभाव–वर्ग में नेत्र निमीलित, मुख–विकास आदि–आदि की गणना है। इसके जो व्याभिचारी भाव है वे हैं, निद्रा, आलस्य, अवहित्था आदि–आदि। इसके छः भेद होते हैं।

बाणभट्ट ने कादम्बरी में द्रविड धार्मिक के वर्णन के प्रसंग में हास्य का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है–

---

[1] साहित्यदर्पण तृतीयः परिच्छेद कारिका २१४, १५,१६ पृष्ठ २५१–५२।

'उस मंदिर में एक बूढ़ा द्रविड–धार्मिक रहता था। जो मोटी–मोटी नसों के जाल मानो जले हुए वृक्ष के ठूंठ की आशङ्का से चढ़े हकुए गोह, छिपकली और गिरगिटों के समूहों से जाल–युक्त खिड़की बन गया था, जिसका सम्पूर्ण शरीर फोड़ों के अथवा चेचक के घावों के बिन्दुओं से, मानो अलक्ष्मी यादुर्भाग्य की देवी द्वारा खोदे गये लक्षणों के स्थानों से चिह्नित था, जो कर्ण भूषण पर रक्खी हुई शिखा से मानो द्राक्ष–माला को धारण करता हुआ प्रतीत हो रहा था, पार्वती के चरणों पर निरन्तर गिरने से जिसके काले ललाट में घट्टा बढ़ रहा था, किसी मिथ्यावादी द्वारा दिये गये सिद्धाञ्जन के लगाने से एक नेत्र के फूट जाने के कारण जिसने दिन में तीन समय दूसरे नेत्र में अञ्जन लगाने के प्रति आग्रह से लकड़ी की सलाई पतलीकर दी थी, जिसने प्रतिदिन कड़वी तूंबी के जल से दन्तुरता का इलाज आरम्भ किया था, किसी प्रकार अनुचित स्थान में दिए हुए (तप्त) ईट के प्रहार के कारण सूखी हुई एक भुजा में जिसका तेल मलने का शौक शान्त हो गया था, एक के ऊपर एक किये गये कड़वी बत्ती के प्रयोग से जिसने तिमिर रोग बढ़ा लिया था, पत्थरों को तोड़ने के लिए जिसने सूअरों के दाँत इकट्ठे कर रक्खे थे, इंगुदी (वृक्ष) के फल के खोखल मे जिसने औषधियों और अञ्जनों का संग्रह कर रक्खा था, सूई से सिली हुई नसों के कारण जिसके बायें हाथ की अंगुलियाँ सिकुड़ गई थी, रेशम के कीड़े के कोशों के आवरण के संघर्षण से जिसके चरणों के अंगूठे घाव–युक्त हो गये थे, ठीक ढ़ंग से न बनाये गये रसायनों के कारण जिसने अकाल में ही ज्वर बुला लिया था, बुढ़ापे को प्राप्त होते हुए भी जिसने दविण प्रदेश के राज्य के वर प्रदान की प्रार्थना से दुर्गा को उद्विग्न कर दिया था, गलत शिक्षा के सुनने के कारण इष्ट तिल मे जिसके वैभव की आशा बँधी हुई थी, जो हरे पत्तों के रस

के साथ कोलये की स्याही से मलिन सीपी को लिए हुए था, एक पट्टी पर जिसने दुर्गा का स्तोत्र लिख रक्खा था, जो धुएं से रंगे हुए लाख के अक्षरों वाले ताड़–पत्रों की इन्द्रजाल तन्त्र और मन्त्र की पुस्तिकाओं का संग्रह करने वाला था, जिसमें किसी बूढ़े शैव के उपदेश से महाकाल की पूजा का मत लिख रहा था, जिसमें खजाना पाने की बात कहने की व्याधि प्रकट हो रही थी, जिसमें धातुवाद रूपी वायु उत्पन्न हो रहा था जिसको असुरों के छिद्र में प्रवेश करने का पिशाच लगा हुआ था जिसमें यक्ष–कन्या के प्रेमी होने के मनोरथ का गति–भ्रम उत्पन्न हो गया था, जिसने अन्तर्धान होने के मन्त्रों का संग्रह बढ़ा रक्खा था जो श्रीपर्वत की सहस्त्रों आश्चर्यमयी बातों से परिचित था। जिसके कर्ण–पुट निरन्तर अभिमंत्रित सरसों को मारने से दौड़े हुए पिशाचों द्वारा ग्रहण किये गये थे, जिसने शैव होने के अभिमान का त्याग नहीं किया था, बुरे ढ़ंग से पकड़े गये तंबूरे को बजाने से उद्विग्न किये गये पथिक जिससे बचते थे जो दिनभर मच्छरों की भिनभिनाहट का अनुकरण करने वाला कुछ सिर हिलाते हुए गाता रहता था, जो अपने देश की भाषा में रचे गये गंगा की भक्ति के स्तोत्र के साथ नाचता था.......................... सर्वदा वसन्त क्रीडा करने वाले लोगों द्वारा उठाई हुई टूटी–फूटी खाट पर रक्खी गयी वृद्ध दासी से विवाह द्वारा जिसने विडम्बना प्राप्त की थी, ...दण्डों के प्रहार उसके शरीर में गण्डूक हो गये थे। सभी अंगों पर दीप रखकर जलाने के कारण जलने से व्रण हो गये थे। .... वह क्षणभर भी काले कम्बल के टुकड़े से बने खोल को वहीं छोड़ता था।[1]

---

[1] स्थलस्थूलैः शिराजालकैर्गोधागृह गोलिकाकृककलास दग्धस्थाण्वाशङ्कया समारुदैर्गवाक्षितेन, अलक्ष्मी–समुत्रवात लक्षणस्थानैरिव ....वेणुतलारचितपुष्प पातनाङ्कुशिकेने .... जरद्द्रविडधार्मिकेणाधिष्ठतां चण्डिकामपश्यत्।

— कादम्बरी प्रथमःभागः पृष्ठ ८३२–८४०

यहाँ द्रविड धार्मिक आलम्बन है। उसमें आकार, वेष तथा चेष्टा की विकृतियाँ विद्यमान हैं। चन्द्रापीड में हास्य का हासित भेद विद्यमान है। स्मित तथा हसित ये दोनों उत्तम प्रकृति–गत होते हैं।[1] हसित उस हास को कहते हैं जिसमें मुख, नेत्र और कपोल–स्थल विकसित हो और दाँत कुछ–कुछ दिखाई पड़े।[2]

<u>करुण</u> –

करुण रस का लक्षण और परिभाषा विश्वनाथ ने निम्न प्रकार से किया है–

इष्टनाशादनिष्टाप्तेः करुणाख्यो रसो भवेत्।

धीरैः कपोतवर्णोऽयं कथितो यमदैवतः।। २२२।।

शोकोऽत्र स्थायिभावःस्याच्छोच्यमलम्बनं मतम्।

तस्य दाहादिकावस्था भवेदुद्दीपनं पुनः।। २२३।।

अनुभावा दैवनिन्दाभूपातक्रन्दितादयः।

वैवर्ण्योच्छ्वासनिः श्वासस्तम्भप्रलयनामि च।। २२४।।

विर्वेद मोहापस्मारव्याधिग्लानिस्मृतिश्रमाः।

विषाद जङतोन्मादचिन्ताद्या व्यभिचारिणः।। २२५।।[3]

अर्थात् करुणरस वह रस है जिसे शोकरूप स्थायिभाव का पूर्णाभिव्यञ्जन कहा गया है। इसका अविर्भाव इष्टनाश और अनिष्ट–प्राप्ति से सम्भव है। इसका

---

[1] 'स्मितहसिते ज्येष्ठानां ....।' – नाट्यशास्त्र ६/५३

[2] उत्फुल्लनननेत्रं तु गण्डेर्विक सितैरथ।
किञ्चिल्लक्षितदन्तं च हसितं द्विधीयते।
– नाट्यशास्त्र ६/५५

[3] साहित्यदर्पण तृतीयः परिच्छेदःकारिका २२२–२३–२४–२५ पृ० २५३–५४

वर्ण कपोतवर्ण है और इसके जो देवता माने है वे यम हैं। इसका स्थायी भाव 'शोक' है। इसका जो आलम्बन है वह विनष्ट व्यक्ति है। इसके उद्दीपन वर्ग में दाह कर्म आदि की गणना है। दैव निन्दन, भूमिपतन, कुन्दन, वैवर्ण्य, उच्छ्वकस, निःश्वास, स्तम्भ, प्रलयन आदि–आदि इसके अनुभाव माने गये हैं। साथ ही साथ निर्वेद, मोह, अवस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम, विषाद्, जड़ता, उन्माद और चिन्ता इसके व्यभिचारि भाव हैं।

कादम्बरी के कथानक में करुण रस का प्रसङ्ग शुक–वृतान्त में आया है। शुक के पिता की मृत्यु, शुक की असाहावस्था, शुक का जलान्वेषण के लिए प्रयास करना– इनके द्वाराकरुण रस की धारा सतत प्रवाहित की गयी है।

शुक का मार्मिक चित्रण दृष्टव्य है –

'एक पुराने कोटर में पत्नी के साथ रहते हुए वृद्धावस्था में वर्तमान पिता का किसी प्रकार भाग्यवश मैं एक पुत्र उत्पन्न हो गया था। उत्पन्न होते हुए, मेरी ही अति प्रबल प्रसववेदना से पीड़ित मेरी माता परलोक चली गयी। प्रियपत्नी के शोक से दुःखी होते हुए भी मेरे पिता पुत्र–प्रेम के कारण घने प्रसार के वाले शोक को भी अन्दर रोक कर मेरे पालन–पोषण में लग गये। अत्यन्त वृद्धावस्था युक्त मेरे पिता कुश के जीर्णवस्त्र का अनुकरण करने लगे, थोड़े से बचे हुए पुराने पंख–समूहों से जर्जर, झुके हुए कंधे होने के कारण शिथिल और जिनकी उड़ने की शक्ति समाप्त हो गयी थी, ऐसे पंख–समूह को धारण करते हुए, कम्प युक्त होने के कारण मानो सन्ताप देने वाले और अंगों से लगे हुए बुढापे को हिलाकर फेंकते हुए, घूमने में असक्त हुए कोमल हुए शेफालिका के पुष्प की नाल के समान पीले, कमल की मञ्जरी के निरन्तर

दलन से चिकन और क्षीण हुए किनारे वाले और टूटी हुई अगली नोक वाले चञ्चु–पुट से, दूसरे घोसलों से गिरी हुई धान की बालों से चावल– कण से लेकर और वृक्ष की जड़ में गिरे हुए शुक समूहों द्वारा कुतरे गये फलों के टुकड़ों को एकत्रित करके मुझको देते थे। और प्रतिदिन मेरे खाने से बचे हुए को स्वयं खाते थे।[1]

जब वृद्ध शवर शाल्मली वृक्ष के नीचे रूक जाता है और उस पर चढ़कर शुकों को मार–मारकर भूमि पर गिरा देता है और इसके बाद वृक्ष से ऊपरकर शुकों के प्राणों को लेकर चला जाता है तथा जब वैशम्पायन शुक अपने प्राणों की रक्षा करने का प्रयत्न करता है और मार्ग में सूर्य की ऊष्मा से सन्तप्त हो जाता है, तब कवि की लेखनी करुण का समुज्ज्वल समुन्मीलन करती है और समुभ्दासित भावों की अवलियों का श्रङ्गार करती है।

शबर सेनापति के ओझल हो जाने पर एक बूढ़ा शबद जिसनेहरिण कां मांस प्राप्त नहीं किया था और जो मांस भक्षी के समान भयानक आकृति का था, मांस–लोलुप होता हुआ उसी वृक्ष के नीचे लगभग मुहूर्त भर ठहरा। शबर सेनापति के अदृश्य हो जाने पर उस बूढ़े शबर ने, मानो हमारी आयुओं को पीते हुए, रूधिर–बिन्दु जैसी गुलाबी और पीली भ्रूलता की परिधि से भीषण दृष्टि से मानो शुक कुलों के नीड–स्थलों को गिनते हुए, बाज के समान पक्षियों के मांस–भक्षण को लोलुप होते हुए, वृक्ष पर चढ़ने की इच्छा करते हुए बहुत देर तक जड़ से लेकर उस वृक्ष को देखा। उस समय उसके देखने से भयभीत

---

[1] 'एकस्मिंश्च जीर्णकोटरे जायया सह निवसतः पश्चिमे वपसि वर्तमानस्य कथमपि पितुरमेवैकः विधिवशात्सुनुरभवम्। .... प्रतिदिनसमात्मना च मदुपयुक्तशेषमकरोदशनम्।'
— कादम्बरी पूर्व भागः पृष्ठ ६२–६३

शुक–कुलों के प्राण मानों निकल गये। निर्दय मनुष्यों के लिए कौन काम दुष्कर है ? क्योंकि उस वृद्ध शबर ने अनेक ताल वृक्षों की ऊँचाई वाले और आकाश स्पर्शी शाखा–शिखर वाले वृक्ष पर मानो सीढ़ियों से ही बिना प्रयास के चढ़कर शुक–शावकों का जिसमें लड़ने की शक्ति उत्पन्न नहीं हुई भी जिनमें कुछ थोड़े दिन पूर्व उत्पन्न हुए थे, अतः गर्भ–छवि से गुलाबी थे और शाल्मली के कुसुमों की शङ्का उत्पन्न कर रहे थे, कुछ निकलते हुए पङ्खों के कारण कमल के नव–दलों का अनुकरण करने वाले थे, कुछ आक के फल के सदृश थे कुल लाल होती चोंच के नोक वाले थे कुछ प्रतीकर में असमर्थ निरन्तर शिरः कम्प के बहाने मानो शबर को रोक रहे थे, उस वृद्ध शबर ने एक–एक करके उस वृक्ष की शाखाओं के अन्दर से शुक शावकों को, मानो उस वृक्ष के फलों को पकड़ लिया और उनको प्राण–रहित करके पृथ्वी पर गिरादिया मेरे पिता उस महान प्राण–नाशक और प्रतीकार–रहित विपत्ति को आचानक आया हुआ देखकर, दुगने कम्प से युक्त होकर, मरण के भय से उद्भान्त और चञ्चल पुतली वाले होते हुए, विषाद के कारण शून्य और अश्रु जल पूर्ण दृष्टि की इधर–उधर दिशाओं में डालते हुए अत्यधिक शुष्क तालु वाले होते हुए अपने बचाव में असमर्थ थे .... उसने चीखते हुए मेरे पिता को खींचकर प्राण रहित कर दिया। किन्तु पक्ष–सम्पुट के अन्दर गये हुये मुझ को उसने अत्यधिक छोटा होनेके कारण भय से सिकुड़े हुए अंगों वाला होने के कारण और आयु के शेष होने के कारण किसी प्रकार नहीं देखा। मरे हुए शिथिल ग्रीवा वाले और नीचे लटके मुख वाले उसने मेरे पिता को पृथ्वी तल पर छोड़ दिया। मैं भी, अपनी ग्रीवा उसके चरणों के मध्य में स्थापित किये हुए, शान्ति के साथ या अध्याधिक गोद में लीन हुआ उसी के साथ गिर पड़ा।

अवशिष्ट पुण्य वाला होने के कारण मैने पवन द्वारा एकत्रित किये गये महान शुष्क पत्रो की राशि के उपर अपने को गिरा हुआ देखा। जिससे मेरे अंङ्ग टूटे नहीं।[1]

तत्पश्चात् शुक–शावक लुढ़कता हुआ तमाल वृक्ष की जड़ में घुस गया। दूर से गिरने के कारण उसका शरीर अत्यन्त व्यथित था । उस समय बलवती पिपासा ने उसे व्यथित कर दिया। उसकी जीजिविषा इत्यादि अवस्थाओ का कवि ने जो निरूपण किया है वह अत्यधिक द्रावक हैं–

'इस समय तक वह पापी बहुत दूर चला गया, यह विचार करके ग्रीवा का कुछ उठाकर अपने चकित दृष्टि से दिशाओं को देखकर तृण के खटकने पर भी वह पुनः लौट आया, इस प्रकार उस पापी की पद–पद पर सम्भावना करता हुआ, उस तमाल वृक्ष की जड़ से निकलकर मैं जल के समीप जाने का प्रयत्न किया।'

पंख उत्पन्न न होने के कारण अत्यधिक अस्थिर चरण संचार वाले, बार–बार मुख से गिरते हुए, बार–बार तिरछा गिरते हुए अपने को एक ओर के पंख–समूह से सम्भालते हुए, पृथ्वी तल पर सरकने से उत्पन्न भ्रान्ति के कारण व्याकुल अभ्यास न होने के कारण एक पग ही चलकर निरन्तर ऊपर मुख किये हुए, गहरी–गहरी सांस लेते हुए, घूल से घूसर, सरकते हुए मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ– "संसार में प्राणियों की प्रवृत्तियाँ अत्यन्त कष्टप्रद अवस्थाओं में भी जीवन से निरपेक्ष नहीं होता। इस संसार में सब प्राणियों के

---

[1] एकतमस्तु जरच्छबरस्तस्मात्पुलिन्दवृन्दादानासादितहरिणपिशितः विशिताशनः इव ....
अवशिष्ट पुण्यतया तु पवनवश्येन पुञ्जितस्य महतः शुष्कपत्रराशेरुपरि पतितमात्मानमश्यम्।
अङ्गानि येन में नाशीर्यन्ते।

– कादम्बरी प्रथमोभागः (पूर्वभागः) पृ० १२०–१२५

लिए जीवन से भिन्न कोई अधिक इष्ट वस्तु नहीं है, जो सर्वदा ग्रहण योग्य नाम वाले पिता के इस प्रकार मृत्यु को प्राप्त हो जाने पर भी अविकल इन्द्रियों वाला मैं फिर भी जीता हूँ। निर्दय, अत्यन्त निष्ठुर और अकृतज्ञ मुझ को धिक्कार है। अहो, जिस मेरे द्वारा सहन किये गये पितृ–मरण के शोक से दारुण होकर भी जिया जा रहा है। किये गये उपकार पर भी ध्यान नहीं दिया जाता, मेरा हृदय सचमुच दुष्ट है। माता के दूसरे लोक में चले जाने पर शोक–वेग को रोककर, जन्म–दिन से लेकर वृद्धावस्था वाले होते हुए भी पिता ने, अत्यन्त महान भी पालन–पोषण के क्लेश को न गिनते हुए, अनेक उपायों से जो मेरा परिपालन किया, मैनें उस सब को उसी क्षण भुला दिया। ये प्राण सचमुच अत्यन्त कृपण है क्यों कि ये उपकारी पिता का अनुगमन नहीं कर रहा हैं .... धूप से जलती हुई धूलि के कारण भूमि दुर्गम है। अत्यधिक पिपासा से खिन्न अङ्ग चलने में असमर्थ नहीं है। मेरा अपने ऊपर अधिकार नहीं है, मेरा हृदय बैठा जा रहा है, दृष्टि अन्धी हो रही है।[१]

यहाँ पर शुक का पिता आलम्बन है पिता की मृत्यु पर रुदन 'उद्दीयपन' है। शुक का गिरना (भूमिपतन), शुक का क्रन्दन आदि अनुभाव है। शुक–शावकों या शुक के वृद्ध पिता की कृशता आदि व्याधि व्यभिचारी भाव है।

कादम्बरी के कथानक में रौद्ररस का वर्णन नहीं मिलता इसका वर्णन बाणभट्ट की हर्षचरित नामक आख्यायिका में दुर्वासा इत्यादि के उल्लेख में रौद्ररस का वर्णन है।

---

[१] 'अनया च कालकलया सुदूरमतिक्रान्तः स पापकृदिति परिकलय्य किंचिदुन्नमति कन्धरो भयचकितया .... सीदति में हृदयम्। अन्धकारतामुपयाति चक्षुः।'
– कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ १२७–१३१

वीर रस :–

वीररस का लक्षण साहित्याचाय ने निम्नवत् उद्धृत किया है–

उत्तम प्रकृति र्वीर उत्साह स्थायि भावकः।
महेन्द्रदेवतो हेमवर्णोऽयं समुदाह्वतः।। २३२।।
आलम्बन विभावास्तु विजेतव्यादयो मताः।
विजेत व्यादिचेष्टा घास्तस्योद्दीपन रूपिणः।
अनुभावास्तु तत्रस्युः सहायान्वेषणादयः।। २३३।।
सञ्चारिणस्तु घृतिमतिगर्वस्मृतितर्क रोमाञ्चाः।
स च दानधर्मयुद्धैर्दयया च समन्वित श्चतुर्धा स्यात्।। २३४।।[१]

अर्थात 'वीररस' वह है जिसे 'उत्साह' रूप स्थायी भाव का आस्वाद कहा गया है। इसके आश्रय उत्तम प्रकृति के व्यक्ति हैं। इसका वर्ण स्वर्ण–वर्ण है और इसक देवता हैं महेन्द्र। इसके 'आलम्बन' विभाव विजेतव्य शत्रु आदि हैं और इन विजेतव्य शत्रु आदिकों को चेष्टाएं इसके उद्दीपन विभाव है। युद्धादि की सामग्री किंवा अन्यान्य सहायक साधनों के अन्वेषण इसके 'अनुभाव' रूप है। घृति, मति, गर्व, स्मृति, तर्क, रोमाञ्य आदि–आदि इसके 'व्यभिचारी' भाव है।

कादम्बरी में चन्द्रापीड की दिग्विजय यात्रा वीररस पूर्ण है। चन्द्रापीड इन्द्र के समान जब पूर्व दिशा की ओर चला तो उसके दिग्विजयी प्रयाण का और चन्द्रापीड को एक वीरयोद्धा के रूप में चित्रित किया गया है–

दिग्विजय के लिए प्रयाण को बताने वाली प्रस्थान कालीन दुन्दुभी धीरे–धीरे बज उठी– जो दुन्दुभी प्रलय के बादलों को घटा के घोष के समान

---

[१] साहित्यदर्पण तृतीयः परिच्छेदः पृष्ठ २५७

घर्घर शब्द वाली थी और जो स्वर्ण दण्डों से पीटी जा रही थी ....तब दुन्दुभी के शब्द को सुनकर, 'जय जय' इस प्रकार जय–शब्द से चारों ओर उद्घोषित किया जाता हुआ चन्द्रापीड सिंहासन से, शत्रुओं की लक्ष्मी के साथ, चल पड़ा अर्थात शत्रुओ की राजलक्ष्मी उसके चलने के साथ ही विचलित हो उठी और चारो ओर से शीघ्रता से उठे हुए सहस्त्रो नरपतियों से जो परस्पर संघर्षण से टूटे हुए हारों के सूत्रों से निरन्तर गिरे हुए मुक्ता समूहों का मानो दिग्विजय के लिए प्रस्थान में मंगल के लिए लीला सहित खीलों को बिखेर रहे थे– अनुगमन किया जाता हुआ, ...

चन्द्रापीड की अपरिमित सेना ने बढ़ती हुई धीरे धीरे मानों सम्पूर्ण विश्व का संहार करती हुई अर्थात विश्व का अदृश्य करती हुई अकाल के काले मेघ समूह के समान घनी इस धूल ने फैलना आरम्भ किया। और क्रम से पुष्ट होती हुई सघन मूर्ति वाली, बढ़ते हुए विष्णु के चरण के समान बढ़ती हुई उस धूल द्वारा त्रिभुवन को लांघ लिया गया, जो धूल दिग्विजय की मांगलिक ध्वजा थी, शत्रु कुल रूपी कमल को नष्ट करने के लिए पाला थी, राजलक्ष्मी के विकास की पटवास–चूर्ण थी, शत्रुओ के छत्ररूपी कमलों के नाश के लिए तुषार थी, सेना के भार से पीड़ित पृथ्वीतल की मूर्छा का अन्धकार थी, चलती हुई सेनारूपी बादलों के समय में कदम्ब–पुष्पों की उत्पत्ति थी, सूर्य की किरण रूपी कमल–वन को नष्ट करने के लिए हाथियों का समूह थी, आकाश और पृथ्वी तल या आकाश रूपी पृथ्वी तल को डूबाने के लिए प्रलय कालीन समुद्र की बाढ़ थी, त्रिभुवन की लक्ष्मी के सिर का घूंघट–पट थी, जो महावराह की ग्रीवा के केश–समूह के समान चितकबरी थी, जो प्रलयाग्नि की धूम–पंक्ति के समान सघन थी । रेशमी वस्त्र के समान धवल आकाश–गंगा केले के समान धूल के

संयोगसे कलुबता को प्राप्त सागर से निकली हुई उस अपरिमित सेना को देखकर, वैशम्पायन आश्चर्य युक्त हुआ, चारो ओर दृष्टि डालकर, चन्द्रापीड से बोला 'युवराज देव महाराजाधिराज तारापीड के द्वारा क्या नहीं जीता गया जिसे तुम जीतोगे ?

उपर्युक्त स्थल पर चन्द्रापीड उत्तम प्रकृति का व्यक्ति है। इसके 'आलम्बन' विजित शत्रु आदि हैं। शत्रु इत्यादि की विगलित लक्ष्मी उद्दीपन विभाव है। चन्द्रापीड की सेना, हाथी, घोड़े, रथ युद्धादि की सामग्री अनुभाव रूप हैं। वैशम्पायन का गर्व इत्यादि व्यभिचारी भाव है।[1]

भयानक रस–

आचार्य विश्वनाथ ने निम्नवत् भयानक रस का लक्षण दिया है–

भयानकौ भयस्थायिभावो भूताधिदैवतः।

स्त्रीनीचप्रकृतिः कृष्णो मतस्तत्त्व विशारदैः।। २३५।।

यस्मादुत्पद्यते भीतिस्तदत्रालम्बनं मतम्।

चेष्टा घोरतरास्तस्य भटेदुद्दीपनं पुनः।। २३६।।

अनुभावोऽत्र वैवर्ण्य गद्गदस्वर भाषणम्।

प्रलयस्वेदरोमाञ्चकम्पदिक्प्रेक्षणादयः।। २३७।।

जुगुप्सावेग संमोहसंत्राससम्लानिदीनताः।

शङ्कापस्मार सम्भ्रान्तिमृत्य्वाद्या व्यभिचारिणः।। २३८।।[2]

---

[1] दिग्विजय प्रयाणशंसी प्रलयघन घटाघोष घर्घर ध्वनिरूदधिरिव मन्दरपातैः वसुन्धरापीठमिव युगान्तनिर्घातैः .... युवराज किं न जिंत देवेन महाराजाधिराजेन तारापीडेन यज्जेष्यसि....। — कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ–४२७–४५१

[2] साहित्यदर्पण तृतीयः परिच्छेदः पृष्ठ २५७

अर्थात भयानक वह रस है जिसे 'भय' रूप स्थायी भाव का आस्वाद कहा जाया करता है। इसका वर्ण कृष्ण है और इसके देवता–'काल' (कृतान्त) हैं। काव्य–कोविदों ने स्त्री किंवा नीच प्रकृति के लोगों की इसका आश्रय माना है। इसका आलम्बन भयोत्पादक पदार्थ है और ऐसे भयोत्पादक पदार्थों की भीषण चेष्टाएं इसके उद्‌दीपन विभाव का काम करती है। विवर्णता, गद् गद् भाषण, प्रलय, स्वेद, रोमाञ्च, कम्प, इतस्ततः, अवलोकन आदि–आदि इसके अनुभाव है। इसके व्यभिचारी भावों में जुगुप्सा, आवेग, अवलोकन आदि–आदि इसके अनुभाव है। इसके व्यभिचारी भावों में जुगुप्सा, आवेग, संभोह, संत्रास, ग्लानि, दीनता, शङ्का, अपस्मार, संभ्रम, मरण आदि–आदि आते हैं।

कादम्बरी में शबर–मृगया के वर्णन के प्रसंग में भयानक रस का सुभग उदाहरण प्राप्त होता है–

सहसा उस महावन में शिकार के कोलाहल की एक ध्वनि उठी जो सभी वनचरो को भयभीत कर रही थी, जो वेग से उड़ते हुए पक्षियों के पंख–समूहों के शब्द से विस्तार युक्त हो गयी थी, जो डरे हुए हाथियों के बच्चों के चीत्कार से बढ़ गयी थी, जो हिलते हुए लता पर व्याकुल हुए मत्त भ्रमर–समूह की गुंजार से मांसल अर्थात स्थूल हो गयी थी, जो घूमते हुए ऊँची नाक वाले जंगली सूअरों के शब्द से कठोर हो गयी थी, जो पर्वत की गुफा में सोए हुए और कोलाहल सुनकर जागे हुए सिंहों के निनाद से बढ़ गई थी, जो मानों वृक्षो को कंपा रही थी, जो भागीरथ द्वारा उतारी जाती हुई गङ्गा के प्रवाह की कल–कल के समान घनी थी, ओर जो डरी हुई वन–देवियों द्वारा सुनी जा रही थी। पहले कभी न सुने गये उस शब्द को सुनकर भय से विह्वल मैं जिसमें कम्पन उत्पन्न हो गया था और बालपन के कारण जिसके कर्ण–विवर

अवरूद्ध हो गये थे– भय के प्रतीकार की बुद्धि से समीपवर्ती पिता के बुढ़ापे से शिथिल पंख समूहों के अन्दर घुस गया।

इसके तुरन्त बाद मैने शिकार में आसक्त, वृक्ष–कुञ्ज में अपने शरीरों को छुपाते हुए महान जन–समूह का वन को क्षुब्ध करने वाला कोलाहल सुना।[1]

जब मृगयाव्यापार का कोलाहल समाप्त हो जाता है, तब शुक–शावक का भय मन्द पड़ जाता है। वह कुतुहलवश पिता की गोद से थोड़ा निकल कर ग्रीवा को फैलाकर देखता है। उस समय उसकी कनीनिकायें भय से तरल हो जाती हैं। उसे वन के मध्य से सम्मुख आती हुई शबर–सेना दिखाई पड़ती हैं।

उस वन के अन्दर से सामने आते हुए एक शबर सैन्य को देखा जो मानो अर्जुन के सहस्त्र भुजदण्डों से बिखरी हुए नर्मदा का प्रवाह था, जो मानो वायु से प्रचलित तमाल वन था, जो मानो कालरात्रिका एकत्र हुआ प्रहर–समूह था, जो मानो भूचाल से हिलाया हुआ अंजन–शिला स्तम्भों का ढ़ेर था, जो मानों सूर्य की किरणों से व्याकुल हुआ अन्धकार–पुञ्ज था, जो मानो पर्यटन करता हुआ यम का परिवार था, जो मानो रसातल को फोड़कर निकला हुआ दानव–लोक था, जो मानो एक स्थान पर आया हुआ अशुभ कर्मो का समूह था, जो मानो दण्ड कारण्य में रहने वाले अनेक मुनिजनों का घूमता हुआ शाप समूह था, जो मानो निरस्त बाण–समूह की वर्षा करने वाले रामद्वारा मारे गये खरदूषण था, उसके प्रति अनिष्ट–चिन्ता के कारण पिशाचता को प्राप्त सैन्य समूह था, जो मानो एकत्रित हुआ कलियुग का बन्धुवर्ग था, जो मानो स्नान के

---

[1] सहसैव तस्मिन्महावने संत्रासितसकलवनचरः सरभसममुत्पतत्पत्रिपक्ष पुट शब्द संततः भीतकरिपोतचीत्कार पीवरः .... क्रोडकुलदश्यमान भद्रमुस्तार सामोदः।
– कादम्बरी पूर्वभागः पृष्ठ ६६–१००

लिए प्रस्थान किया हुआ जंगली भैसों का समूह था, जो मानों पर्वत शिखर पर स्थित सिंह के हाथों से खींचे जाने के कारण गिरने से छिन्न–भिन्न हुआ काले मेघों का समूह था, जो मानो सम्पूर्ण पशुओं के विनाश के लिए आया हुआ धूमकेतुओं का समूह था, जिसने जंगल को अन्धकार युक्त कर दिया था, जो अनेक संख्या वाला था, जो अत्यधिक भय उत्पन्न करने वाला था, जो उत्पात (सूचक) वेतालों (भूतों) के समूह के समान था।

शबर–सेना के वर्णन के प्रसङ्ग में कवि ने अनेक भयोत्पादक उपमानों की योजना की है। शबर सेनापति मातंग और उसके साथ चलने वाले शबरों का वर्णन किया है–

उस विशाल शर सेना के मध्य में मैने एक शबर सेनापति को देखा जो प्रथमवपस् में वर्तमान था अर्थात् युवक था, जो अति कठोर होने के कारण मानो लोहे का बना हुआ था, जो मानो दूसरे जन्म को प्राप्त एकलव्य था, उत्पन्न होती हुई डाढ़ी–मूछों की रेखा के कारण जो मानो प्रथम मद–लेखा से शोभित की जाती हुई गण्डस्थल रूपी भित्ति वाले हस्ति–समूह के सरदार का कुमार था, जिसने नीलकमल के समान श्यामल देह–प्रभा के प्रवाह से, मानो यमुना के जल से, जंगल को भर दिया था, जो अग्रभाग में कुछ कुटिल और कन्धों पर लटके हुए कुन्तल–भार से युक्त था, मानो हाथी के मद से मलिन किये गये केसर–समूह से युक्त सिंह हो, जो चौड़े ललाट वाला और अत्यन्त ऊँची और डरावनी नाक वाला था।[१]

---

[१] मध्येचतस्य महतः शबर सैन्यस्य प्रथमे वयसि वर्तमानम् ......। अतितुङ्गघोर घोषणम्।
— कादम्बरी पूर्वभागः पृष्ठ १०८–१०९

वीभत्स रस :—

इस रस के लक्षण में विश्वनाथ ने निम्न प्रकार से कारिका उद्धृत किया है—

जुगुप्सास्थायि भावस्तु वीभत्सः कथ्यते रसः।
नीलवर्णो महाकाल दैवतोऽयमुदाहृतः।। २३६।।
दुर्गन्ध मांस रुधिर मेढांस्यालम्बन मतम्।
तत्रैव कृमिपातद्यमुद्दीपन मुदाहृतम्।। २४०।।
निष्ठीवनास्यवलन नेत्र संङ्कोच नादयः।
अनुभावास्तत्र मतास्तथा स्युर्व्यभिचारिणः।। २४१।।
मोहोऽपस्मार आवेगो व्याधिश्च मरणादयः।।[1]

अर्थात् 'वीभत्स' वह रस है जिसे 'जुगुप्सा' के स्थायी भाव का अभिव्यञ्जन माना जाया करता है। इसका वर्ण नील है। इसके देवता महाकाल हैं। इसके आलम्बन दुर्गन्धमय मांस, रक्त, मेद, आदि–आदि है। इन्हीं दुर्गन्धमय मांसादि में कीड़े पड़ने आदि को इसका उद्दीपन विभाव माना जाता है। निष्ठीवन (थूकना), आस्यवलन (मुँह फेरना), नेत्रसंकोच (आंखें मींजना) आदि–आदि इसके अनुभाव हैं और मोह, अपस्मार, आवेग, व्याधि तथा मरण आदि इसके व्याभिचारी भाव हैं।

कादम्बरी का रक्तध्वज वर्णन और चण्डिका वर्णन वीभत्स रस का सुन्दर उदाहरण है।

---

[1] साहित्य दर्पणः तृतीयः परिच्छेदः कारिका २३६–२४१ पृष्ठ २६०–२६१

चन्द्रापीड ने देवी चण्डिका के मन्दिर के ध्वजा को देखा इसमें वीभत्स रस का सुन्दर अंकन किया गया है

उस ध्वजा की ओर कुछ दूर जाकर(चन्द्रापीड ने) (देवी) चण्डिका को देखा जो केतकी (पुष्प) के सूची–खण्ड के समान पाण्डु, जंगली हाथी के दाँत के किवाड़ों से घिरी हुई थी, जिसका द्वार–देश नयी और कुछ लाल चामर–पंक्ति से घिरे हुए लोहे के गोलदर्पणों की माला को, धारण करते हुए लोहे के तोरण से युक्त था, जिसकी काजल शिला की वेदी (चण्डिका के) सामने स्थापित किये हुए, (ऊपर) लगे हुए लाल चन्दन के थापों के कारण मानो खून से लाल यम के करतलों द्वारा थपथपाये गये और रुधिर–बिन्दु के लोभ से चञ्चल श्रृंगालियों द्वारा जिसके लाल नेत्र चाटे जा रहे थे ऐसे लोहे के भैंसे से अधीष्ठित था, जिसके लिए कहीं लाल कमलों से मानो शबरों द्वारा मारे गये जंगली भैसों के नेत्रों से कहीं अगस्ति(पुष्प) की कलियों से मानो सिंह के नखों से, और कहीं किंशुक पुष्प की कलियों से मानो चीतों के रुधिर–युक्त नखों से, पवित्र (उपहार के रूप में) दिया गया था, अनेक स्थानों पर जो हिरनों के वक्र सींगों के अग्र भागों के समूहों से मानों अंकुरित सैकड़ों सरस से मानों पल्लवित, सहस्त्रों लाल नेत्रों से मानो पुष्पित और मुण्ड समूहों से मानों फलित हुई बलि–हिंसा को दिखला रही थी, जिसका आँगन कुत्तों के भय से शाखाओं के अन्दर छिपे हुए लाल मुर्गों के समूह से युक्त, मानों असमय में दिखलाये हुए फूलों के गुच्छों वाले लाल अशोक के वृक्षों से विभूषित था, जिसको ताड़ वृक्षों के द्वारा, मानों बलि के रुधिर को पीने के लालच से आए हुए वैतालों द्वारा फलरूपी मुण्डों का उपहार दिया जा रहा था, जो मानों शंका के ज्वर से कांपे हुए केले के वनों द्वारा भय से कंटकित हुए श्रीफल वृक्षों के समूहों से और त्रास

से उड़े केश वाले खजूर वृक्षों के वनों से चारो ओर से गहन कर दी गयी थीं। जिसके प्रदेश जंगली हाथियों के विदीर्ण कुम्भ स्थल से निकाले गये, रूधिर से लाल अतएव बलि के अन्नकणों के लालची मूढ़ मुर्गों द्वारा पहले पकड़े गये और फिर छोड़ दिये गये लाल मोतियों को बिखेरते हुए, चण्डिका के लाड से हठी, खेलते हुए सिंह के बच्चों से युक्त थ, जिसका आंगन प्रतिबिम्बित हुए मानों बहुत अधिक रुधिर देखने से उत्पन्न मूर्छा के कारण गिरे हुए, अस्त समय के कारण लाल सूर्य से अधिक रुधिर के प्रवाहों से चिपचिपा कर दिया गया था, जो लटकते हुए और दीपक के धुएं से रंगे हुए वस्त्रों वाले, गुंथी हुई, मयूर–कंठ के वलयों कंठो की पंक्ति वाले, मिट्टी से पाण्डु किये गये घंटों की माला को धारण करने वाले और सीसे के सिंह के मुख के मध्य में स्थिर मोटे लोहे के कांटे ये युक्त दांत के दण्ड की अर्गल गले हुए एवं शोभा–समान पीले–नीले और लाल दर्पणों में चमकती हुई गोलियों की माला से युक्त किवाड़ों के जोड़े की धारण करने वाले गर्भगृह के द्वार–देश से सुशोभित हो रही थी ....
..................चन्दन से व्याप्त चमकते हुए फलों और पल्लवों से युक बेल के पत्ते की मालाओं से, मानों बालकों के मुण्डों की मालाओं से, जिसका श्रृङ्गार किया गया था, जो अपने अंगों से जिन अंगो की शोणित के समान लाल अथवा शोणित से लाल कदम्ब के गुच्छों से पूजा की गई थी अतः जो मानो पशुओं की बलि के नगाड़ों की गम्भीर ध्वनि के आनन्द से उत्पन्न हुए रोमाञ्च से युक्त प्रतीत होते थे।[1]

---

[1] तदभिमुखश्च किंचिदध्वानं गत्वा केतकी सूची खण्डपाण्डुरेण वनद्विरददन्तक वाटेन परिवृत्ताम् .... शोणित ताम्रकदम्बस्तबक कृतार्चनैश्च पशूपहार पटह पटुरटित रसोल्लसितरोमाञ्च रिवाङ्गैः।

— कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ ८२५–८३।

अद्भुत रस –

कादम्बरी की कथा में शुक द्वारा कथा का कहना, दिव्यपुरुष का पुण्डरीक को आकाश में ले जाना आदि कथाओं में अद्भुत रस का परिपाक है। आचार्य विश्वनाथ ने अद्भुत रस की परिभाषा अधोलिखित रूप में व्यक्त किया है

अद्भुतो विस्मयस्थायि भावो गन्धर्व दैवतः।। २४२।।
पीतवर्णो वस्तु लोकातिगमालम्बनं मतम्।
गुणानां तस्य महिमा भवेद्दीपनं पुनः।। २४३।।
स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चगद्गदं स्वर संभ्रमाः।
तथा नेत्र विकसाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः।। २४४।।
वितर्क वेग संभ्रान्तिहर्षाद्या व्याभिचारिणः।[1]

अर्थात् 'अद्भुत' वह रस हे जिसे 'विस्मय' के स्थायी भाव का अभिव्यञ्जन कहा करते हैं। इसका वर्णपीत है। इसके देवता गन्धर्व हैं। इसका आलम्बन अलौकिक वस्तु हैं। अलौकिक वस्तु का गुण–कीर्तन इसका उद्दीपन है। स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, गद्गद् स्वर, संभ्रम, नेत्रविकास आदि–आदि इसके अनुभाव हैं। इसमें वितर्क, आवेग, संभ्रम, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव परिपोषण का काम करते हैं।

कादम्बरी की कथा ही अद्भुत रसमय है। प्रारम्भ में ही शुक का वर्णन आता है। वह स्वयं आया पढ़ता है। राजा के पूछने पर अपना सारा वृत्तान्त बताता है। कादम्बरी के भवन में भी शुक–सारिका के वार्तालाप की योजना की

---

[1] साहित्यदर्पणः तृतीयः परिच्छेदः कारिका २४२–२४४

गयी है। कादम्बरी के पात्र तीन–तीन जन्मों में जन्म लेता है और इसके बाद शुक–योनि में आता है। चन्द्रापीड, जो चन्द्र का अवतार हैं, शूद्रक के रूप उत्पन्न होता है। इन्द्रायुध अश्व के वर्णन में अद्‌भुत रस का अनोखा वर्णन है। पत्रलेखा इन्द्रायुध घोड़े को लेकर अच्छोद सरोवर में कूद पड़ती है। कपिञ्जल ही शप्त होकर इन्द्रायुध के रूप में अवतीर्ण हुआ था। महाश्वेता की तपस्या का प्रभाव अद्‌भुत है। वह वृक्षों के नीचे पात्र लेकर घूमता है तो फल से भर जाता है। जाबालि के तपश्चर्या का प्रभाव भी आश्चर्यमय है। शुक को देखकर वे कहते हैं – 'स्वस्यैवाविनयस्य फलमनेनानुभूयते'। वे शुक के पूर्वजन्म की कथा बताते हैं। चाण्डालकन्या का भी स्वरूप छिपा हुआ है। वह लक्ष्मी है। वह अपने पुत्र पुण्डरीक की रक्षा के लिए प्रयत्न करती है। कथा की योजना भी अद्‌भुत है। सम्पूर्ण कादम्बरी का कथानक रहस्य से परिपूर्ण विस्मयमय है।

कादम्बरी ने इन्द्रायुध अश्व का वर्णन अत्यन्त मनोरम है–

जो विशाल आकार का था, जिसकी पीठ के भाग को हाथ उठाये हुए पुरुष द्वारा प्राप्त किया जा सकता था जो मानो सम्मुख आये हुए सम्पूर्ण आकाश पिये जा रहा था, जो अत्यन्त कठोर, बार–बार उदर–रन्ध्र को कँपाते हुए भवन के मध्य भाग को भरने वाले हेषारव से मानो झूठे वेग के अभिमानी गरूड़ का तिरस्कार का रहा था, जो बहुत दूर तक उठे हुए और वेग को रोकने से बढ़े हुए क्रोध से घुर–घुर करते हुए विशाल नथुनों से युक्त शिरों भाग से मानो अपने दर्प के कारण तीनों भुवनोंका उल्लंघन करने का विचार कर रहा था। जिसका शरीर काली, पीली, हरी और गुलाबी, इन्द्रधनुष का अनुकारण करने वाली रेखाओं से चित्रित था, कैलास पर्वत के तटों के आघात के कारण गेरू आदि धातुओं की धूल से सफेद–लाल महादेव के बैल जैसा प्रतीत होता था, जो

असुरों के रूधिर की कीचड़ की रेखाओं से लाल हुए केसर वाले पार्वती के सिंह जैसा प्रतीत होता था, जो निरंतर फड़कते हुए नथुनों से निकली हुई सू–सू ध्वनि से ऐसा प्रतीत होता था मानो अत्यन्त वेग से पी हुई वायु को नासिका विवर से निकाल रहा था, जो अन्दर स्रवलित होती हुई और मुखर लगाम के पैने अग्रभाग के क्षोभ के कारण उत्पन्न लार के जल से पैदा हुए केन–पल्लव का मानो समुद्र में निवास के समय पिये गये अमृत– रस की घूँटों को उगल रहा था, जो अत्यन्त विशाल और मांस–रहित होने के कारण मानो उत्कीर्ण मुख को धारण किये हुए था, पद–पद पर बजती हुयी रत्न मालाओं वाले, मोटे मोतियो से भरे हुए लाल अश्वालङ्कारों से अलङ्कृत था।[1] इन्द्रायुध के आश्चर्यमय निर्माण या उसके कार्यो का वर्णन किया गया है–

जो इन्द्र नील मणि से रचित पाठपीठ का अनुकरण करने वाले, मानो काजल की शिला से रचित, निरन्तर उठने–गिरने से उत्पन्न अग्रभाग की विषम और तीक्ष्ण ध्वनि वाले, और वसुन्धरा का जर्जरित करने वाले मोटे खुरों से मानों मृदंग बाजे का अभ्यास कर रहा था, जिसकी जंघाओं का मानो काटकर बनाया गया था, जिसकी छाती का मानो विस्तार किया गया था, जिसके मुख को मानो चिकना किया गया था, जिसकी ग्रीवा को मानो फैलाया गया था, जिसके पार्श्वों का मानो खरीद कर बनाया गया था, जो जघन भाग में मानो दुगना कर दिया गया था, जो मानो गरुड़ का वेग से चलने में प्रतिद्वन्द्वी था, जो मानो तीनों लोकों में संचरण में वायु का सहायक साथी था, जो मानों इन्द्र के घोड़े

---

[1] अतिप्रमाणम्, ऊर्ध्वकरपुरुषप्राप्य पृष्ठ भागम्
अतिबन्तमिव .... अति कुटिलकनकपत्रलत प्रतानभङ्गुरेण पदे–पदे रणिरत्नमालेन स्थूलमुक्ताफल प्रायेण।

– कादम्बरी प्रथमोभागः पृ० ३०३–३०६

उच्चैःश्रवाः के अंश का अवतार था, जो मानो वेग का सहपाठी था, जिस प्रकार विद्याधरों का राज्य चक्रवर्ती राजा नरवाहन दत्त के योग्य था इसी प्रकार जो केवल चक्रवर्ती नर अर्थात् राजा का वाहन बनने के लिए उचित था और जो सारे संसार द्वारा अर्धदान–योग्य सूर्योदय के समान सारे संसार के मूल्य के योग्य था।[1]

इन्द्रायुध के आश्चर्यजनक कार्यों को देखकर चन्द्रापीड विस्मित हो जाता है वह उसे उच्चैःश्रवा से भी बढ़कर मानता है। उसकी दृष्टि में इन्द्रायुध त्रिभुवन में दुर्लभ रत्न है। उस पर चढ़ने में चन्द्रापीड को शङ्का होती है। अच्छोद सरोवर के वर्णन में अप्रभुत रस का सुन्दर वर्णन किया गया है। आच्छोद नाम का सरोवर देखा जो मानो तीनों लोकों की लक्ष्मी का मणि–रचित दर्पण था, जो मानो पृथ्वी देवी का स्फटिक–रचित भूमि गृह था जो मानो सागरों के जल के निकलने का मार्ग था, जो मानो दिशाओं के रस का प्रवाह था, जो मानो आकाश–तल के अंश का अवतार था, जो द्रव्यत्व को प्राप्त हुआ कैलास पर्वत था, जो मानो पिघला हुआ हिमालय पर्वत था, जो मानो रस बना हुआ चन्द्रमा का प्रकाश था, जो मानों जल बना हुआ शिवजी का अट्टहास था, जो मानो सरोवर के रूप में स्थित हुआ त्रिभुवन के पुण्य की राशि था, जो मानो जल के आकार में परिणत हुआ वैदूर्य (मणि) के पर्वत का समूह था, जो मानो द्रव बनकर एक स्थान पर गिरा हुआ शरद् के बादलो का समूह था, जो मानो वरूण का दर्पण था, जो स्वच्छता के कारण मानो मनियों के मनों से, मानो सज्जनों के

---

[1] इन्द्रनीलमणिपाद पीठानुकारिभिरञ्जनशिला घटितैरिवानवरत पतनोत्पतंन जनित................. विद्याधरराज्यमिव चक्रवर्तिनर वाहनोचितम्, सूर्योदयमिव सकल भुवनर्घार्हम् अश्वातिशयमिन्द्रायुधमहाक्षीत्।

— कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ ३०७–३०६

गुणों से, मानो हिरन के नेत्रों की कान्ति से अथवा मानो मोतियों की किरणों से निर्मित था, जो पूरी तरह से किनारों तक भरा हुआ था, अन्दर सम्पूर्ण वस्तुओं के स्पष्ट दिखलाई देने के कारण रिक्त सा प्रतीत हो रहा था, जिसकी वायु द्वारा उठाइ गई जल–तरंगों के जल –कणों की धूल से उत्पन्न होने वाले सब ओर स्थित सहस्त्रों इन्द्र–धनुषों से मानो रक्षा की जा रही थी, जो खिले हुए कमलों वाले अपने मध्य भाग से प्रतिबिम्ब के बहाने अन्दर प्रविष्ट हुए जलचरों सहित वन, पर्वत, नक्षत्र और ग्रहों के समूह वाले उदर से त्रिभुवन का धारण करते हैं, जो समीपवर्ती कैलाश से उतरे हुए भगवान शिव के सैकड़ों बार अन्दर जाने और बाहर आने के क्षोभ से हिले हुए .... दिन में भी जिन्हें रात्रि की शंका उत्पन्न होती थी, ऐसे चक्रवाक के जोड़ों द्वारा त्यागे जाते हुए नील–कमलों के वन से जो गहन था .... जहाँ से अनेक बार जल से उतरी हुई सावित्री द्वारा देव–पूजन के लिए सहस्त्रों कमल तोड़े गये थे, जो सहस्त्रों बार सप्तर्षि–मण्डल द्वारा स्नान करने से पवित्र किया गया था, जहाँ का जल सर्वदा सिद्ध–वधुओं द्वारा धोये गये कल्प–लता के वल्कलों से पवित्र था, जिसका जल–क्रीड़ा की इच्छा से आई हुई कुबेर के अन्तःपुर की स्त्रियों के कामदेव के धनुष–चक्र की आकृति वाले, अत्यन्त विशाल नाभि–मण्डलों द्वारा पिया गया था, जिस में कहीं पर वरूण के हंस द्वारा कमलवन का मकरन्द ग्रहण किया गया था। कहीं दिग्गजों के स्नान द्वारा पुराने मृणाल–दण्डों को जंर्जरित किया गया था।[1]

---

[1] प्रविश्य चतस्य तरुखण्डस्य मध्य भागे।
मणिदर्षणामिव त्रैलोक्ययलक्ष्म्याः .... क्वचिद्वरूणहंसोपात्तकमलवनमकरन्दम्,
क्वचिद्वग्गज मज्जनजर्जरित जरन्मृणा लदण्डम्।

— कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ ४७०–४७४

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त उदाहरणों में अद्भुत रस का सम्यक्रूपेण पालन किया गया है। इन्द्रधनुष, अच्छोद सरोवर इत्यादि से विस्मय उत्पन्न हो रहा है।

शान्त रस –

शान्तरस का निरूपण आचार्य विश्वनाथ ने अपनी कृति साहित्यदर्पण में निम्नांकित रूप में किया है –

शान्तः शमरस्थायिभाव उत्तम प्रकृतिर्मतः।।

कुन्देन्दु सुन्दरच्छायः श्री नारायण दैवतः।

अनित्यत्वादि नाऽशेषवस्तुनिः सारता तुया।।

परमात्मा स्वरूपं वा तस्यालम्बनमिष्यते।

पुण्याश्रम हरिक्षेत्र तीर्थरम्यवनादयः।

महापुरुष सङ्गाधास्तस्योद्दीपनरूपिणः।।

रोमाञ्चाद्यानुभावास्तथा स्युर्व्यभिचारिणः।।

निर्वेद हर्ष स्मरणं मतिभूतढयाढयः।[1]

अर्थात् 'शान्त' वह रस है जो कि 'शम' रूप स्थायी भाव का आस्वाद हुआ करता है। इसके आश्रय उत्तम प्रकृति के व्यक्ति हैं। इसका वर्ण कुन्द श्वेत अथवा चन्द्र श्वेत है। इसके देवता श्री भगवान नारायण हैं। अनित्यता कि वा दुःखमयता आदि के कारण समस्त सांसारिक विषयों की निःसारता का ज्ञान अथवा परमात्म स्वरूप का ज्ञान ही इसका 'आलम्बन' विभाव है। इसके उद्दीपन है पवित्र आश्रम, भगवान की लीलाभूमियां तीर्थस्थान, रम्यकानन,

---

[1] साहित्यदर्पणः तृतीयः परिच्छेदः का० २४५–२४८ पृष्ठ २६३

साधु–सन्तों के संग आदि–आदि। रोमाञ्च आदि इसके अनुभाव हैं और इसके व्यभिचारी भाव है– निर्वेद, हर्ष, स्मृति, मति, जीवदया आदि।

कादम्बरी में महर्षि, तत्ववेता, त्रिकालदर्शी जाबालि का वर्णन शान्त रस का मनोरम उदाहरण है– "अहो, तप का प्रभाव कैसा अद्भुत है। इसकी यह मूर्ति शान्त होते हुए भी तपाये हुए स्वर्ण के समान स्वच्छ है अतः देदीप्यमान विद्युत् के समान नेत्रों के तेज को नष्ट कर देती है, निरन्तर उदासीन होते हुए भी प्रभाव के कारण प्रथम बार आये हुए व्यक्ति में भय सा उत्पन्न करती है। थोड़े से तप वाले तपस्वियों का भी तेज सूखे हुए नल काश–कुसुमों में पड़ी अग्नि की भाँति चञ्चल वृत्ति वाला, स्वभाव से नित्य असत्य होता है। फिर इस प्रकार के सफल भुवन–तल से वन्दित चरणों वाले, निरन्तर तप से मलों का नाश करने वाले दिव्य–चक्षु से अखिल जगत् का करतलपट रखे हुए ऑवले की भाँति देखने वाले और पापों का क्षय करने वाले जाबालि जैसे भगवान की तो बात ही क्या ? महामुनियों का नाम भी पुण्य जनक है, फिर दर्शनों का तो क्या कहना ? यह आश्रम धन्य है जहाँ यह अधिपति है । अथवा सम्पूर्ण भुवन–तल ही धन्य है जो इस पृथ्वी तल के ब्रह्मा से अधिष्ठित है। ये मुनि सचमुच पुण्य के भागी हैं, जो रात–दिन अन्य व्यापारों को त्यागकरं जाबालि के मुख को देखने में निश्चल दृष्टि युक्त होते हुए, पवित्र कथाओ को सुनते हुए, मानो इस दूसरे ब्रह्मा की सेवा करते हैं। सरस्वती भी धन्य है जो इसके निन्तर अत्यधिक प्रसन्न करुणारूपी जल को बहाने वाले, अगाध गम्भीरता वाले, मानस में हंसिनी के समान सुन्दर द्विजो से घिरी हुई मुख रूपी कमल के सम्पर्क का अनुभव करती हुई करती है, ब्रह्मा के चार मुखरूपी कमलों में रहने वाले वेदों द्वारा मानो बहुत दिनों बाद यह दूसरा स्थान प्राप्त किया गया है। निश्चय ही इस

मुनि से अधिष्ठित पृथ्वीतल का देखकर इस समय गगनतल भी सप्तर्षि–मण्डल के निवास स्थान होने का अभिमान न रखता होगा। [1]

यह मुनि मानो करुणारस का प्रवाह है। संसार रूपी सिन्धु के पार उतरने के लिए सेतु है। क्षमारूपी जल का आधार है। तृष्णा रूपी लताओं के गहन वन के लिए कुल्हाड़ी है, सन्तोष रूपी अमृत रस का सागर है। सिद्धि का मार्ग का शिक्षक है अशुभ ग्रहो का अस्ताचल है, शान्ति रूपी वृक्ष की जड़ है, प्रज्ञारूपी चक्र का केन्द्र है, धर्म रूपी ध्वजा को धारण करने वाला बॉस है। सब विद्याओं में प्रवेश का घाट है, लोभ रूपी समुद्र की वाऽवाग्नि है, शास्त्र रूपी रत्नों की कसौटी है, आसक्ति रूपी पल्लवों के लिए दावानल है, क्रोधरूपी सर्प के लिए मन्त्र है, मोह रूपी अन्धकार के लिए सूर्य है, नरक के द्वारों के लिए अर्गला बन्ध है, सत् व्यवहारों का कुल भवन है, मङ्गलों का स्थान है, मद के विकारों की अभूमि है, सन्मार्गों का प्रदर्शक है, सज्जनता का उत्पत्ति स्थान है, उत्साह रूपी चक्र की नेभि धुरी है, शक्ति का आश्रय है, कलियुग का शत्रु है, तप का भण्डार है, सत्य का सखा है, सरलता का निवास है, पुण्य–समूह का उत्पत्ति स्थान है, ईर्ष्या का स्थान न देने वाला है, विपत्ति का शत्रु , पराजय का स्थान नहीं, अभिमान के प्रतिकूल है, दीनता द्वारा सुखों से पराङ्मुख है इन भगवान जाबालि की कृपा से ही वह तपोवन ऐसा है जिसमें वैर शान्त हो गया है और ईर्ष्या दूर हो गई है। अहो महात्माओं का प्रभाव कितना अद्‌भुत है क्योंकि यहाँ पर पशु भी

---

[1] अहो प्रभावस्तपसाम् इयमस्य शान्तापि मूर्तिरुतप्तकनकावदाता परिस्फुरन्ती सोदामिनीव चक्षुषः प्रतिहन्ति तेजांसि। सततमुदासीनावि .... धरणि तल मनेनाधिष्ठितमालोक्य न वहति नूनमिदानी सप्तर्षिमण्डलानिवासाभिमानमम्बर तलम्।

— कादम्बरी पूर्वभागः पृष्ठ १६२–१६५

अपनी परम्परागत विरोध छोड़कर शान्त आत्मा वाले होते हुए तपोवन में रहने का सुख अनुभव करते हैं।[1]

उपर्युक्त ऋषि जाबालि वर्णन में शान्तरस का अक्षरशः पालन किया गया है। शमरूप स्थायी भाव का आस्वाद हुआ है। इसके आश्रय महर्षि जाबालि हैं जो उत्तम प्रकृति के व्यक्ति हैं। जाबालि के दुःख–सुख से परे होने का ज्ञान ही 'आलम्बन' विभाव है। जाबालि का पवित्र आश्रम ही 'उद्दीपन' है। तपस्या के प्रभाव का देखकर रोमाञ्च हो जाता है जो अनुभाव हे। आश्रम में निर्वेद व्याप्त है तथा जीवों पर दया की जाती है ये व्यभिचारी भाव हैं।

इस प्रकार बाणभट्ट द्वारा कादम्बरी में वर्णित रसों का अनुशीलन करके हमने पाया कि ये काव्य रचना के सभी पक्षों में सिद्ध हस्त हैं इन्होंने जहाँ आलंकारिक वर्णन किया है वहाँ रसों का वर्णन कहीं से भी कम नहीं है। यही कारण है कि उनकी कथा नवोदा बधू की तरह हासविलासादि की चेष्टाओं से अनुरक्त हो स्वयं आकर सहृदय पाठकों को आनन्दातिरेक से परिपूरित कर देती है। इनकी कल्पना शक्ति अपार है इसका हम लोगों ने अद्भुत रस में अवलोकन किया है। बाणभट्ट एक अप्रतिम प्रतिभाशाली विद्वान् तथा उत्कृष्ट कवि हैं। कवि अपनी रचना करने में स्वतन्त्र एवं स्वयं ही प्रजापति होता है जैसा कि व्यासजी ने कहा है कि –

---

[1] एष प्रवाहः करुणा रसस्य, संतरण सेतुः संसारसिन्धोः, आधारः क्षमाम्भसाम्, परशुस्तृष्णा लतागहनस्य .... अहो प्रभावो महात्मनाम्। अत्र हि शाश्वति कमपहाय विरोधमुप शान्तात्मानस्ति यञ्चोऽपि तोपवन वसतिसुखमनु भवन्ति।

– कादम्बरी पूर्वभागः पृष्ठ १६२–१६५

अपारेकाव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।

यथाऽस्मैरोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।।[1]

इस बात का बाणभट्ट ने अपनी रचना में अक्षरशः पालन किया है। उन्होंने अपनी कल्पनाशीलता को कहीं भी विराम नहीं दिया है उनका वर्णन अपार है।

कादम्बरी के रस सहृदयों को आकर्षित किए बिना नहीं रह सकते इस परिप्रेक्ष में भूषणभट्ट का कथन वास्तविकरूप में चरितार्थ होता है—

कादम्बरीरसभरेण समस्त एव।

मत्तो न किंचिदपि चेतयते जनोऽयम्।।

कुछ भारतीय समालोचकों ने बाणभट्ट की अतुलनीय प्रशंसा की है। त्रिलोचन ने तो कहा है कि जिसको बाण की कविता का आस्वाद लग जाता है वे अन्य कवियों के काव्य—प्रयास को लेकर चपलता ही मानते हैं—

हृदि लग्नेन बाणेन यन्मदोऽपि पदक्रमः।

भवेत्कवि कुरंगाणां चापलं तत्र कारणम्।।

सोमेश्वर ने अपनी कीर्ति कौमुदी में कादम्बरी की प्रशंसा में कहा है कि कादम्बरी का श्रवण करके कवियों का मौनाश्रित होना उचित ही है अन्यथा बाण की वाणी से कानों का पवित्र होना सम्भव नहीं होगा —

युक्त कादम्बरी श्रुत्वा कवयों मौनमाश्रिताः।

बाणध्वनावनध्यायो भवतीति स्मृतिर्यतः।।

□□□

---

[1] संस्कृत गद्यकार बाण पृष्ठ ५०

सप्तम अध्याय

कादम्बरी में प्रयुक्त विविध अलङ्कारों का विवेचन

कादम्बरी में प्रयुक्त विविध अलंकारों का विवेचन

बाणभट्ट की गद्य–रचना में अलङ्कार –योजना एवं उसकी सफलता ने गद्य–रचना की उत्कृष्टता में सोने में सुगन्धित उत्पन्न कर दी है।

बाण की रचना 'कादम्बरी गद्य का साहित्यिक मूल्यांकन' अनुसंधेय में जितने भी महत्वपूर्ण वर्णन प्राप्त होते हैं, उनमे अलङ्कारों का प्रयोग किया गया है।

साहित्यिक दृष्टि से किसी भी काव्य की समीक्षा के लिए काव्य के विभिन्न तात्विक अंगों पर दृष्टिपात् करना अतीव आवश्यक हो जाता है। काव्य, महाकाव्य, नीतिकाव्य, खण्डकाव्य, रूपकगद्य, पद्यचम्पू, स्तोत्र, प्रकीर्ण, शतक आदि प्रभेद एवं भेदों के साथ श्रव्य एवं दृश्य के रूप में समाहित किए जाते हैं। मुख्यतः **आचार्य मम्मट, श्री विश्वनाथ, पं०जगन्नाथ** आदि ने अपना–अपना पक्ष प्रस्तुत किया है जो संक्षेपतः प्रासंगिक एवं संग्राहय है।सारांश के रूप में आचार्य मम्मट ने शंकार्थ को काव्यमाना है, आचार्य विश्वनाथ ने रसात्मक वाक्य को काव्यवाद पर सिंहासनारूढ़ किया है तो पं० जगन्नाथ ने शब्द को काव्य का स्वरूप बताया है।

विचार करनेपर निष्कर्ष निकलता है कि शब्द और अर्थ काव्य के शरीर हैं। शरीर के रूप में आत्म पक्ष को लेकर विद्वानों में मतभेद रहा है, किन्तु **मम्मट**, **विश्वनाथ** ने किसी न किसी रूप में रस को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया है। शंकार्थ काव्य की शोभा बढ़ाने वाले साधनों पर भी विचार किया गया है। इन शोभावर्धक साधनों का जितना महत्व पद्यात्मक काव्य में हैं, उससे कम महत्व गद्यात्मक काव्य में नहीं है।

स्वभाव से सुन्दर वनिता भी अलङ्कार क बिना मनोहरिणी नहीं होती।

'न कानतमपि निर्भूषं विभाति वनितामनम्'   वक्रीक्तिजीवितम्।

– उन्मेष १, का० १५ (प्रथमोन्मेष–कुन्तल)

यह कथन अनुसंधेय गद्यकाव्य 'बाणभट्ट के कादम्बरी का साहित्यिक मूल्यांकन' विषय से सम्बद्ध है। अनुसंधेय परिकल्पित अध्यायों के अनुसार अलङ्कार की दृष्टि से साहित्यिक समीक्षा की संगति उपस्थापित की गयी है।

उपर्युक्त संगति–प्रशस्ति के आधार पर आनन्दवर्धक का यह कथन–

आलोकार्थी यथा दीपशिखायाः दीपशिखायं यत्नवान् जनः।
यदुपायतया तद्वदर्थे वाच्ये तदाहृतः।।

– ध्वन्यालोकउद्योत १, कादम्बरी १

इस परिप्रेक्ष में काव्य के शोभावर्धन साधनों में अलङ्कार का विशेष महत्व है। अलङ्कार तीन प्रकार के माने जाते हैं–

१. शब्दालङ्कार   २. अर्थालङ्कार   ३. उभयालङ्कार

ये त्रिप्रकारात्मक अलङ्कार विद्वानों द्वारा विभिन्न भेद–प्रभेदों के माध्यम से लक्षण–ग्रन्थों में समुद्रधृत है। प्रसंगतः यहाँ पर केवल अलङ्कार के सामान्य लक्षण उद्धृत किया गया है। जिन अलङ्कारों का प्रस्तुत अनुसंधेय गद्यकाव्य से सम्बंध है तथा जिन अलङ्कारों का गद्यकार महाकवि बाण ने कादम्बरी में उपयोग किया है तथा साथ ही प्रामाणिक समालोचकों ने जिन अलङ्कारों को दर्शाया है। अनुसंधान और विकसित करने की दृष्टि से कुछ और भी अलङ्कारों का अन्वेषण करके उनके लक्षणों को दिया गया है। यथास्थान प्राप्त अलङ्कारों का लक्षण देते हुए यथा साध्य समन्वय के साथ दर्शाने का प्रयास किया गया है।

बाणभट्ट ने कादम्बरी में अनेक अलङ्कारों का प्रयोग किया है। अलङ्कारों के प्रयोग में वे दक्ष हैं। अलङ्कारों की विच्छित्ति द्वारा वर्णन–प्रक्रिया का एक ढ़ाँचा सामने आता है, जो बाण के अनुभव से पूर्णतः प्रभावित है। यह बात स्पष्ट है कि अलङ्कार बाण को आकृष्ट करते हैं, किन्तु वे अलङ्कारों की परिधि के बाहर भी विचरण करते हैं और सुन्दर गद्य का प्रतिमान प्रस्तुत करते हैं। बाण अपनी साधना की पूंजी की रक्षा करते हुए अलङ्कारों की वैचित्र्य–मण्डित वीथियों की सृष्टि करते रहते हैं। कालिदास के अलङ्कार प्रयोग का मार्ग निराला है। अलङ्कारों का सञ्चरण तथा अवस्थान महाकवि की कृतियों में अत्यन्त स्वाभाविक तथा आह्लादक है। सुबन्धु **'प्रत्यक्षर श्लेषमय प्रबन्ध'** के चक्कर में पड़कर रसास्वाद की स्वाभाविक प्रक्रिया के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करते हैं और कृत्रिमता का जाल फेलातें हैं। बाण का मार्ग इन के मध्य का है। वह **बाण** द्वारा निर्मित किया गया है। बाण के पूर्व वक्रोक्तिरहित स्वाभाविक रचना को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। इस प्रकार के कवियों को बाण ने असंख्य श्वानों के समान कहकर नवीन कल्पनाओं की उद्‌भावना करने वाले कवियों की विरलता स्वीकार करते हुए लिखा है–

सन्ति श्वान इवासंख्या जातिभाजो गृहे–गृहे।
उत्पादका न बहवः कवयः शरभा इव।।[1]

बाण अपनी प्रतिभा तथा श्रृङ्गार के लिए प्रसिद्ध हैं, उसमें रंङ्ग–रेखा का सौष्ठण है। वे वर्णनीय वस्तु के प्रत्येक अवयव का उन्मीलन करते जाते हैं और आकर्षण रंङ्गों के आधान से उसे सुन्दर बनाते हैं। पहले वस्तु के अवयवों के

---

[1] हर्षचरितम् प्रथम उच्छ्‌वास : १/५ – हिन्दी व्याख्याकार पं० जगन्नाथ पाठक साहित्यचार्यः

स्वरूप का वास्तविक चित्र खींचते हैं और फिर अलङ्कारों के ललित विन्यास से उसे अधिक कमनीय बनाते हैं। एक वर्णन की उपस्थापना में वे एक ही अलङ्कार का अनेक बार प्रयोग करते हैं। इससे एकरसता आती है और पाठक एक प्रकार की भाव–भूमि पर उतरकरलीन हो जाता है। इसके बाद दूसरे अलङ्कार का प्रयोग करते हैं। यह क्रम बढ़ता जाता है और एक ही वर्णन में विविध अलङ्कारों की छटा अपनी कोमल अभिव्यञ्जनाओं के साथ स्फुरित होने लगती है।

बाण के अलङ्कारों के निरूपण से ज्ञात होता है कि **वे स्वभावोक्ति, श्लेष, परिसंख्या, दीपक और उत्प्रेक्षा के प्रयोग को महनीय मानते हैं।**[1] इन अलङ्कारों का सुन्दर प्रयोग कवि की कृतियों में उपलब्ध होता है। कवि का मन उत्प्रेरक्षा के विन्यास में विशष रूप से रमता है। जिस प्रकार कालिदास उपमा के प्रयोग में दक्ष है उसी प्रकार बाण उत्प्रेक्षा के निर्वाह में अद्वितीय है। जैसे 'उपमा कालिदासस्य' यह सूक्ति संस्कृत साहित्य संसद में नितान्त विद्युत है उसी प्रकार गद्य साहित्य में 'उत्प्रेक्षा बाणभट्टस्य' इस सूक्ति की कमनीयता सभी समालोचकों ने प्रायः स्वीकार की है। इस आधार पर अर्थालंकारों की समीक्षा की संगति में सर्वप्रथम उत्प्रेक्षा का लिया जाना प्रसंगतः प्राप्य है, किन्तु मम्मटाचार्य जैसे लाक्षणिक विद्वानों ने अपने ग्रन्थ में उपमालङ्कार को ही सभी अलङ्कारों के अन्तराल में आधार भूत उपजीव्य माना है।

---

[1] 'नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।'

— हर्षचरित १/८, पृष्ठ –६।

'हरन्त कं नोज्ज्वलदीपकोपमैर्नवैः पदार्थेरुपपादिताः कथाः।
निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयो महास्त्रजश्चम्पककुड्मलैखि।।'

— कादम्बरी पृ० –७ श्री निवासकृत

जब बाण की कल्पना बन्धन तोड़कर उड़ने लगती है, तब वे उत्प्रेक्षा का प्रयोग करते हैं। वे उत्प्रेक्षा का प्रयोग इसलिए भी किया करते हैं कि विषय वस्तु की कल्पना जन्य सभी रेखायें उभर आयें, उसके पार्श्व के सभी पदार्थ दिग्गोचर हो जाएं, उसके सम्पर्क में आने वाले विविध पदार्थो पर उसके परिणाम की छाया देखी जा सके और नाना परिप्रेक्षयों में उसकी गतियों, आकारों, भङ्गमाओं आदि की विभावना की जा सके। बाण ही ऐसे कवि हैं, जिन्होंने उत्प्रेक्षालङ्कार की सीमा का दर्शन किया है और उसके विस्तृत और उन्नत प्राकार से घिरे हुए महल, उद्यान, सरोवर क्रीड़ा–शैल का अवलोकन किया है। उत्प्रेक्षा की सुन्दर आभा से उन्होंने पात्रों को विभूषित किया है। बाण की उत्प्रेक्षा का चारू चयन और विन्यास हृदयाकर्षक है। बाण अलौकिक सौन्दर्य, असीमित क्षेत्र और रहस्यमय वस्तु का वर्णन करने लगते हैं, तब उत्प्रेक्षा को प्रयुक्त करते हैं। वे इस विषय में विज्ञ है कि उत्प्रेक्षा के द्वारा वर्णनीय वस्तु के अन्तराल में निलीन अदृश्य रूप की अवतारणा की जा सकती है। बाण ने किसी वस्तु का वर्णन ही नहीं किया, अपितु प्रत्येक वस्तु का सजीव चित्र उपस्थित कर दिया है। उनके श्लेषमूलक उपमा प्रयोग, विरोधाभास और परिसंख्या से प्रयोगों में क्लिष्टता, दुर्बोधता और बौद्धिक परिश्रम अधिक है।[१]

हारीत तथा जाबालि के वर्णन में बाण ने वर्णन के अन्त में विरोधाभास वाली शाब्दी क्रीडा उपस्थित की है, उन्हें हारीत 'सोया हुआ भी जगा दिखाई देता है (सुप्तोऽपि प्रबुद्धः), वास्तव में वह सुन्दर जटाओं (सा) वाला और

---

[१] यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु च चरितेषु .... मेखलाबन्धों व्रतेषुनेर्ष्याकलहेषु, स्तनस्पर्शो होमधेनुषु न कामिनीषु। यत्र च महाभारते शकुनिवधः पुराणे वायु प्रलपितम्, वयः परिणामेन द्विजपतनम्, ...एणकानां गीतश्रवणव्यसनम् शिखण्डिनां नृत्यपक्षपातः भुजङ्गमानां भोगः।
— संस्कृत कवि दर्शन पृ० ५१०–११

ज्ञानशील है। इसी तरह जाबालि के आश्रम के वर्णन में बाण ने परिसंख्या का प्रयोग किया है, जहाँ मलिनता केवल यज्ञधूमों की थी, चरित्र की नहीं, मेखलाबन्ध केवल यज्ञोकीतादि व्रतों में होता था, कोई खण्डिता कृपापराध नायक को करधनी से नहीं बाँधती थी, स्तनस्पर्श केवल होम धेनुओं का होता था, कामिनियों का नहीं, जहाँ पक्षियों का कोई वध नहीं करता था केवल महाभारत की कथा में शकुनि का वध होता था, कोई भी व्यक्ति वायु प्रकोप के रोग से पीड़ित न था, केवल पुराणो में वायुपुराण सुना जाता था, कोई भी ब्राह्मण (द्विज) अपने कर्त्तव्य से पतित नहीं होता था, केवल वृद्धावस्था के कारण दातों का पतन (द्विजपतन) होता था, और उस तपोवन में कोई भी व्यक्ति गीत, नृत्य या भोगविलास का शौकीन न था, संगीत का व्यसन केवल हिरणों को था, नाचने का गोरों के और भोग (सर्प शरीर) केवल सर्पों के पास था। परन्तु सुबन्धु की तरह बाण इन कलाबाजियों में सदा नहीं फँसते और पहले के वर्ण्य विषय को पूरी ईमानदारी से वर्णित कर देते हैं, तब श्लेष की जटिल पगडंडी का आश्रय लेते हैं। विन्ध्याटवी या अच्छोद सरोवर के वर्णन में भी कवि पहले वहाँ की भीषणता या रमणीयता को पूरा ब्योरेवार उपस्थित करा देता है। भले ही अर्थालङ्कारों के द्वारा ही और उसके बाद विन्ध्याटवी के वर्णन में 'क्रूरसत्त्वादि मुनिजन सेविता, पुण्य वत्यपि पवित्रा' जैसे विरोधाभास के प्रयोग को उपस्थित करता है।

बाण की रचना कादम्बरी से उद्धरण देकर प्रमुख अलङ्कारों के सम्बन्ध में विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है–

अनुप्रास –

अनुप्रास अलङ्कार की परिभाषा साहित्य दपणकार विश्वनाथ ने निम्नवत् किया है–

'अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।' [1]

अर्थात् अनुप्रास वह शब्दालंकार है जिसे स्वर के सादृश्य में भी, शब्द अथवा व्यञ्जन का सादृश्य कहा गया है। इसके पांच भेद हैं–

१. *'अनेक जलचर–पतङ्ग शतसञ्चलन–चलितवाचालवीचिमालम्'।* [2]

— छेकानुप्रास

२. *'सारसितसमदसारसम्'* [3] —छेकानुप्रास

३. *अचकितचकोरचुम्बितमरिचाङ् कुरैः चम्पकपरागपुञ्जपिञ्जर कपिञ्जलजग्धपिप्पलीफलैः, फलभर निकरपीडितदाडिमनीडप्रसूत–कलविङ्कैः।* [4] — वृत्यानुप्रास

यमक –

सत्यर्थे पृथगार्थायाः स्वर व्यञ्जन संहतेः।
क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते।। [5]

अर्थात यमक यह शब्दालंकार है जिसे, सार्थक होने पर भिन्न अर्थवाले स्वर–व्यञ्जन समूह की पूर्वक्रमानुसार आवृत्ति करते हैं।

---

[1] साहित्यदर्पणः दशमः परिच्छेदः पृष्ठ ६६७
[2] कादम्बरी कथामुखम् पृष्ठ २०८
[3] कादम्बरी कथामुखम् पृष्ठ २०७
[4]

[5] साहित्यदर्पणः पृष्ठ ६७२

१. 'यत्र च दशरथ वचनमनुपालयन्नुत्कृष्ट राज्यो दशवदनलक्ष्मी विभ्रमविरामो रामो महामुनिमगस्त्यमनुचरन्' ।[1]

अर्थालङ्कार :-

उपमा -

'साम्यं वाच्यम वैधर्म्य वाक्यैक्य उपमा द्वयोः।'[2]

अर्थात उपमा वह अलंकार है जिसे उपमान और उपमेय का ऐसा साम्य अथवा 'सादृश्य' कहा करते हैं कि स्पष्टतः एक वाक्य में प्रतिवादित रहा करता है और जिसमें वैधर्म्य की कोई चर्चा नहीं हुआ करती।

१. हिरण्यगर्भो भुवनाण्डकादिव क्षपाकरः क्षीरमहार्णवादिव।
अभूत सुवर्णो विनोदरादिव द्विजन्मनामर्थपतिः परिस्ततः।।[3] – मालोपमा

२. 'शरदमिव विकसित पुण्डरीक लोचनाम्, प्रावृषमिव धनकेश जालाम्, मलयमेखलामिव चन्दनपल्लवावतंसाम् नक्षत्रमालमिव चित्रश्रवणाभरण भूषिताम्, श्रियामिव हस्तस्थित कमलशोभाम्, मूर्च्छामिव मनोहारिणीम् .....।'[4] – मालोपमा

३. 'हर इव जितमन्मथः, गुह इवाप्रतिहतशक्तिः, कमलयोनिरिवविमानीकृत राजहंसमण्डलः, जलधिरिव लक्ष्मी प्रसूतिः, गङ्गा प्रवाह इव भगीरथपथप्रवृत्तः, रविरिव प्रतिदिवसोपजाप मानोदयः, मेरूरिव सकलोप जीव्य मानपादच्छायः, दिग्गज इवानवरत प्रवृत्त दानार्द्रीकृतकरः'।[5]

– मालोपमा

---

[1] कादम्बरी कथामुखम् पृष्ठ २०२
[2] साहित्यदर्पण पृष्ठ ६६२
[3] कादम्बरी कथामुखम् श्लोक १३ पृष्ठ ७३
[4] कादम्बरी कथामुखम् पृष्ठ १३३–१३६
[5] कादम्बरी कथामुखम् पृष्ठ ८३

४. 'जीर्णासित भुजङ्ग भोग भीषणं '।[1] — लुप्तोमालङ्कार

५. 'क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इवमदेन नवयौवनेन पदम्।'[2] — रसनोपमा

६. 'विटप इव कोमल वल्कलावृतशरीरः, गिरिरिव समेखलः, राहु–रिवासकृदास्वादित सोमः, पद्मनिकर इव दिवसकर मरीचिपः, नदीतटतरू रिवसततजक्षालनविमल जटः, करिकलभ इव विकचकुमुदददल शकलसित दशनः .... रविरथइव दृढनियमिताक्षचक्र सुराजेव निगूढमन्त्रसाधन–क्षपितविग्रहः जलनिधिरिव करालशङ्ख मण्डलावर्त नाभिगर्तः, भगीरथ इव दृष्टगङ्गावतारः, भ्रमर इव।'[3] — पूर्णोवमालङ्कार

७. 'पुण्डरीककराशिमिव '[4] — उपमा

८. 'परिणत रङ्करोम पाण्डुनि ब्रजति विशालतामाशाचक्रवाले' [5] —लुप्तोपमालङ्कार

उत्प्रेक्षा –

उत्प्रेक्षा अलङ्कार के बिना कादम्बरी की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता था। उत्प्रेक्षा बाण का प्रिय अलङ्कार है। उनकी रचना कादम्बरी में अनेक स्थलों पर इसकी मनोहारिणी छटा दृष्टव्य है। यहाँ कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं, प्रस्तुतीकरण से पूर्व उत्प्रेक्षा अलङ्कार की परिभाषा जानना आवश्यक है। आचार्य विश्वनाथ ने इसका लक्षण निम्न प्रकार से दिया है–

---

[1] कादम्बरी कथामुखम् पृष्ठ २७६
[2] कादम्बरी प्रथमोभागः –पृष्ठ ५३१
[3] कादम्बरी कथामुखम् पृष्ठ ३००
[4] कादम्बरी कथामुखम् पृष्ठ ३३६
[5] कादम्बरी कथामुखम् पृष्ठ २२६

'भवेत्संभावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।'[१] –दशमः परि० प० सा०द०

अर्थात उत्प्रेक्षा वह अलङ्कार है जिसे अप्रकृत के रूप में प्रकृत की सम्भावना कहा करते हैं। इसके प्रथमतः दो प्रकार हैं–

१. वाच्योत्प्रेक्षा २. प्रतीयमानोत्प्रेक्षा

इसमें पहली अर्थात् वाच्योत्प्रेक्षा वह है जिसमें इव आदि उत्प्रेक्षा वाचक पदों का प्रयोग हुआ करता है और दूसरी अर्थात् प्रतीयमानोत्प्रेक्षा वह है जिसमें इव आदि उत्प्रेक्षावाचक पदों का प्रयोग नहीं हुआ करता। इन दोनों प्रकार की उत्प्रेक्षाओं में जो –उत्प्रेक्ष्य' वस्तु है वह चतुर्विध है–

१. जाति २. गुण ३. क्रिया और ४. द्रव्य।

इस प्रकार उत्प्रेक्षा आठ प्रकार की हुई।

१. 'प्रलय कालविघट्टिताष्ट दिग्भागसन्धिबन्धं गगनतलमिव भुवि निपतितम्'[२]

– द्रव्योत्प्रेक्षा

२. 'एकोभूतमिव कालरात्रीणां यामस .... अन्धकारिताशेषकानम्, अनेक सहस्त्र संख्यम्, अतिभयजनकम्, उत्पावेताल'।[३]

– जात्युत्प्रेक्षा

३. 'उत्पत्तिक्षेत्रमिव'[४] – जात्युत्प्रेक्षा

४. 'तरलितदुकूलवल्कयोऽयं चाश्रमलताकुसुम सुरभिपरिमलो मन्दमन्दचारी सशङ्क इवास्य समीपमुपसर्पति गन्हवाहः।'[५] – गुणोत्प्रेक्षा

---

[१] साहित्यदर्पणः पृष्ठ ७३६ दशमः परिच्छेदः

[२] कादम्बरी कथामुखम् पृष्ठ २०७

[३] कादम्बरी कथामुखम् पृष्ठ २५१

[४] कादम्बरी कथामुखम् पृष्ठ १६५

[५] कादम्बरी कथामुखम् पृष्ठ ३५०

५. 'अत्यन्तमुत्फुल्ललोचना हि कुलवर्धना दृश्यते।

देवस्यापीदं प्रियवचन श्रवणकुतूहलादिव।'[1] — हेतूत्प्रेक्षा

रूपक :–

'रूपकं रूपितारोपाद्वि (पो वि) वये निरपह्नवे।'[2]

अर्थात् रूपक वह अलङ्कार है जिसे विषयी अथवा उपमान द्वारा अनवह्वत (न छिपाये गये) विषय (आरोप विषय–उपमेय) पर विषयी (उपमान) का अभेदारोप कहा जाया करता है।

१. 'उदयशैलो मित्रमण्डलस्य उत्पातकेतुरहिततजनस्य।'[3]

२. 'करूणारसस्य संतरणसेतुः संसारसिन्धोः, आधारः क्षमाम्भसाम्, परशुस्तृष्णालतागहनस्य .... महामन्त्रः क्रोधभुङ्गस्य, दिवसकरो मोहान्धकारस्य।'[4] — परम्परित रूपक

३. 'गगनकुट्टिम कुसुमप्रकरे तारागणे।'[5]

ससन्देह :–

'सन्देहः प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्थितः'।[6]

अर्थात् संदेह वह अलंकार है जिसे प्रकृत (उपमेय) में अप्रकृत का कविप्रतिभोत्थापित संशय कहा जाया करता है। यह तीन प्रकार का होता है।

---

[1] कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ २६१
[2] साहित्यदर्पणः दशमः परिच्छेदः पृष्ठ ७१५
[3] कादम्बरी कथामुखम् पृष्ठ ८७
[4] कादम्बरी कथामुखम् पृष्ठ ३५२
[5] कादम्बरी कथामुखम् पृष्ठ २८५
[6] साहित्यदर्पणः दशमः परिच्छदेः पृ० ७२८

'किं खलु भगवानोषधिपतिरकाण्ड एवं शीतांशुरुदितो भवेत्, उत यन्त्रविक्षेपविशीर्यमाण पाण्डुरधारासहस्राणि धारागृहाणि मुक्तानि, आहो खिदनिलविप्रकीर्यमाणसीकरधवलितभुवनाम्बर सिन्धुः कुतूहलाद्धरातलमवतीर्णा।'[1]

हार की प्रभा को देखने पर चन्द्रापीड के मन में सन्देह होता है – क्या असमय में भगवान चन्द्रमा का उदय हो गया ? या यन्त्र द्वारा सहस्त्रों श्वेत जलधाराएं विकीर्ण की गयी ? या पवन द्वारा विक्षिप्त सीकरों से भुवन को धवलित करने वाली मन्दाकिनी भूतल पर उतर गयीं ?

यहाँ वर्णन संशय में ही समाप्त हो जाता है, अतः शुद्ध सन्देह है।

समासोक्ति :–

'समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यलिङ्गविशेषणैः।

व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः।। ५६।।'[2]

अर्थात् समासोक्ति वह अलङ्कार है जिसे 'सम्' अर्थात् (प्रस्तुत और अप्रस्तुत में) समान रूप से समन्वित होने वाले कार्य, लिङ्ग और विशेषण के बल से, प्रस्तुत पर अप्रस्तुत के व्यवहार का आरोप कहा जाया करता है।

१. 'एवंविधयापि चानया दुराचारया कथमपि दैववशेन परिगृहीता विक्लवा भवन्ति राजानः, सर्वाविनयाधिष्ठानतां च गच्छन्ति।'[3]

उपर्युक्त उद्धरणमें प्रस्तुत लक्ष्मी के कार्यो से अप्रस्तुत पिशाची की प्रतीति हो रही है। अतः समासोक्ति अलङ्कार हैं।

---

[1] कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ ७६०–७६१

[2] साहित्यदर्पणाः दशमः परिच्छेदः ५६ पृ० ७७७

[3] कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ ४०६

निदर्शना –

सम्भवन् वस्तुसम्बन्धोऽसम्भवन् वाऽपि कुत्रचित्।

यत्र बिम्बानुबिम्बत्वं बोधयेत्सा निदर्शना।।[1]

अर्थात् निदर्शना वह अलङ्कार है जिसे सम्भव अथवा असम्भव (उपपन्न अथवा अनुपपन्न) 'वस्तुसम्बन्ध' अर्थात् दो वाक्यार्थों के परस्परान्वय में बिम्बप्रतिबिम्बभाव (सादृश्य) की झलक कहा करते हैं।

१. ' विन्ध्याटवीकेशपाशश्रियमुद्वहतः'।[2]

२. 'स खलु धर्मबुदध्या विषलतां सिञ्चति, कुवलयमालेति निस्त्रिंशलतामालिङ्गति, कृष्णागुरुधूमलेखेति कृष्णसर्पमवगूहति, रत्नमिति .... सुखबुद्धिमारोपयति।'[3]

'विषयभोगी मं सुखबुद्धि का आरोप करना धर्म समझकर विषलता का सेवन करने, कुवलय माला समझ कर कृष्ण सर्प का अवगूहन करने, रत्न समझकर जलते हुए अङ्गार का स्पर्श करने तथा मृणाल समझकर दुष्ट हाथी के दाँत का उखाड़ने के समान हैं' इस प्रकार सादृश में वाक्य का पर्यवसान हो रहा है।

यह मालानिदर्शना का उदाहरण है।

अपह्नुति –

'प्रकृतं प्रतिषिध्यान्य स्थापनं स्यादपह्नुतिः।'[4]

---

[1] साहित्यदर्पणः दशमः परिच्छेदः ५१ पृ० – ७६३

[2] कादम्बरी कथामुखम्, पृ० – ७८

[3] कादम्बरी कथामुखम्, पृ० – ७८

[4] साहित्यदर्पणः पृ० ७५३

अर्थात अपह्नुति वह अलङ्कार है जिसे प्रकृत (उपमेय) के शब्दता अथवा अर्थात प्रतिशेष अथवा असत्यत्व–व्यवस्थापन के साथ अप्रकृत (उपमान) का आहार्य निश्चय कहा गया है।

'यत्रिभुवनाद्भुतरूपसम्भारं भगवन्तं कुसुमायुधमुत्पाद्य तदाकारातिरिक्त–रूपातिशयराशिरयम परोमुनिर्मायामयो मकरकेतुरूत्पादितः।'[1]

पुण्डरीक के सम्बन्ध में कहा गया है कि विधाता ने मुनिमायामय या मुनिवेशधारी दूसरे काम को उत्पन्न किया है। यहाँ 'मुनिमायामय' कथन के द्वारा प्रकृत का प्रतिशेष किया गया है।

अतिशयोक्ति :–

'सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते।'[2]

अतिशयोक्ति वह अलङ्कार है जिसे 'अध्यवसाय' की सिद्धि की प्रतीति कहा करते हैं।

१. पूगीलतादोाधिरुढवनदेवतैः।[3]

उपर्युक्त उदाहरण में पूगीलता की दोलाओं पर अधिरूढ़ नहीं है, तथापि दोलाएं वनदेवियों से अधिष्ठित कहीं गयी है, अतः असम्बन्ध में सम्बन्ध के कथन के कारण अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

२. 'स्वप्रभासमुदयोपहतगर्भगृहप्रदीपप्रभम्।'[4]

उपर्युक्त स्थान पर चन्द्रापीड की प्रभा द्वारा गृह के प्रदीपों की प्रभा उपहत नहीं हो रही है तथापि कथन किया गया है, अतः अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

---

[1] कादम्बरी प्रथमोभागः, पृ० – ५६१

[2] साहित्यदर्पणाः पृ० ७५३

[3] कादम्बरी कथामुखम्, पृ० – ८६

[4] कादम्बरी प्रथमोभागः, पृ० – ४२३

तुल्ययोगिता :–

तुल्ययोगिता अलङ्कार का लक्षण साहित्यदर्पणाचार्य ने अधोलिखित रूप में किया है–

पदार्थानां प्रस्तुतानामन्येषां वा यदा भवेत्।

एकधर्माभिसम्बन्धः स्यात्तदा तुल्ययोगिता।।[1]

अर्थात् तुल्योगिता वह अलङ्कार है जिसे केवल प्रस्तुत या प्रकरण प्राप्त पदार्थों अथवा अप्रस्तुत पदार्थों का एक धर्म से अभिसम्बन्ध कहा गया है।

१. 'दृष्ट्वा च प्रथमं रोमाद्गमः, ततो भूषणरवः, तदनु कादम्बरी समुत्तस्थौ।'[2]
   यहाँ रोमोद्गम आदि का एक क्रिया से सम्बन्ध है।

२. 'यतो दृष्टवा चेममहमिव त्वमपि निर्माणकौशलं प्रजापतेः, निःसपत्नतां च रूपस्य स्थानाभिनिवेशित्वं च लक्ष्म्याः सद्भर्तृतासुखं च पृथिव्याः, सुरलोकातिरिक्ततां च मत्यलोकस्य, सफलतां च मानुषीलोचनानाम्, एकस्थान समागमं च सर्वकलानाम्, ऐश्वर्य च सौभाग्यस्य, अग्राम्यतां च मनुष्याणां ज्ञास्यसीति बलादानीतोऽयम्।'[3]

यथासंख्या :–

'यथासंख्यमनूद्देश उद्दिष्टानां क्रमेण यत्।'[4]

अर्थात् यथासंख्य वह अलङ्कार है जिसे पूर्वोद्दिष्ट या पहले प्रतिपादित पदार्थों का क्रमशः पुनः कथन कहा जाया करता है।

---

[1] साहित्यदर्पण : पृष्ठ ७५८

[2] कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ ७११

[3] कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ ७१५–७१६

[4] साहित्यदर्पणः पृष्ठ ८३७

"रजोजुषे जन्मनि सत्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तमः स्पृशे।

अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः।।"[1]

यहाँ पहले रजोगुण का कथन हुआ। उसका 'सर्गस्थितिनाशहेतवे' में पहले प्रयुक्त 'सर्ग' से सम्बन्ध है। उसके बाद सत्वगुण का कथन हुआ है। उसका अन्वय 'स्थिति' के साथ हो रहा है। तमोगुण का कथन अन्त में हुआ है। उसका अन्वय अन्त में आये हुए पद 'नाश' के साथ हो रहा है। इस प्रकार यहाँ यथासंख्य अलङ्कार है।

<u>विरोधाभास</u> :–

जातिश्चतुर्भिर्जात्याद्यैर्गुणो गुणादिभिस्त्रिभिः।

क्रिया क्रियाद्रव्याभ्यां यद् द्रव्यं द्रव्येण वा मिथः।

विरुद्धमिव भासेत विरोधोऽसौ दशाकृतिः।।[2]

'विरोध' वह अलङ्कार हैं जिसे इन दस रूपों में देखा जाया करता है–

१. जाति के जाति से विरोधवर्णन में।

२. जाति के गुण से विरोधवर्णन में।

३. जाति के क्रिया से विरोधवर्णन में।

४. जाति के द्रव्य से विरोधवर्णन में।

५. गुण के गुण से विरोधवर्णन में।

६. गुण के क्रिया से विरोधवर्णन में।

७. गुण के द्रव्य से विरोधवर्णन में।

८. क्रिया के क्रिया से विरोधवर्णन में।

---

[1] कादम्बरी प्रथमोभागः पृष्ठ १

[2] साहित्यदर्पणः दशमः परिच्छेदः पृष्ठ ८१८

९. क्रिया के द्रव्य से विरोधवर्णन में।

१०. द्रव्य के द्रव्य से विरोधवर्णन में।

विरोधाभासा अलङ्कार के रुचिर प्रयोग बाणभट्ट की कादम्बरी में पदे–पदे परिलक्षित होता है। ये द्रष्टव्य हैं –

१. अशेषजनभोग्यतामुपनीतयाप्यसाधारणया रालजक्ष्म्या समालिङ्गतम्, अपरिमितपरिवारजनमप्यद्वितीयम्, अनन्तगजतुरगसाधनपमपि खड्गमात्रसहायम्, एकेदशस्थितमपि व्याप्तभुवनमण्डलम्, आसने स्थितमपि धनुषि निषण्णम्, उत्सादिताशेषद्विषदिन्धनमपि ज्वलत्प्रतापानलम्, आयतलोचनमपि सूक्ष्मदर्शनम्, महादोषमपि सकलगुणाधिष्ठानम्, कुपतिमपिकलत्रवल्लभम्, अविरतप्रवृत्तदानमप्यमदम्, अत्यन्तशुद्धस्वभाव–मपिकृष्णचरितम्, अकरमापि हस्तस्थितसकल भुवनतलं राजानमहाक्षीत्।[1]

२. अपरिमित बहलपत्रसञ्चयाऽपि सप्तपर्णभूषिता, क्रूरसत्वाऽपि मुनिजन सेविता, पुष्पवत्यपि पवित्रा विन्ध्याटवी नाम।[2]

३. वनचरोऽपि कृतमहालय प्रवेशः, असंयतोऽपि मोक्षार्थी, सामप्रयोगपरोऽपि सततावलम्बितदण्ड, सुपोऽपि प्रबुद्धः, सनिहित नेत्रद्वयोऽपि परित्यक्त वामलोचनस्तदेव कमलसरः सिस्नासुरूपागमत्।[3]

४. अभिनव यौवनमपि क्षपित बहुवयसम्, कृतसारमेयसंग्रहमपि फलमूलाशनम्, कृष्णमप्यसुदर्शनम्, स्वच्छन्दप्रचारमपि दुर्गैकशरणम्, क्षितिभृत्पादानुवर्त्ति राजसेवानभिज्ञम्।[4]

---

[1] कादम्बरी कथामुखम् पृ० १२३
[2] कादम्बरी कथामुखम् पृ० १६४
[3] कादम्बरी कथामुखम् पृ० ३००
[4] कादम्बरी कथामुखम् पृ० २६५

५. संततमूष्माणमुपजनयन्त्यपि जाड्यमुपजनयति जाडयमुपजनयति। उन्नतिमादधानापि नीचस्वभावतामाविष्करोति। तोयराशि सम्भवापि तृष्णां संवर्धयति। ईश्वरतां दधानाप्यशिवप्रकृतित्वमातनोति। बलोपचयमाहर–न्त्यपि लधिमान मापादयति। अमृतसहोदरापि कटुकविपाका। विग्रह वत्यप्यप्रत्यक्षदर्शना। पुरुषोत्तममरतापि खलजनप्रिया।[१]

६. संगृहीत गारुडेनापि भुजङ्ग भीरुणा .... महासत्वेनापि परलोक भीरुणा।[२]

स्वभावोक्ति :–

इस अलङ्कार का लक्षण साहित्यदर्पण में अधोलिखित रूप में दृष्टव्य है–

" स्वभावोक्तिर्दुरूहार्थस्वक्रियारूपवर्णनम् ।६२१।"[३]

अर्थात् 'स्वभावोक्ति' वह अलङ्कार है जिसे दुरूह अर्थात् सूक्ष्म अथवा कल्पनाशील कविजन द्वारा संवेध, पदार्थों के स्वरूप किंवा उनकी क्रियाओं का वर्णन कहा करते हैं।

पुण्डरीक को प्रणाम करने के उपरान्त महाश्वेता की मनोस्थिति का नितान्त अद्वितीय वर्णन बाणभट्ट ने किया है। यहाँ स्वाभावोक्ति अलङ्कार की विशदछटा दृष्टव्य हो रही है–

'अशेषजनपूजनीया चेयं जातिरिति कृत्वा तद्वदनाकृष्टदृष्टिप्रसरम्, अचलितपक्ष्ममालनम्, अदृष्टभूतलम्, उल्लसित कर्णपल्लवोंन्मुक्त कपोलमण्डलम्,

---

[१] कादम्बरी प्रथमोभागः पृ० ४०५–४०६

[२]

[३] साहित्यदर्पण पृ० ८६५

आलोलालकलतालसत्कुसुमावतंसम्, असंदेशदोलायित मणिकुण्डलमस्मै प्रणाममकरणम्।'[1]

<u>काव्यलिङ्ग</u> –

'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्ग निगद्यते' ।। ६२।।[2]

अर्थात् काव्यलिङ्ग वह अलङ्कार है जिसे किसी अर्थ के उपपादन के लिए 'वाक्यार्थ' अथवा 'पदार्थ' के हेतु रूप से उपनिबन्धन में देखा जाया करता है।

१. अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमदः।[3]

२. तात चन्द्रापीड विविदवेदित व्यस्याधीतसर्वशास्त्रस्य ते नाल्पमप्युपदेष्टव्यमस्ति।[4]

'चन्द्रापीड का उपदेश देने की आवशकता नहीं है।' इसके कारण के रूप में 'विदित वेदित व्यस्य' और 'अधीतसर्वशास्त्रस्य' – इन दो विशेषणों का अर्थ उपन्यस्त है, अतः पदार्थ हेतुक काव्यलिङ्ग है।

<u>समुच्चय</u> :–

समुच्चय का लक्षण साहित्यदर्पण में निम्नांकित रूप में परिलक्षित होता है–

" समुच्चयोऽयमेकस्मिन् सति कार्यस्य साधके।
खले कपोतिकान्यायात्तत्करः स्यात्परोऽपि चेत्।।
गुणौ क्रिये वा युगपत्स्यातां यद्वा गुणक्रिये।"[5]

---

[1] कादम्बरी प्रथमभागः पृ० ५५०–५५१
[2] साहित्य दर्पण पृष्ठ ८०२
[3] कादम्बरी प्रथमभागः पृ० ३६३
[4] कादम्बरी प्रथमभागः पृ० ३६३
[5] साहित्यदर्पण पृष्ठ ८५०

समुच्चय वह अलङ्कार है जिसे निम्न सम्भावनाओं में देखा जाया करता है–

१. यदि कोई वस्तु किसी कार्य की सिद्धि कर रही है तो 'खले कपोतिका' न्याय से किसी दूसरी वस्तु का भी, उस कार्य के साधकरूप से, वर्णन किया जाये।

२. जब दो गुणों या दो क्रियाओं या गुण और क्रिया का एक साथ ही एकत्र उत्पादन अथवा अवस्थापन वर्णित हो ।

१. " किं वा तेषां साम्प्रतं येषामतिनृशंस प्रायोपदेश निर्घृणं कौटिल्यशास्त्रं प्रमाणम्, अभिचार क्रियाः क्रूरैकप्रकृतयः पुरोधरो मुखः, पराभिसंधानपरा मन्त्रिण उपदेष्टारः, नरपतिसहस्त्रभुक्तोज्झितायां लक्ष्म्यामासक्तिः, मारणात्मकेषु शस्त्रेष्वभियोगः, सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्ता भ्रातरं उच्छेद्याः।"[1]

उन राजाओं के सभी कार्य अनुचित होते हैं – इसके लिए अनेक कारण उपन्यस्त किये गये हैं, अतः समुच्चय अलङ्कार हैं।

अर्थान्तरन्यास :–

"सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि।

कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्य ते।।

साधर्म्येणेत रेणार्थान्तरन्यासोऽष्टधा ततः।"[2]

अर्थात् 'अर्थान्तरन्यास' वह अलङ्कार है जिसे साधर्म्य अथवा वैधर्म्य के द्वारा, 'सामान्य' का विशेष से, विशेष का सामान्य से, 'कार्य' का कारण से और कारण का कार्य से समर्थन कहा गया है। इसके आठ भेद सिद्ध होते हैं।

---

[1] कादम्बरी प्रथमभागः पृ० ४२०

[2] साहित्यदर्पण पृ० ७६६

अधोलिखित कादम्बरी के उद्धरण में विशेष से सामान्य का समर्थन किया गया है –

१. नास्ति जीवितादन्यदभिमततरमिह जगति सर्वजन्तू नामेव, उपरतेऽपि सुगृहीतनाम्नि ताते यदहमविक लेन्द्रियः पुररेव प्राणिमि।[1]

२. यहाँ सामान्य के द्वारा विशेष का समर्थन किया गया है।

"अत्र त्वितर इव परिभूय ज्ञानमवगणय्य तपः प्रभावमुन्मूल्य गाम्भीर्य मन्मथेन जडीकृतः। सर्वथा दुर्लभं यौवनमसखलितम्' इति।'[2]

परिकर :–

'उक्तैविशैषणैः साभिप्रायैः परिकरो मतः।'[3]

अर्थात् 'परिकर' वह अलङ्कार हैं जिसे विशेषणों की अभिप्रायगर्भता कहा जाया करता है–

साहमेवंविधा पापकारिणी निर्लक्षणा निर्लज्जा क्रूरा निःस्नेहा नृशंसा गर्हणीया निःप्रयोजननोत्पन्ना निःफल जीवितानिखलम्बना निःसुखा च।[4]

यहाँ महश्वेता के लिए साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग होने के कारण उक्त अलङ्कार है।

व्याजोक्ति :–

'व्याजोक्तिर्गोपनं व्याजादुम्दिन्नस्यापि वस्तुनः।'[5]

---

[1] कादम्बरी
[2] कादम्बरी
[3] साहित्यदर्पणः पृ० ७८७
[4] कादम्बरी प्रथमभागः पृ०
[5] साहित्यदर्पण पृ० ८६४

अर्थात् 'व्याजोक्ति' वह अलङ्कार है जिसमें किसी उभ्दिन्न अथवा प्रकट हुई भी वस्तु के, किसी बहाने से छिपाने का अभिप्राय अन्तर्भूत रहा करता है।

'सखि कपिञ्जल, किं मामन्यथा संभावयसि।

नाहमेवमस्या दुर्विनीत कन्यकाया मर्षयाम्यलक्षमालाग्रहणापराधमिमम्।'[1]

परिसंख्या :–

बाणभट्ट ने इस अलङ्कार का अतीव सुन्दर निर्वाह कादम्बरी में किया है। इस अलङ्कार का लक्षण साहित्य दर्पण में निम्न प्रकार से व्यक्त है–

प्रश्चाद प्रश्नतो वापि कथिताद्वस्तुनो भवेत्।

तादृगन्यव्यपोहश्चेच्छाब्द आर्थोऽथवा तदा ।। ८१।।[2]

१. यस्मिंश्च राजनि जितजगति पालयति महीं चित्रकर्मसु वर्णसंकराः, रतेषु केशग्रहाः, काव्येषुदृढ़बन्धाः, शास्त्रेषु चिन्ता, स्वप्नेषु विप्रलम्भाः, छत्रेषु कनकदण्डाः, ध्वजेषु प्रकम्पाः, गीतेषु रागविलसितानि, करिषु मदविकाराः चापेषुगुणच्छेदाः .... शार्यक्षेषु शून्यगृहाः प्रजानामासन्। यस्य च परलोकद्भयमन्तः पुरिकालकेषु भङ्गो, नूपुरेषु मुखरता, विवाहेषु .... मकरध्वजे चापध्वनिरभूत।[3]

उपर्युक्त वाक्य में शब्दोक्त व्यवच्छेद है और दूसरे में आर्थ। विश्वनाथ कविराज का कहना है कि परिसंख्या श्लेषमूलक हो, तो विशेष वैचित्र्य होता है। उन्होंने इसके उदाहरण के रूप मे इस उदारण को प्रस्तुत किया है।

---

[1] कादम्बरी प्रथमभागः पृ०

[2] साहित्यदर्पण पृ० ८४२

[3] कादम्बरी कथामुखम् पृ० ६५

२. यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु च चरितेषु, मुखरागः शुकेषु न कोपेषु तीक्ष्णता कुषाग्रेषु न स्वभावेषु, चञ्चलता कदणीदलेषु न मनसु चक्षमणाः कोकिलेषु, न परकलत्रेषु ....रामानुरागो रामायणेन न यौवनेन, मुखभङ्ग विकारो जरया न धनाभिमानेन। यत्र च महाभारते शकुनिवध पुराणे वायुप्रलयितम् . ...कपीनां श्री फलभिलाषः मूलानाम धोगतिः।[1]

स्मरण :–

'पर्यायेण द्वयौरेतदुपमेयोपमा मता'।[2]

अर्थात् 'उपमेयोपमा' वह अलङ्कार है, जहाँ, दो वस्तुएं, बारी–बारी से, परस्पर उपमान और उपमेय रूप में कल्पित दिखायी दिया करती है।

"अधुनापि यत्र जलधरसमये गम्भीरमभिनवजलधरनिवहनिनादमाकण्य भगवतो रामस्य त्रिभुवनविवरव्यापिनश्चपाघोषस्य स्मरन्तः।"[3]

बादलों की ध्वनि के श्रवण से राम के धनुष की ध्वनि की स्मृति हो रही है, अतः स्मरण अलङ्कार है।

भ्रान्तिमान् :–

इस अलङ्कार का लक्षण आचार्य प्रवर विश्वनाथ ने निम्न प्रकार से किया है–

"साम्यादतस्मिंस्तद् बुद्धिर्भ्रानितमान् प्रतिभोत्थितः।।"[4]

---

[1] 'यस्मिंश्च राजनि जित जगति पालयति महीं चित्रकर्मसु वर्ण सङ्कराश्चापेषु गुणच्छेदाः' इत्यादि।

– साहित्यदर्पण, दशमः परिच्छेदः, पृ० ८४३

[2] साहित्यदर्पणः दशमः परिच्छेद पृ० ७१२

[3] कादम्बरी कथामुखम् पृ० २०४

[4] साहित्यदर्पण दशमः परिच्छेदः , पृ० ७३०

अर्थात् 'भ्रान्तिमान' वह अलङ्कार है जिसे, सादृश्य के कारण, एक वस्तु में दूसरी वस्तु का ऐसा अनुभव कहा जाया करता है जो स्वारसिक नहीं अपितु कविप्रतिभोस्थापित हुआ करता है।

१. 'अत्यायतश्च यस्मिन् दशरथसुतबाणनिपातितो योजनबाहोर्बाहुरगस्त्य प्रसादेनागतन हुषाजगरकायशङ्का चकार ऋषिगणस्य।'[१]

यहाँ दनुकबन्ध की भुजा को देखकर नहुषाजगर के शरीर की भ्रान्ति हो रही है।

२. 'सुरगजोन्मूलितविगलदकाशगङ्गा कमलिनी शङ्का मुपजनयन्तः।'[२]

उपर्युक्त उदाहरण में बाणभट्ट ने दिखलाया है कि आकाश में पंक्ति बद्ध शुक व पक्षियों की ऐसी भ्रान्ति हो रही है मानो वे इन्द्र के गज ऐरावत के द्वारा उखाड़ी हुई अतएव नीचे गिरती हुई आकाशगङ्गा की कमलिनियां हो।

अर्थापत्ति :-

'दण्डायूपिकयान्यार्थागमोऽर्थापत्तिरिष्यते।'[३]

अर्थात् 'अर्थापत्ति' वह अलङ्कार है जिसे 'दण्डायूपिकान्याय' (एक अर्थ से, अनायास दूसरे अर्थ की प्रतीति) से अन्य अर्थ की 'आपत्ति' अथवा प्रतीति कहा करते हैं।

१. 'स्थूल बुद्धयोऽपि तादृशीं विनयच्युतिं विभावयेयुः, किमुतानुभूत मदन वृत्तान्ता महाश्वेता सकल कलाकुशलाः सख्यो वा राजकुलसंचारचतुरो वा नित्यमिङ्गतज्ञः परिजनः।'[४]

---

[१] कादम्बरी कथामुखम् पृ० २०५

[२] कादम्बरी कथामुखम् पृ० २२२

[३] साहित्यदर्पण दशमः परिच्छेदः पृ० ८४५

[४] कादम्बरी प्रथमभागः पृ०

उपर्युक्त उदाहरण में यह दर्शाया गया है कि जब स्थूल बुद्धि वाले व्यक्ति भी विनयच्युति के प्रसङ्ग को समझ जाते है, तो महाश्वेता आदि के सम्बन्ध में कहना ही कया ? यहाँ दण्डायूपिकान्याय से 'मदन के वृतान्त को जानने वाली महाश्वेता या कलाओं में कुशल सखियाँ अथवा इङ्कित को जानने वाले परिजन जान ही जायेंगे– ऐसे अर्थान्तर की प्रतीति हो रही है, अतः यहाँ अर्थापत्ति अलङ्कार हैं।

२. अपिच स्वयं गृहीत हृदयाय किं दीयते। जीवितेश्वरा किं प्रति पाद्यते। प्रथम कृतागमन महोपकारस्य काते प्रत्युपक्रिया। दर्शन दत्त जीवित फलस्य सफल मागमनं केनते क्रियते।[1]

३. शालमती कुसुमशङ्कामुपजनयतः।[2]

संसृष्टि :–

साहित्यदर्पण में इसका लक्षण निम्नतः दृष्टव्य है–

यद्यैत एवालङ्काराः परस्पर विमिश्रिताः।

तदा पृथगलङ्कारौ संसृष्टिः सङ्करस्तथा।। ६७।।[3]

अर्थात् 'संसृष्टि' वह अलङ्कार हैं जिसे परस्पर निरपेक्ष अलङ्कारों की 'तिलतण्डुलवत्' एवत्र अवस्थिति कहा करते हैं।

१. 'अमलस्फटिककसकलघटितभक्षवलयमत्युज्ज्वल स्थूलमुक्ताफलग्रथितं सरस्वतीहारमिव चलदंगुलिविवरगतमावर्तयन्तम्, अनवरतभ्रमिततारका– चक्रमपरमिव ध्रुवम्।'[4]

---

[1] कादम्बरी प्रथमभागः पृ०

[2] कादम्बरी कथामुखम् पृ० २७७

[3] साहित्यदर्पण दशमः परिच्छेदः पृष्ठ ८८२

[4] कादम्बरी कथामुखम् पृ० ३३८

यहाँ उपमा, काव्यलिङ्ग तथा द्रव्योत्प्रेक्षा की संसृष्टि है। अतः उक्त अलङ्कार है।

२. 'अपनीता शेष भूषणश्च दिवसकर इव विगलित किरणजालश्चन्द्रतारका समूह शून्य इव गगना भोगः।' [1]

यहाँ पर 'दिवसकर इव' एवं 'गगनाभोगः इव' में परस्पर निरपेक्ष दो उपमालङ्कारों की संसृष्टि है।

३. 'अनन्तरमुदपादि च स्फोटयन्निव श्रुतिपथमनेकप्रहतपटुपटहझल्लरी मृदङ्ग वेणु वीणागीत निनादानुगम्य मानो वन्दिवृन्द कोलाहलाकुलो भुवन विवर व्यापी स्नानशंखानामापूर्य माणानामतिमुखरो ध्वनिः।'[2]

'अनन्तरं ध्वनिः' यहाँ अतिशयोक्ति अलङ्कार हैं। 'स्फोटयन्निव' में क्रियोत्प्रेक्षालङ्कार है। इन दोनों की निरपेक्ष स्थिति होने से संसृष्टि अलङ्कार है।

<u>संङ्कर</u> –

'अङ्गाङ्गित्वेऽलङ्कृतीनां तद्वदेकाश्रयस्थितौ।

सन्दिग्धत्वे च भवति सङ्करस्त्रिविधः पुनः'।। ६८।।[3]

सङ्कर भी समिश्रित अलङ्कार है। इसमें दो या दो से अधिक अलङ्कारों का ऐसा समिश्रण होता है जो या तो एकत्र अवस्थित रहा करते हैं, या संदेह के विषय बन जाया करते हैं या तो अङ्गाङ्गिभाव –सम्बद्ध रहा करते हैं।

---

[1] कादम्बरी कथामुखम् पृ० १५६

[2] कादम्बरी कथामुखम् पृ० १६७

[3] साहित्य दर्पणः दशमः परिच्छेदः पृष्ठ ८८५

१. 'अमलेन चन्द्रांशुभिरिवामृतफेनैरिव गुण सन्तान तन्तुभिरिव निर्मितेन मानस सरोज लक्षालनशुचिना दुकूलवल्कलेनादियेनेव जराजालकेन संच्छादितम्।'[1]

यहाँ काव्यलिङ्ग, उत्प्रेक्षा तथा इनका अङ्गाङ्गि भाव से सङ्करालङ्कार है।

२. 'अधोमुखचन्द्रकलाकाराभ्यामवलम्बितबलिशिशिलाभ्यांभ्रूलताभ्यामवष्टभ्यामान – दृष्टिम्, अनवरतमन्त्राभ्यासविवृताधरपुटतया निष्पतद्भिरतिशुचिभिः प्रत्यप्ररोहैवि स्वच्छेन्द्रिद्यवृत्तिभिरिव विद्यागुणैरिव करुणारसप्रवाहैरिव .....।'[2]

यहाँ पर 'चन्द्र कलाकारा' में लुप्तोपमालङ्कार है। 'सत्यप्ररोहैरिव' से लेकर करुणारस प्रवाहैरिवतक वाक्यार्थ हेतुक काव्यलिङ्ग व उपमा तथा गुणोत्प्रेक्षालङ्कार का अङ्गाङ्गि भाव से सङ्करलङ्कार है।

बाण की रचना कादम्बरी में जहाँ तक छन्दों का प्रश्न है बाण ने अधिकाशंतः वंशस्थ वृत्त का प्रयोग किया है

कादम्बरी के पूर्वार्द्ध में प्रारम्भिक भूमिका के श्लोकों में **वंशस्य** छन्द प्रयुक्त किया गया है। यथा–

रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तमः स्पृशेः।

अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः।।[3]

वंशस्य छन्द का लक्षण है – *'जतौतु वंशस्थमुदीरितं जरौ।'*

शूद्रकवर्णन के प्रसङ्ग में वैशम्पायन शुक द्वारा उसको लक्ष्य **आर्या** छन्द पढ़ा गया है यथा –

---

[1] कादम्बरी कथामुखम् पृ० ३३६

[2] कादम्बरी कथामुखम् पृ० ३३५

[3] कादम्बरी कथामुखम् श्लोक १ पृष्ठ ५७

स्तनयुगमश्रुस्नातं समीपतरवर्ति हृदयशोकाग्नेः।

चरति विमुक्ताहारं व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम्।।[1]

आर्याछन्द का लक्षण है –

यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि।

अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या।।

बाणभट्ट ने गद्य लेखन में ही अपनी वास्तविक प्रतिभा का विकास किया है यद्यपि पद्य का भी उनको यथेष्ट ज्ञान था। भोज ने सरस्वतीकण्ठा भरण में बाण के गद्य और पद्य दोनों बन्ध को सराहनीय मानते हुए कहा है –

"यादृग् गद्यविधौ बाणः पद्यबन्धेऽपि तादृशः।"

इस प्रकार उपर्युक्त शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कारों का अवलोकन करके हमने पाया है उन्होंने इनका प्रयोग करके कादम्बरी में चार चाँद लगा दिया है। इसका समुचित प्रयोग अपूर्ण रमणीयता का संचार करता हुआ अद्भुत छटा बिखेरता है। **पं० चन्द्रशेषर पाण्डेय** के शब्दों में – 'उनके लम्बे–लम्बे समास यदि गिरि नदी के उद्दाम प्रवाह की भाँति हैं, तो उनकी उपमायें इन्द्रधनुष की छाया की भांति उसे रंगीन बना देती है।

बाण की अपनी विशिष्ट विशेषताओं के लिए **प्रसन्न राघव** के रचयिता **जयदेव** ने इन्हें कविता कामिनी के हृदय मन्दिर में निवास करने वाला साक्षात् कामदेव बतलाया है –

---

[1] कादम्बरी कथामुखम् पृष्ठ १४५

यस्याश्चौरः चिकुरनिकुरः कर्णपूरो मयूरः।

भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।।

हर्षो हर्षः हृदयवसतिः पञ्च बाणस्तु बाणः।

केषां नैषा कथय कविता कामिनी कौतुकाय।।

—प्रसन्न राघव।।२२।।

बाण की अपनी कुछ मौलिकता है जिसके कारण विद्वान् समीक्षकों ने उन्हें **कालिदास, माघ** और **भवभूति** के समकक्ष स्वीकार किया है। यद्यपि **बाणभट्ट** में **महाकवि कालिदास** जैसी उदात्त भाव प्रवणता नहीं है। तथापि इनकी कृतियों में स्पष्ट रूप से **माघ** और **भवभूति** के समान सान प्रासिक एवं अलंकृत, दीर्घकाय समस्त पदावली का उत्कृष्ट रूप दृष्टिगोचर होता है।

वक्रोक्ति मार्ग में निपुण **सुबन्धु, बाण** और **भट्ट** को स्वीकार करते हुए **कविराज सूरि** ने अपनी रचना **राघव पाण्डवीय** में कहा है –

सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इतित्रयः।

वक्रोक्ति मार्ग निपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा।।

– राघव पाण्डवीय ।।४१।।

उपर्युक्त अलङ्कार एवं छन्दों के विवेचन से हमने पाया कि बाण के वर्णन से गद्य का कोई भी पक्ष अछूता नहीं है। उन्हें इसीलिए 'गद्यकाव्य का सम्राट' कहा गया है।

❑❑❑

अष्टम अध्याय

शैली विमर्श

शैली विमर्श

लौकिक साहित्य के प्रसिद्ध गद्यकवि दण्डी, सुबन्धु, बाणभट्ट

अलंकृत गद्यशैली की प्राचीनतम रचना के दिग्दर्शन हमें महाक्षत्रय रूद्रदामन (१५० ई०) के गिरनार वाले शिलालेख में होते हैं। इसमें लम्बे समास, अनुप्रास तथा अन्य अलङ्कार प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं।

इस गद्य में प्रौढ़ता, प्राञ्जलता, अलौकिकता, कमनीयता आदि गुणों का सद्भाव है। उदाहणार्थ –

"गद्यपद्य प्रमाण मानोन्मानस्वरगति वर्णसारसत्वादिभिः .... रूद्रदाम्ना –सेतु सुदर्शनतरं कारितम्।"

इसके पश्चात् प्रयाग के किले में अवस्थित स्तम्भ पर उट्टङ्कित हरिशेषकृत **समुद्रगुप्त** की **प्रशस्ति (३५० ई०)** में अलंकृत गद्य की प्रौढ़ शैली के दर्शन होते हैं। श्लेष का प्रयोग परवर्ती गद्यकाव्यकारों का प्रिय अलङ्कार बन गया। उदाहरणार्थ –

"सर्वपृथिवीविजयजनितोदयं व्याप्तनिखिलावनितलां कीर्तिमित स्त्रिदशपतिभवनगमनाबाप्तललितसुख विचरणामाचक्षाण इव भुवो बाहुरय मुच्छितः स्तम्भः।"

इसी उपर्युक्त गद्य शैली की चरम परिणति हमें दण्डी तथा बाण आदि की कृतियों में परिलक्षित होता है। इस गद्यशैली तथा महर्षि पतञ्जलि की गद्यशैली में आकाश–पाताल का विभेद है। यहाँ विभक्तियों का स्थान लम्बे–लम्बे समासों ने ले लिया और दस–दस, बारह–बारह शब्दों की एक ही द्वन्द्व में

उपनिबद्ध कर दिया गया । **बाणभट्ट** के सामासिक वाक्य तो इक्कीस से लेकर सौ से अधिक पंक्तियों में पहुँच गये हैं।

यह एक बड़ी विचित्र विडम्बना है कि संस्कृत में शास्त्रीय अभिव्यक्ति के लिए भी जहाँ प्रायः पद्य की प्रधानता रही वहाँ अलङ्कारियों ने काव्य की सामान्य परिभाषा में गद्य और पद्य का कोई भेद स्वीकार नहीं किया। किन्तु गद्यकाव्य का विशेष महत्ता प्रदान की **'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति।'** किन्तु इनमें प्रायः गद्य का रूप समास बहुल एवं अलङ्कार प्रधान ही रहा है। संस्कृत वाङ्मय में इन तीनों रचनाकार के रचनाकाल एक सौ वर्ष से भी कम समय को संस्कृत गद्यकाव्य का स्वर्णयुग कहा जाता है।

बाण्भट्ट के भाषा–शैली का अध्ययन बिना इन दोनों गद्यकार दण्डी और सुबन्धु के भाषा–शैली के अधूरा है।

दण्डी की भाषा शैली :-

संस्कृत–वाङ्मय में **आचार्य दण्डी** का अलङ्कृत संस्कृत गद्य में अप्रतिम स्थान है। जिस प्रकार **वाल्मीकि** को संस्कृत पद्यकाव्य का आदिकवि माना जाता है उसी प्रकार इनकी अलङ्कृत संस्कृत के प्रथम गद्यकार के रूप में माना जाता है।

अवन्ति सुन्दरी के आधार पर इनके जीवन चरित का कुछ वर्णन इस प्रकार है– महाकवि दण्डी **किरातार्जुनीय** के कृतिकार **भारवि** के परममित्र **दामोदर** के प्रपौत्र थे अथवा कुछ विद्वानों के मतानुसार कवि भारवि का नाम ही दामोदर था और कवि दण्डी के प्रपिता का नाम **मनोरथ** था तथा पिता का नाम

वीरदत्त था। चारो भाइयों में **वीरदत्त** सबसे कनिष्ठ और दर्शनशास्त्र के ज्ञाता थे। दण्डी की माता का नाम **गौरी देवी** था।

अवन्तिसुन्दरी कथा को प्रमाणरूपेण मानने में अभी तक सब इतिहासकारों में मतैक्य नहीं है। शार्ङ्गधर पद्धति में राजशेखर के नाम से निम्नलिखित श्लोक समुद्घृत किया गया है –

त्रयोऽग्नयस्त्रयोंदेवास्त्रयो वेदास्त्रयो गुणाः।

त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः।।

इसके कथनानुसार दण्डी ने तीन ग्रन्थों की रचना की । इनमें से दो हैं– **काव्यादर्श** और **दशकुमारचरित** दण्डी की तीसरी रचना के सम्बन्ध में विद्वानों में विभेद है। **पिशेल** ने निम्न तर्को के आधार पर **मृच्छकटिक** को दण्डी की तीसरी रचना मानने को प्रयास किया है –

१. **'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि'** वाला प्रसिद्ध पद्य **काव्यादर्श** (२/२२६) तथा **'मृच्छकटिक'** (५/३४) दोनों में पाया जाता है

२. मृच्छकटिक तथा दशकुमार चरित का सामाजिक चित्रण एक सा है। अतएव दोनों रचनाएं दण्डी की हैं। परंतु भास के नाटकों की खोज गणपति शास्त्री द्वारा किए जाने पर पहला तर्क निराधार हो गया तथा दूसरे का कोई औचित्य नहीं है। सन् **१६२४** में **'अवन्ति सुन्दरी कथा'** नामक एक अपूर्ण गद्य काव्य प्रकाशित हुआ इसके सम्पादक **एम० आर०** कवि महोदय ने दण्डी की रचना माना है।[1]

---

[1] Pro of or, conf , 1922, PP. 193- 201

अवन्ति सुन्दरी कथा और दशकुमार चरित के कथानकों में समानता है। अन्तर केवल शैली में हैं। **अवन्ति सुन्दरी कथा** की प्रामाणिकता में कोई संशय नहीं है, क्योंकि **काव्यादर्श** की जंघात–कृति टीका में **'अवनितसुन्दरी'** नामक आख्यायिका का उल्लेख किया गया है। अतः विद्वदजनों ने अवन्तिसुन्दरी कथा को दण्डी की तीसरी रचना माना है।

दण्डी कि आविर्भाव–काल के विषय में बहुत मतभेद हैं। दण्डी की रचनाओं का उल्लेख नवमशती के साहित्य में पाया जाना इनके नवमशती के पहले का सिद्ध करता है। **डॉ० बार्नेट**[1] का कथन है कि सिंहली भाषा के अलङ्कार–ग्रन्थ **सिव-वस-लंकर** (स्वभाषालङ्कार) की रचना **'काव्यादर्श'** के आधार पर की गयी है। इसके रचयिता राजा सेन प्रथम का काल **८४६-८६६ ई०** था । ८१४ ई० के कन्नड़ी अलङ्कार –गन्थ **'कविराजमार्ग'** में भी काव्यादर्श की यथेष्ट छाप देख सकती है। अतः दण्डी ८०० ई० के पहले ही हुए होंगे।

कीथ के मतानुसार **'दशकुमार चरित'** का भूगोलचित्रण तो हर्षवर्धन के पूर्व–भारत के वर्णन से साम्य रखता है। **'दशकुमार चरित'** की भाषा–प्रणाली तथा वर्णन–शैली भी दण्डी कवि को सुबन्ध और बाणभट्ट के पूर्व में होने की सूचना देती है। महाकवि भारवि काञ्चीनगरी के नृपतिसिंह विष्णुवर्मा के सभापंडित थे। इससे यह सिद्ध होता है कि दण्डी कवि **सातवीं सदी** के उत्तरार्ध में था।

---

[1] J.R.A.S. 1906, P. 841

काव्यदर्श के कुछ पदों में कालिदास का प्रमाण स्पष्ट प्रतीत होता है।[1] अतः दण्डी कालिदास के बाद के हैं। इसके अतिरिक्त 'काव्यदर्श' में पाँचवीं शताब्दी के **राजा प्रवरसेन**–रचित **'सेतुबन्धु'** नामक प्राकृत–काव्य का उल्लेख हे। अतएव **दण्डी** का अविर्भाव काल ५०० – ८०० ई० के बीच प्रतीत होता है।

दण्डी बाण के पूर्व हुए थे या उत्तर में, इस विषय में मतभेद है। **पीटरसन** और **याकोबी** की सम्मति में **'काव्यादर्श'** के एक पद्य[2] में **कादम्बरी** के शुकनासोपदेश की झलक मिलती है। दण्डी ने **बाण** और **मयूर** की प्रशंसा की है।

भिन्नातीक्ष्णमुखेनापि चित्रं बालेन निर्व्यथः।

व्यवहारेषु जहौ लीलां नमयूरः .... ।।

किन्तु दण्डी की भाषा–शैली के अध्ययन से वे बाण से पूर्ववर्ती प्रतीत होता है। यदि दण्डीबाण के परवर्ती होते तो उनकी शैली बाण की शैली के समान और वक्रोक्ति जैसे अलङ्कारों से अवश्य आक्रान्त होती। इसलिए दण्डी का स्थितिकाल ६०० ई० के लगभग प्रतीत होता है।

'काव्यादर्श' और **'दशकुमारचरित'** के आधार पर मालूम होता है कि दण्डी दाक्षिणात्य थे और विदर्भ देश के निवासी थे।

---

[1] 'लक्ष्य लक्ष्मीं तनोतीति प्रतीति सुभगं वचः' –दण्डी
'मलिनपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति' –कालिदास

[2] अरत्नालोक संहार्यमवार्य सूर्यरश्मिभिः।
दृष्टिरोधकरं यूनां यौवनप्रभवं तमः।। – काव्यादर्श २/१९७
केवलं च निसर्गत एवाभानुभेद्यमरत्नालो कोच्छेद्यमप्रदीप प्रभापनेयमतिगहनं तमो यौवनप्रभवम्। – कादम्बरी

दण्डी सरस, सुभग एवं मनोहर वैदर्भी गद्य–शैली के आचार्य माने जाते हैं। उनकी वर्णन–प्रणाली सरल और प्रासादिक है। **दण्डी** के गद्य में अपनी विशेषता है यह सुबन्धु के गद्य के समान न तो 'प्रत्यक्षर–श्लेषमय' है और न **बाण** के गद्य की भांति **'सरसस्वरवर्णपद'** से सुशोभित अर्थ की स्पष्टता, रस की सम्यक् अभिव्यक्ति, शब्द–विन्यास की चारूता तथा कल्पना की उर्वरता दण्डी की शैली के विशेष गुण हैं। दण्डी के पद–लालित्य की बड़ी प्रशंसा है –

'दण्डिनः पद लालित्यम्।' पद लालित्य में अनुप्रास का विशेष योगदान है। जैसे –

'अयुग्मशरः शरशयने शाययिष्पति', असत्येनास्य नास्यं संसृज्येत' इत्यादि। इस प्रकार दण्डी संस्कृत गद्य–लेखकों में प्रशंसनीय एवं आदर्श रचनाकार माने जाते हैं किसी भारतीय समालोचक ने दण्डी की प्रशंसा करते हुए कहा है कि –

'कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी संशयः।'

एक अन्य आलोचक ने वाल्मीकि के प्रादुर्भाव पर 'कवि' शब्द का प्रयोग एकवचन में, व्यास के बाद द्विवचन तथा दण्डी के बाद बहुवचन में होने की बात स्वीकारी है –

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिद्याऽभवत्।
कवीइति ततो व्यासे कवयस्तवपि दण्डिनि।।

सुबन्धु की भाषा शैली :-

'वासवदत्ता' नामक गद्यकाव्य के रचयिता **सुबन्धु** का समय भविष्य के गर्त में हैं कुछ विद्वानों[1] की अवधारणा है कि सुबन्धु बाण के परवर्ती थे। सुबन्धु कई पदों[2] के लिए बाण के ऋणी हैं। **वासदत्ता** में **'इन्द्रायुध'** शब्द का प्रयोग चन्द्रापीड के घोड़े की ओर संकेत करता है।[3]

किन्तु **सुबन्धु, बाण (सातवीं शताब्दी)** के पहले हो चुके होंगे, क्योंकि बाण ने अपने से पूर्ववर्ती सुबन्धु नामक कवि का उल्लेख करते हुए कहा कि सुबन्धु की **वासदत्ता** में कवियो के दर्प कागला दिया।

कवीनामगलद्द्ढर्पो नूनं वासवदत्तया।

शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरनम्।।[4]

बाणभट्ट ने अपनी रचना कादम्बरी के लिए **'अतिद्वयी कथा'** यह विशेषण भी माना है। अतिव्ययी कथा से तात्पर्य है पहले लिखी गयी दो कथाओं को पीछे छोड़ने वाली कथा। टीकाकार **भानुचन्द्र सिद्धचन्द्र** के अनुसार वे हैं –

'गुणाढयकृतबृहत्कथातथा सुबन्धु की वासवदत्ता।'

इस प्रकार **बाण** का समय **सातवीं शताब्दी** का पूर्वार्द्ध है। **सुबन्धु** का समय **६०० ई०** के आसपास निश्चित किया जा सकता है।

शैली :– **सुबन्धु** गौडीरीति के कवि हैं। लम्बे समासों की लड़ियाँ वे निरन्तर गूँथते चलते हैं। सुबन्धु के गद्य रचना में अलङ्कारों का चित्रण प्रशंसनीय अवश्य है किन्तु शास्त्रीय उपमानों के कारण पाण्डित्य की छाप अधिक प्रतिबिम्बित हो

---

[1] M. Krishnamachariac : C, Skt. , P. 40A.

[2] 'किं बहुना', देवः प्रमाणम्, आसौच्चास्यमनासि आदि।

[3] वज्रेणेवेन्द्रानयुधेन मनोजवनाम्नातुरगेण सह नगरान्निर्जगाम्।

[4] हर्षचरितत् १/११ – पं० श्री जगन्नाथ पाठक साहित्याचार्या

रही है। **सुबन्धु** को अपनी श्लेष गुफन की कुशलता पर गर्व है। वे अपने आपको **''प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधि'** कहते हैं। संभवतः बाण ने अपने गद्य में श्लेष, विरोध और परिसंख्या के निर्वाह की कला उन्हीं से अपनायी होगी।

बाणभट्ट की भाषाशैली :-

बाणभट्ट ने जब गद्यपरम्परा में दण्डी और सुबन्धु के उपरान्त अपनी गद्यरचना का प्रारम्भ किया तो दण्डी की गद्यरचना में पदलालित्य, सुबन्धु की रचना में श्लेषप्रचुरता एवं अलंकृत शैली का विस्तारपूर्वक विकास हो गया था।

गद्यकाव्य के विषय में उस युग की सामान्य प्रवृत्ति घने समासों से युक्त ओजोगुणमयी भाषा का प्रयोग करना था क्योकि दण्डी जैसे सुललित गद्य के प्रणेता को भी यह उद्घोष करनी पड़ी थी कि –

'ओजः समासभूयस्तवमेतद्गद्यस्य जीवितम् ' –कन्यादर्श १/८०

अर्थात् समास बहुल ओजगुण गद्य का जीवन हे। ऐसी परिस्थिति में बाण के समयानुसार, समास–बहुल श्लेषमयी–शैली का स्वीकारना आवश्यक हो गया। इस पर बाणभट्ट ने दण्डी के पदलालित्य का यथायोग्य निर्वाह करते हुए सुबन्धु की अलंकृत शैली का आधार ग्रहण करके एक नवीन गद्यशैली का अविष्कार किया है। हर्षचरित की प्रस्तावना में बाणभ्टट ने अपनी शैली का आदर्श प्रस्तुत करते हुए लिखा है –

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽश्लिष्टः स्फुटोरसः।
विकटाक्षर बन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्।।[1]

[1] हर्षचरितम् हिन्दी व्याख्याकारः तं० जगन्नाथपाठकः साहित्याचार्यः मुद्रक विद्याविलास प्रेस वाराणसी संस्करण तृतीय, वि० संवत् २०२८ चौखम्बा विद्याभवन प्रथम उच्छासः १/८

अर्थात् मौलिक कल्पना, सुरुचिपूर्ण स्वभावोक्ति, आक्लिष्ट श्लेष, स्फुटरूप से प्रतीयमान रस तथा दृढ़बन्ध पदावली, इन समस्त गुणों का एकत्र सन्निवेश दुर्लभ है। दूसरे के मन के भावों के यथातथ्य चित्रण

'अन्यचिन्तितस्वभावाभिप्रायवेदकम्' तथा अभिनव अर्थ की कल्पना *'उत्कृष्टकविगद्यमिव विविधवर्णश्रेणिप्रतिपाद्यमानाभिनवपार्थसंचयम्'* को बाण उत्कृष्ट गद्य–शैली का प्रधान लक्षण मानते हैं।

अग्नि पुराण में शैली की दृष्टि से गद्य के तीन भेदों का निरूपण किया गया है। प्रथम हैं – चूर्णक, द्वितीय हैं– उत्कलिका तथा तृतीय हैं– वृत्तगन्धि।
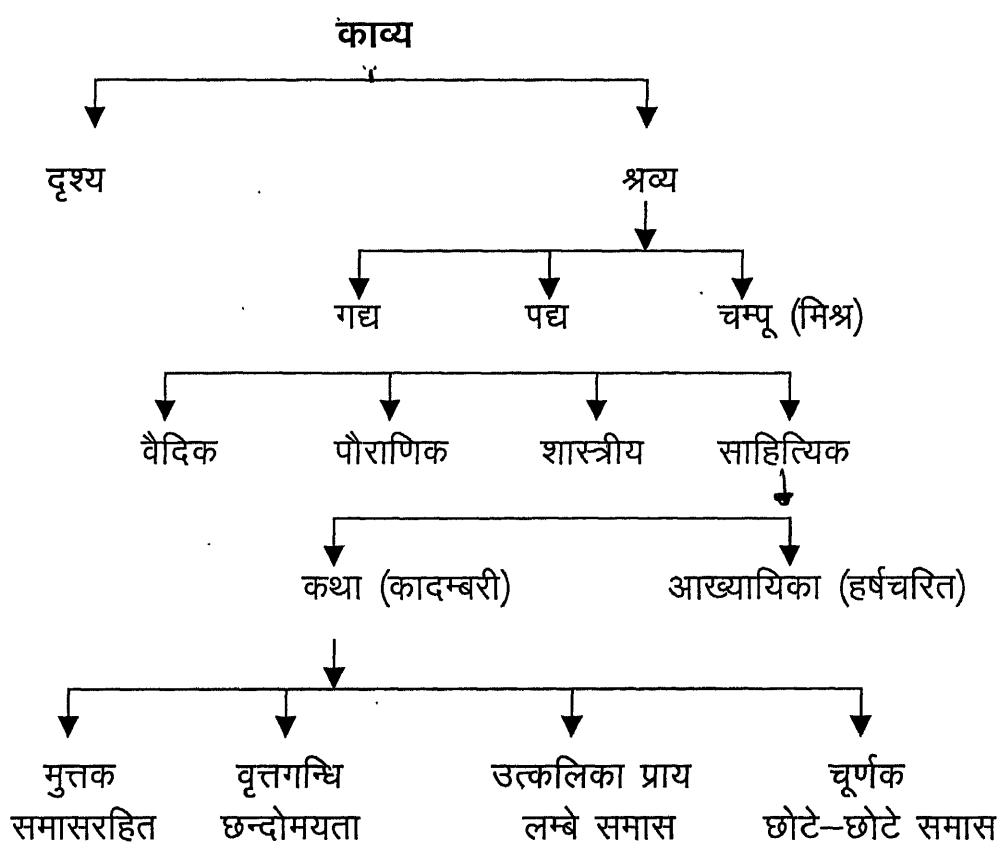
<u>चूर्णक</u> :– छोटी–छोटी कोमल पदावली से युक्त और अत्यन्त मृदुसन्दर्भ में पूर्ण गद्य को चूर्णक कहते हैं।

उत्कलिका :- जिसमें बड़े–बड़े समासयुक्त पद हो, उसका नाम उत्कलिका है।

वृत्तगन्धि :- जिसका विग्रह अत्यन्त क्लिष्ट हो जिसमें पद्य की छाया का आभास मिलता है। वह वृत्तगन्धि है।[1]

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने भी गद्य के चार प्रकारो का उल्लेख किया है[2] – मुक्तक , वृत्तगन्धि, उत्कलिका।

चूर्णक - *'वृत्तगन्धोज्झितं गद्यं मुस्तक, वृत्तगन्धि च।।*

भवेदुत्कलिका प्रायं चूर्णकं च चतुर्विधम्।

आद्यं समास रहितं वृत्तभागयुतं परम्।

अन्यद् दीर्घ समासाढयं तुर्यं चाल्प समासकम्।।

मुक्तक समासरहित होता है, वृत्तगन्धि में गद्य के अंश रहते हैं, उत्कलिकाप्राप में दीर्घ समास तथा चूर्णक में छोटे–छोटे समास होते हैं।

बाण की रचनाओं में मुस्तक, उत्कलिकाप्राप तथा चूर्णक प्राप्त होते हैं। मुक्तक का उदाहरण शूद्रक के वर्णन के निम्न गद्यांश से परिलक्षित होता है।

कर्त्ता महाश्चर्याणाम्, आहर्ताक्रतूनाम्, आदर्शः सर्वशास्त्रणाम्, उत्त्पत्तिः कलानाम्, कुलभवनं गुणानाम्, आगमः काव्यामृतरसानाम् उदयशैलो मित्रमण्डलस्य .... राजा शूद्रको नाम्।[3]

उत्कलिकाप्राप उदाहरण अधोलिखित है –

"तस्य च राज्ञः कलिकाभयपुंजीभूतकृतयुगानुकारिणी, त्रिभुवन प्रसवभूमिरिव विस्तीर्णा गज्जन्मालवविलासिनी कुचतटास्फालनजर्जरितोर्मिमालया जलाव गाहनावतारित जयकुञ्जरकुम्भसिन्दूर संध्यायमानसलिलयोन्मदकलहंस–

---

[1] अग्निपुराणांक, अध्याय ३३७, पृ० ५७३

[2] साहित्य दर्पण ६/३३०–३३२

[3] कादम्बरीकथामुखम्, पृष्ठ ८७

कुलकोलाहाहलमुखरित कूलया वेत्रवत्या परिगता विदिशा भिधाना नगरी राजधान्यासीत्।"[1]

चूर्णक शैली का उदाहरण है–

" तस्य चातिविजिगीषुतया महासत्वतया च लघुवृत्ति स्त्रैणमाकलयतः प्रथमे वयसि वर्तमानस्यापि रूपवतोऽपिसन्तानार्थिभिर मात्यैरपेक्षित स्यापि सुरतसुखस्योपरि द्वेष इवासीत्।[2]*"*

बाण के गद्य की रीति पंचाली है जिसमें अर्थ के अनुरूप ही शब्दो का गुम्फन होता है–

"शब्दार्थयोः समोः गुम्फः पांचालीरीतिरिष्पते।
शिलाभट्टारिकावाचि वाणोक्तिषु च सा यदि।।"

– सरस्वती काण्ठाभरण

विषयानुरूप शब्दावली का प्रयोग बाणभट्ट की अपनी विशिष्टता है। कृष्णकुमारशास्त्री ने लिखा है कि "उनकी निरूपण शैली में शब्द और अर्थ, भाषा और भाव का रुचिर सामञ्जस्य स्पष्ट परिलक्षित होता है।"

बाण ने वर्णनानुसार भाषा का प्रयोग किया है विन्ध्याटवी के जंगलों के वर्णन में विकट शब्दों तथा समासों का प्रयोग किया है –

---

[1] कादम्बरीकथामुखम्– व्याख्याकार डॉ० राजेन्द्रमिश्र डॉ० गिरिजाशंकर चतुर्वेदी । अक्षयवट प्रकाशन प्रथम संस्करण १९८९, पृष्ठ ९८–९९

[2] कादम्बरीकथामुखम्– व्याख्याकार डॉ० राजेन्द्रमिश्र डॉ० गिरिजाशंकर चतुर्वेदी । अक्षयवट प्रकाशन प्रथम संस्करण १९८९, पृष्ठ १०४

क्वचित् प्रलयवेलेव महावराहदृष्टासमुस्त्वातधरणिमण्डला, क्वचिदुद् वृत्तमृगपतिनाद भीतेव कण्टकिता, क्वचिन्मत्तेषकोकिल कुल प्रलायिनी, क्वचिदुन्मत्तेव वायुवेगकृततालशब्दा .... ।[1]

बसन्त ऋतु के वर्णन में तदनुरूप सुकुमार वर्णों का विन्यास करके बाण ने अपनी भाषाचातुरी का सुन्दर परिचय दिया है –

"अशोकतरूताडनारणित – रमणीमणिनूपुरझङ्कारसरस्त्रमुखरेषु सकलजीवलोक हृदयानन्द दायकेषु मधुमासदिवसेषु "[2]

बाणभट्ट ने पम्पासरोवर का वर्णन करने के लिए विषय के अनुकूल कोमलकान्त सरस पदावली का प्रयोग करके अद्भुत मेधा का परिचय दिया है–

"उत्फुल्लकुमुद–कुवलय–कह्लारम्, उन्निद्रारविन्द–मधुबिन्दुबद्ध चन्द्रकम, अलिकुलपटलान्ध कारित सौगन्धिकम्, सारसितममदसारसम् अम्बरूहमधुपान–मत्त–कलहंस–कामिनीकृतकोलाहलम्, अनेक जलचर–पतङ्ग शतसञ्चलन–चलितवाचालीवीचिमालम् .... ।"[3]

भाव प्रधान विषय–वर्णन दीर्घकाय समास पदावली से उतना रूचिकर नहीं हो सकता जितना समास रहित पदावली अर्थात् लघु वाक्यों से भावप्रधान वर्णन की रसाभिव्यक्ति का आस्वाद प्राप्त किया जा सकता है।

जब बाण किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति या वस्तु का वर्णन करने लगते हैं तब पहले एक लम्बे वाक्य में उसके प्रधान स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं। इसके बाद

---

[1] कादम्बरी कथामुखम् पृ० १६२
[2] कादम्बरी प्रथमोभागः, पृ० – ५३२–३३
[3] कादम्बरी कथामुखम् पृ० २०७–२०८

यः, यम्, येन आदि के द्वारा वाक्य प्रारम्भ करते हैं और उसके स्वरूप को और स्फुटित करते हैं। शूद्रक, तारापीड, आदि के वर्णन में कवि ने इसी प्रकार निर्वाह किया।[१]

बाण समासों के गुम्फन करने में अत्यन्त प्रवीण हैं जहाँ वर्णनातत्व की प्रधानता है, वहाँ भाषा प्रायः समास गुम्फित है और जहाँ भावना तत्त्व की प्रधानता है वहाँ भाषा सरल है तथा असमस्त पदावली दृष्टिगोचर होती है। बाण ने प्रायः छः—सात पदों वाले समासों का प्रयोग किया है। अधोलिखित समस्त पद अवलोकनीय है —

'जलधर जललुब्धविप्रलब्धमुग्धचातक ध्वानमुखरित तमालखण्डैः'

<u>क्रियाएं</u> :—

बाण ने बड़ी प्रवीणता से क्रियाओं का प्रयोग किया है। कहीं—कहीं क्रियाएं वाक्यों के प्रारम्भ में प्रयुक्त हुई है। जिस स्थान पर क्रिया की अपेक्षा कर्तृपद के प्रधानता देनी होती है, वहाँ अन्त में कर्तृपद और उसके ठीक पहले क्रियापद का प्रयोग होता है।

<u>विशेषण</u> :—

बाणभट्ट ने प्रत्येक पंक्ति में विशेषण का प्रयोग किया है। एक—एक विशेष्य का उन्होंने अनेक विशेषण दिया है। दण्डकारण्य के आश्रम का वर्णन बाण करते हैं — *'गोदवर्या, परिगतमाश्रमपदमासीत्'*। आश्रम वृक्षों से उपशोभित है — *'उपशोभित पादपैः'*। अब पादपैः के विशेषण आते हैं। उनमें एक विशेषण हैं — *'उपरचितालवालकैः'*।

---

१ "आसीद्शेषनरपतिशिरः समभ्यर्चितशासनः ....। "
— कादम्बरी कथामुखम् पृ०—८३

बाण की शैली में सूक्ष्म निरीक्षण–शक्ति, अलंकृत वर्णन प्रणाली, प्रकृष्ट प्रकृति–प्रेम, उर्वर कल्पना, अजास्र शब्द राशि तथा मौलिक अर्थों की उद्भावना– ये सभी गुण सर्वत्र समान रूप से परिलक्षित होते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उनकी शैली सर्वथा दोष–रहित है। उनके वर्णन प्रायः बहुत लम्बे हो जाते हैं। उनकी कल्पना सदा मुक्तहस्त रही है, अस्थान ओर अपात्र मे भी उसने अपनी सम्पत्ति की अजस्त्र वर्षा की है। पाश्चात्य आलोचक उनके गद्य की आलोचना करते हैं उसमें प्रमुख है डॉ० बेवर तथा कीथ। **डॉ० बेवर** ने लिखा है –

"In short, Bana's Prose is an Indian wood where all profress is sendered impossible by the undergrowth wntil the traveler cuts out a path for homsefl and where even then, he has to reckon with malicious wild beasts in the shope of unknown words that of fright him."

अर्थात् "बाण का गद्य एक भारतीय वन है, जिसमें जब तक यात्री झाड़ियो को काटकर अपने लिए मार्ग न बनाये, उसका आगे बढ़ना असम्भव है, और जहाँ, फिर भी, अप्रचलित शब्दों के रूप में अनेक जंगली हिस्त्र पशुओं से उसका सामना होता है,जो उसको भयभीत करते हैं।"

किन्तु बाण के साथ यदि हमें न्याय करना है तो हमें उनके समय की प्रवृतियों को ध्यान में रखकर ही उनकी समीक्षा करनी चाहिए, केवल आधुनिक मानदण्डों की कसौटी पर उनके काव्य की परीक्षा करना उनके साथ न्यान्य नहीं होगा। एक समालोचक के अनुसार – बाण के आलोचकों की सबसे बड़ी दुर्बलता यही रही कि वे यह भूल जाते हैं कि बाणभट्ट अलंकृत युग के कलाकार हैं, इसीलिए उनकी गद्यशैली अलंकृत है, ज्ञान–विज्ञान से अभिमण्डित है, बाण तत्कालीन गद्य–शैली की मान्यताओं के अनुरूप ही अपने साहित्य का

सृजन करते हैं। संस्कृत भाषा का उन्होंने अनुचरो से घिरे सम्राट की भांति प्रस्थान कराया है और कथा को पीछे–पीछे प्रच्छन्न भाव से छत्रधर की भांति छोड़ दिया है । उनके भाषा –कौशल और कल्पना–वैचित्र्य से ही उनकी कृतियां इतनी आकर्षण और लोकप्रिय हुई है। **डॉ० वरदाचारी** ने सम्यक् लिखा है – "यह सच है कि बाण के द्वारा प्रयुक्त शब्दों के श्लेषों में शब्दों की खींचातानी हुई है और उसने जिन कथानकों का संकेत किया है उसमें बहुत से अप्रचलित है। बाण की रचना उनके लिए ही भयावह है, जिन्होंने संस्कृत साहित्य का समुचित रूप से अध्ययन नहीं किया है। अतः बाण के ग्रन्थों का रसास्वाद न लेने में पाठक की अनभिज्ञता ही कारण है न कि बाण की रचनाशैली"।

बाणभट्ट ने गद्यशैली के आदर्श का स्पष्टीकरण भी हर्षचरित तथा कादम्बरी की प्रस्तावना में कर दिया है फिर भी आलोचक उन पर आक्षेप करें तो आलोचकों की बुद्धि दरिद्रता के अतिरिक्त और क्या है ? कथा के मध्य में आने वाले दीर्घकाय वर्णन भले ही आधुनिक समालोचकों को अच्छे न लगे, संस्कृत काव्यों के रसज्ञ प्राचीन आचार्यों को तो वे रसकलश–सदृश प्रतीत होते थे। प्राचीन भारतीय आलोचकों ने बाण की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। गोवर्धनाचार्य उनको सरस्वती का अवतार कहते हैं –

जाता शिखण्डिनी प्राक् यथा शिखण्डी तथावगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकं वाप्तुं वाणी वाणो बभूवेति।।

धर्मदास ने रचनाशैली की प्रशंसा प्रश्नोत्तर की विचित्र शैली के द्वारा कहा है –

रूचिरस्वरवर्णपदा रस भाववती जगन्मनो हरति।

तत्किं तरूणी ? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य।।

जयदेव ने तो बाणभट्ट को कविताकामिनी के हृदय में रहने वाला कामदेव तक कह डाला है –

"हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः"।

बाणभट्ट के वक्रोक्ति, सरस, श्लिष्ट मनोरम कल्पनाएं, अक्षय शब्दकोष, विविधदर्शन एवं शास्त्र सम्बन्धी पाण्डित्य, विषयानुसारिणी शब्दयोजना, रसाभिव्यक्ति, भावप्रवणता, स्वरमाधुर्य आदि विशेषताओं से प्रभावित होकर भारतीय विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए कहा है –

"बाणोच्छिष्टम् जगत्सर्वम्"।

यह यथार्थ है कि बाणभट्ट के सरस, आलंकारिक वर्णनों की शब्दयोजना, विषयानुसारिणी, वाक्यावली, रसाभिव्यक्ति आदि गुणों को देखकर प्रतीत होता है कि बाण के अनन्तर जो भी रचनाएं हुई हैं वे बाण भट्ट की अनुकरण मात्र है उनमें कोई नवीन कल्पना और शैली का दर्शन नहीं होता इसलिए बाण के अनन्तर की सभी रचनाएं एक जूठनमात्र हैं।

वस्तुतः बाणभट्ट की रचना शैली उन सभी विशेषताओ को आत्मसात् किये हुए हैं जो विशेषताएं एक सर्वोत्कृष्ट गद्य–रचना में होनी आवश्यक है। बाणभट्ट ने स्वयं राजभवन के वर्णन के प्रसंग से उत्कृष्ट गद्य का लक्षण बताते हुए लिखा है कि –

"उत्कृष्ट कविगद्य विविध वर्ग श्रेणी प्रतिपाद्यमानाभिनवार्थसंचयम्"।

बाणभट्ट ने छोटे–छोटे सारगर्भित वाक्यों का भी प्रयोग करके गद्य को सरलता की ओर मोड़ा है। कादम्बरी के शुकनाशोपदेश में लक्ष्मी की निःसारता

के विषय में मनोज्ञ और पाठकों के हृदय को आकर्षित करने वाले वाक्यों का प्रयोग किया है –

"न परिचयं रक्षति। नाभिजन मीक्षते। नरूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति। न श्रुत माकर्णयति। न धर्म मनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति। नाचारं पालयति। न सत्यमनुबुध्यते। न लक्षणं प्रमाणी करोति।[1]

अर्थात् लक्ष्मी न परिचय की रक्षा करती है, न कुल को देखती है, न रूप को देखती है, न कुलक्रम का अनुसरण करती है, न शील को देखती है, न चातुर्य अथवा पाण्डित्य समझती है, न शास्त्र को सुनती हैं, न धर्म का अनुरोध करती है, न त्याग का आदर करती है, न विशेषज्ञता का विचार करती है, न आचार का पालन करती है, न सत्य को जानती है ओर न शरीरस्थ लक्षणों का प्रमाण मानती है।

जिस समय पुण्डरीक महाश्वेता को देखकर काम के शर से आहत हो जाता है उस समय उसका परममित्र कपिञ्जव उसको समझता है यहाँ भी सारगर्भित छोटे–छोटे वाक्यों के द्वारा वर्णन है –

'सखे पुण्डरीक नैतदनुरूपं भवतः। क्षुद्रजनक्षुण्ण एष मार्गः। धैर्य धनाहि साधवः। किं यः कश्चन प्राकृत इव विक्लवीभवन्तमात्मानं न रूणत्सि। कुतस्तवायूर्वोऽयमाधेन्द्रिलोपप्लवः, येनास्येवं कृतः। क्वते तद्धैर्यम्, कवासाविन्द्रियजयः, क्वतद्वशित्वम्, चेतत्वः क्वसा प्रशान्तिः, क्वतत्कुलक्रमागतं

[1] कादम्बरी प्रथमोभागः पृ०–४०१–४०२

ब्रह्मचर्यम्, क्वसा सर्वविषयनिरुत्सुकता, क्व ते गुरुपदेशाः, क्वतानि श्रुतानि, कव ता वैराग्य बुद्धयः, क्व तदुपभोगविद्वेषित्वम् .... ।[1]

अर्थात् 'मित्र पुण्डरीक, यह आपके अनुरूप नहीं है। यह नीच मनुष्यों द्वारा चला हुआ मार्ग है। साधु लोगों का वास्तव में धैर्य ही धन होता है। जिस किसी साधारण मनुष्य के समान विकल होते हुए अपने को क्यों नहीं रोकते हो? यह अननुभूत प्रथम इन्द्रियो का उपद्रव कहां से आया, जिसके द्वारा ऐसे कर दिये गये हो ? तुम्हारा वह धैर्य कहाँ है ? वह इन्द्रिय–विजय कहाँ है ? वह संयम कहाँ है? वह चिन्त की शान्ति कहाँ हैं ? वह कुल–क्रमागत ब्रह्मचर्य कहाँ है ? वह सब विषयो के प्रति निरुत्सुकता कहाँ है ? तुम्हारा गुरुओं का उपदेश कहाँ है ? वे ज्ञान कहाँ है ? वे वैराग्य बुद्धियां कहाँ हैं ? उपभोग के प्रति वह विद्वेष कहाँ हैं ?

उपर्युक्त उदाहरणों में हमने देखा कि जहाँ बाणभट्ट ने लम्बे–लम्बे सामाजिक वाक्यों की रचना की है वही उन्होंने छोटे–छोटे पाठकों के हृदयग्राही शब्दों का भी विन्यास किया है। चाहे वह लक्ष्मी के अवगुणों को बताने में हो या कपिञ्जल द्वारा अपने मित्र पुण्डरीक को फटकारने में हो।

महाकवि बाणभट्ट की इन्हीं विशेषताओं को अन्तःमनन करते हुए उनकी गद्य की शैली से प्रभावित होकर चन्द्रदेव ने उन्हें गद्य वाङ्मय का पञ्चानन कहा है –

---

[1] कादम्बरी प्रथमोभागः पृ०–५६२–६३

श्लेषे केचन शब्द गुम्फविषये केचिद्रसे

चापरेऽलङ्कारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने।

आसर्वत्र गभीर धीर कविता विन्ध्याटवी चातुरी,

संचारी कविकुम्भि कुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः।।

बाण ने छोटे हृदयग्राही वाक्यों के अतिरिक्त राजवैभव, नारीरूप छटा, प्रकृति–रमणीयता के चित्रण के अवसर पर दीर्घ समास तथा लङ्कारों से मण्डित वाक्यों का प्रयोग किया है। जिससे पाठकों के हृदय पर वर्णन अपने संश्लिष्ट तथा संघटित रूप में अपने अंग–प्रत्यंग से परिपूर्ण भाव में अपना प्रभाव जमावे तथा उनके नेत्रों के सामने वस्तु का पूर्ण चित्र झलक उठे। शूद्रक, जाबालि का आश्रम, विन्ध्याटवी, महाश्वेता तथा कादम्बरी का वर्णन इसी शैली में प्रयुक्त होने से इतने सुन्दर तथा प्रभावशाली है। सारांशतः हम कह सकते हैं कि बाण की गद्यशैली तथा वर्ण्य विषय में अद्भुत सामञ्जस्य है।

डॉ० बलदेव उपाध्याय के शब्दों में –

"बाण संस्कृत भाषा के सम्राट हैं। शब्दों पर उनकी अद्भुत प्रभुता है। गद्य में अद्भुत प्रवाह है। कहीं उनका गद्य घोररोर करने वाली बरसाती नदियों की भांति बड़े वेग से बहता है, तो कहीं वह शरत्कालीन शान्त सरिता के समान मन्द गति से चलकर अपूर्व सौन्दर्य दिखलाता है।"[1]

उपर्युक्त कथन बाण की रचनाओं में अक्षरशः सत्य है।

इस प्रकार बाण की शैली का अध्ययन करके हमने पाया कि बाण की भाषा परवर्ती कवियों के लिए आदर्श रही धनपाल, वादीभसिंह, अभिनन्द,

---

[1] संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ० बलदेव उपाध्याय पृष्ठ ३६६

त्रिविक्रमभट्ट इत्यादि की रचनाओं में बाण की ऊँची कल्पनाओं, भावरेखाओं, चिन्तन पद्धतियों काव्य सौष्ठव आदि का प्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है।

महाकवि धनपाल ने कादम्बरी तथा हर्षचरित दोनो रचनाओं की प्रशंसा करते हुए बाण की शैली को सुधा के सदृश तथा उनकी कीर्ति को सागर के समान अक्षय बताया है –

कादम्बरी सहोदया सुधया वैबुधे ह्रदि।

हर्षाख्यायिकया ख्यातिं बाणोऽब्धिरिव लब्धवान्।।

❑❑❑

उ
प
सं
हा
र

उपसंहार

अष्ट अध्याय में विभक्त प्रस्तुत शोध– प्रबन्ध 'कादम्बरी गद्य का साहित्यिक मूल्याङ्कन' में साहित्यिक सभी पक्षों पर शोध–परक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। उपसंहारतः हम कह सकते हैं कि लैकिक संस्कृत के गद्य का प्रादुर्भाव कृष्ण यजुर्वेद से ही परिलक्षित होने लगता है। इसकी अलंकृत गद्यशैली का चूडान्त निदर्शन दण्डी, सुबन्धु, बाण की कृतियों में मिलता है।

बाणभट्ट की कालजयी रचना कादम्बरी कथा संस्कृत वाङ्मय का समुज्ज्वल हीरक है। अलङ्कार तथा रस के मधुर मिलन में, भाषा तथा भाव के परस्पर सम्पर्क में कल्पना तथा वर्णन के अभूतपूर्व संघटन में कादम्बरी संस्कृत वाङ्मय मे ही नहीं, संसार के समस्त गद्य ग्रन्थों में सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। कादम्बरी समग्र रसिक ह्रदयों को मत्त करने वाली मधुर मधु है। बाण तनय की उक्ति कादम्बरी के लिए शतशः सत्य है–

'कादम्बरी रस भरेण समस्त एव, मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽपम्।'

कादम्बरी का कथानक रहस्य एवं रोमाञ्च से परिपूर्ण एवं अद्भुत है। इसकी रोचक कथा जिज्ञासा परक तथा मस्तिष्क का पर्याप्त अभ्यास कराने मे समर्थ है। इसका सम्पूर्ण कथानक एक पहेली सा ज्ञात होता है जो क्रमशः सुलझता हुआ, उलझता हुआ और पुनः सुलझता हुआ बढ़ता है। किसी भी एक पात्र के द्वारा सम्पूर्ण कहानी नहीं कही जाती। केवल एक पात्र द्वारा अन्य पुरुष की शैली में सम्पूर्ण कथा कहलाने पर सम्भवतः यह रोचकता न आ पाती। कथानक की दृष्टि से पाठक का कुछ स्थलों में दुर्बोधता एवं अहसजता प्रतीत

होती है। एक तो यह कि मुख्य कथानक जो कादम्बरी से सम्बद्ध है बहुत अन्त में आता है। जब कि समग्र कथा का आधे से अधिक कलेवर पूर्ण हो चुका होता है। दूसरा लम्बे–लम्बे वर्णनों तथा कल्पना की ऊँची उड़ानों को माना गया है। क्योंकि यह कथा प्रवाह में बाधक तथा औत्सुक्य के रोधक हैं।

बाणभट्ट ने कादम्बरी का कथानक गुणाढ्य की बृहत्कथा से लिया है। बृहत्कथा अनुपलब्ध है। इसका संक्षिप्त रूप कथा सरित्सागर में मिलता है। कथा सरित्सागर की कथा मे अनेक स्थलों में परिवर्तन करके विभिन्न पटलों को काव्यत्व का परिवेश पहनाकर राजसी ठाट–बाट से अलंकृत करके मानवीय भावों का तथा प्रकृति के उदात्त चित्रों का चित्रण प्रस्तुत किया है।

कादम्बरी को कथा तथा हर्षचरित की आख्यायिका के रूप में भामह, दण्डी, वामन, रूद्रट, आनन्दवर्धन इत्यादि ने निर्विरोध माना है। कथा की जो विशेषताएं होती हैं वे सब कादम्बरी मे उद्घाटित होती हैं।

जहाँ तक बाणभट्ट के स्थितिकाल का सम्बन्ध है वह तो जगत् प्रसिद्ध है। वे हर्ष के समकालिक थे जिनका समय ६०६–६४७ ई० के मध्य रखा जाता है। बाण की कृतियो हर्षचरित एवं कादम्बरी से भी उनके जीवन–वृतान्त का ज्ञान प्राप्त होता है उनकी अन्य कृतियाँ चण्डीशतक, पार्वतीपरिणय, मुकुट ताडितक, पद्य कादम्बरी है। मुकुट ताडितक इस नाटक का एक श्लोक नलचम्पू के टीकाकार चण्डपाल और गुणविनय के व्याख्या में प्राप्त होता है। पर यह रचना अधुना उपलब्ध नहीं है। इसी प्रकार पद्यकादम्बरी के विषय में भी कहा जा सकता है।

जहाँ तक बाणभट्ट के पात्रों का प्रश्न है, कादम्बरी के पात्रों का प्रश्न है, कादम्बरी के पात्र मानवीय गुणों के लिए हुए हैं, वे प्रेम, वात्सल्य, वीरता, औदार्य, त्याग, तपश्चर्या, ज्ञान आदि की मूर्ति है। सच्ची मित्रता का जैसा ज्वलन्त उदाहरण कादम्बरी में मिलता है वैसा अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। कादम्बरी सखी महाश्वेता के दुःख से दुःखी होकर विवाह न करने का प्रण करती है। चन्द्रापीड मित्र वैशम्पायन के प्राणान्त होने पर स्वयं प्राणो का परित्याग कर देता है। बाण के पात्र प्रेम की गहनता का सन्देश देते हैं।

शुकनाश मन्त्री के उपदेशों की तो कोई भी सुधी पाठक विस्मरण नहीं कर सकता। उन्होंने लक्ष्मी के जिन अवगुणों का वर्णन किया है। वह आज के परिप्रेक्ष में भी उक्तिपूर्ण है। सम्प्रति हम लक्ष्मी के पीछे भाग रहे हैं यही जगत् के पतन का कारण है। कादम्बरी की नायिका कादम्बरी अभिज्ञान शाकुन्तलम् की नायिका की तरह प्रेमपीड़ा से ग्रसित होकर अपने कर्तव्यों को नहीं भूलती वह शालीनता का परित्याग नहीं करती, चन्द्रापीड की मृत्यु हो जाने पर वह अश्रु बहाना अमंगल समझती है और धूलि के समान चन्द्रापीड का अनुसरण करने में हर्ष समझती है। जैसा कादम्बरी के उत्तरार्द्ध में वर्णित है–

'कथं स्वर्ग गमनोन्मुखस्य देवस्य रुदितेनामङ्गलं करोमि। कथं पाद धूलिरिव पादावनुगन्तुमुद्यता हर्षस्थानेऽपि रोदिमि।'

कादम्बरी की यह करुण दशा भारतीय आदर्श नायिका के सर्वथा अनुकूल एवं अनुरूप चित्रित की गयी है। महाश्वेता और कादम्बरी का प्रेम पुट पाक की तरह है जो विरहाग्नि में जलती रहती है। ये सीता और सावित्री के समान परिलक्षित होती है। कादम्बरी में पूर्वजन्म का जो चित्रण किया गया है वह

भारतीय जनमानस के अनुकूल है जो सम्भवतः आज के यथार्थदर्शी पाठको को पसन्द न आये। इसका सम्पूर्ण आधार प्रेमतत्व ही है। बाण की प्रेम भावना कालिदास की प्रेम भावना से मिलती जुलती है। जिस प्रकार कालिदास ने प्रेम–भावना को पूर्वजन्म के संस्कारों पर आधारित माना है वैसा ही बाण ने भी वर्णन किया है। ~~वैशम्पायन पूर्वजन्म के संस्कारों पर आधारित माना है वैसा ही बाण ने भी वर्णन किया~~ है। वैशम्पायन पूर्वजन्म के संस्कारवश ही महाश्वेता पर आकर्षित होकर प्रणय निवेदन प्रस्तुत करता है। प्रेम की चरम परिणति भी बाण ने कालिदास की भांति सदैव विवाह में दिखलाया है। इस परिप्रेक्ष में दण्डी के दशकुमारचरित से तुलना करने पर स्पष्ट अन्तर दिखलाई पड़ता हे। दशकुमार चरितप्रेम वासनात्मक है। निष्कर्षतः दण्डी नितान्त यथार्थवादी है और बाण नितान्त आदर्शवादी हैं। नारी पात्रों के सौन्दर्य वर्णन में बाण ने एक सी भाषा का प्रयोग किया है चाहे वह अनिन्द्य सुन्दरी महाश्वेता हो या फिर भिलनी चाण्डाल कन्या हो।

प्रकृति चित्रण के माध्यम से कवि बाण की मौलिकता अन्तः करण के उद्‌गार एवम् उनकी कल्पना शक्ति हमारे समक्ष अवतरित होती है। उनके प्रकृति चित्रण की विशेषता रही है कि उन्होंने प्रकृति के भयानक एवं मृदु दोनों पक्षों की उपेक्षा नहीं की है जहाँ हमें विन्ध्याटवी के भयानक वर्णन से भय का सञ्चार होने लगता है वहाँ जाबालि आश्रम के वर्णन से शान्ति की अनुभूति होती है। उन्होंने वर्णनानुसार ही कठोर और मृदु भाषा का प्रयोग किया है। जिससे वर्णन में चार चाँद लग जाते हैं। बाण के सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रमा, बसन्त ऋतु विशेषतया दर्शनीय है। बाण के सौन्दर्य बोध में रंगों की निराली छटा का संसार उकेर दिया गया है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने बाण के विषय में सत्य ही कहा

है कि "इस प्रकार वर्ण सौन्दर्य के विकास की क्षमता संस्कृत का दूसरा कोई कवि नहीं दिखा सका।"

जहाँ तक रसों का प्रश्न है रस काव्य की आत्मा माने गये हैं। कादम्बरी प्रधानतः श्रृङ्गार रस प्रधान रचना है। इसमें श्रङ्गार के दोनों पक्षों का मार्मिक चित्रण हुआ है। इसके अतिरिक्त करुण, भयानक, अद्भुत, शान्तरस का वर्णन है। चूंकि विप्रलम्भ श्रङ्गार में मृत्यु का वर्णन निषिद्ध होता है इसलिए इसका वर्णन कादम्बरी में नहीं है। करुणरस के प्रसङ्ग में शुक–वृत्तान्त का वर्णन हमारे हृदय को द्रवित कर जाता है उसके जीवन जीने की जिजीविषा आज के मानव की सच्ची मनोव्यथा है।

काव्य के शोभावर्धक अलङ्कारों का भी चित्रण बाण ने सुभग एवं मनोरम रूप में किया है। बाणभट्ट ने कादम्बरी मे अनेक अलङ्कारों का प्रयोग किया है। अलङ्कारों के प्रयोग में वे दक्ष है। उनकी अलङ्कार प्रियता को हम उस समय की दृष्टि में उपयुक्त मानकर आलोचना नहीं कर सकते। उन्होंने शब्दालङ्कार एवं अर्थालङ्कार दोनों का सफल चित्रण किया है। कवि का मन उत्प्रेक्षा के विन्यास में अधिक रमता है। इसलिए साहित्याकाश में 'उत्प्रेक्षा बाण भट्टस्य' इस सूक्ति की कमनीयता सभी आलोचकों ने प्रायः स्वीकार की है। परिसंख्या के प्रयोग में भी बाण सिद्धहस्त हैं।

बाणभट्ट की भाषा शैली समास बहुल एवं ओजो गुणमय है। बाण ने दण्डी के पद लालित्य का यथायोग्य निर्वाह करते हुए सुबन्धु की अलंकृत शैली का आधार ग्रहण करके एक नवीन गद्य शैली का अविष्कार किया है। हर्षचरित की प्रस्तावना में बाणभट्ट ने अपनी शैली का आदर्श प्रस्तुत किया है–

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽश्लिष्टः स्फुटोरसः।

विकटाक्षर बन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्।।

— हर्षचरित

बाण की शैली पाञ्चाली है। इनकी रचना में चूर्णक, मुक्तक, उत्कलिका प्राप्त होता है। विषयानुरूप शब्दावली का प्रयोग बाणभट्ट की अपनी विशिष्टता है। ये समासों के गुम्फन में अत्यन्त प्रवीण हैं जहाँ वर्णनातत्व की प्रधानता है, वहाँ भाषा प्रायः समास गुम्फित और जहाँ भावनातत्व की प्रधानता है वहाँ भाषा सरल तथा असमान पदावली से युक्त दृष्टिगोचन होती है।

पाश्चात्य विद्वानों कीथ और डॉ० वेवर ने उनकी शैली की आलोचना की है। पर आलोचक यह विस्मरण कर जाते हैं कि बाण अलंकृत शैली के गद्यकार हैं। बाण के दृग् बिन्दु और उनके युग परिसर को ध्यान में रखकर देखने में इन आलोचकों की मान्यताएं निराधार प्रतीत होती हैं। बाण ने वर्णन प्रक्रिया तथा विषय निर्वाह के क्षेत्र में प्रायः नत्य सरणि का अनुसरण किया है। उनके निरूपण शैली में शब्द और अर्थ भाषा और भाव का रूचिर सामञ्जस्य स्पष्ट परिलक्षित होता है।

शैली के विषय में पं० गोवर्धनाचार्य ने उनको सरस्वती का अवतार कहा है —

जाता शिखण्डिनी प्राक् या शिखण्डी तथा व गच्छामि।

प्रागल्भ्यमधिकं वाप्तु वाणी बाणो बभूवेति।।

परवर्ती कवियों एवं गद्यकारों पर भी बाण का सशक्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। जैसे— धनपाल, वादीभसिंह, अनन्तशर्मा, त्रिविकमभट्ट इत्यादि।

बाण के गद्य की उपर्युक्त विशिष्टताओं के कारण ही इनके सम्बन्ध में उक्त प्रशस्तियाँ जैसे— बाणोच्छिष्टं, जगत्सवम् तथा बाणस्तु पञ्चाननः अक्षरक्षः सत्य प्रतीत होता है। कीर्ति कौमुदीकार का कथन है कि कादम्बरी का श्रवण करके कवियों का मौनाश्रित होना उचित ही है अन्यथा बाण की वाणी से कानो का पवित्र होना सम्भव नहीं होगा—

युक्तं कादम्बरीं श्रुत्वा कवयो मौनमाश्रिताः।

बाणध्वनावनध्यायो भवतीति स्मृतिर्यतः।।

बाणभट्ट की कादम्बरी में सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति, चमत्कृत वर्णन प्रणाली, अक्षय शब्दराशि तथा कल्पना प्रसूत मौलिक अर्थों की उद्भावना परिलक्षित होता है। हिन्दी की कहावत 'जहाँ न पहुँचे रवि वहाँ पहुँचे कवि' बाण पर अक्षरशः सत्य प्रतीत होती है। इन्हीं विशिष्टताओं के लिए इन्हें 'वश्यवाणी कविचक्रवर्ती' की उपाधि भी दी गई थी।

अन्ततः अपने शोध—प्रबन्ध का समापन एक उक्ति से कर रही हूँ जिसमें कादम्बरी की लोकप्रियता के लिए कहा गया है जिस प्रकार लोग मदिरा के स्वाद से वशीभूत होकर भोजन को भी विस्मरण कर जाते हैं, उसी प्रकार कादम्बरी की अद्भुत कथा के आनन्द के मर्मज्ञ लोग भी इसके रस—सागर में निर्मग्न हो जाते हैं—

'कादम्बरी रसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते।'

□□□

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

अभिज्ञान शाकुन्तल : रमेशचन्द्र मोहन बोस की टीका से युक्त

अमरकोश : चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी, १६५७ ई०

अमरकोश : रघुवंश शर्मा शक सं० १८३५

अभिधर्म कोश : वासुशरण अग्रवाल भूमिका

अभिधान चिन्तामणि : विद्या विलास प्रेस वाराणसी वि०सं० २०२८

अमरशतक : अर्जुनवर्म देव कृत टीका

अनेकार्थ संग्रह : हेमचन्द्र, चौखम्बा संस्कृत सिरीज १६२६ ई०

अग्निपुराणांक : अग्निपुराण के आधार पर गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित जनवरी १६७१ ई०

बाणभट्ट का साहित्यिक अनुशीलन : डॉ० अमरनाथ पाण्डेय भारतीय विद्या प्रकाशन दिसम्बर १६७४

बाणभट्ट का आदान–प्रदान : डॉ० अमरनाथ पाण्डेय शब्दलोक प्रकाशन वाराणसी १६३७

चन्द्रलोक : डॉ० कृष्णमणि त्रिपाठी की प्रस्तावना, जयदेव सुरभारती प्रकाशन, चतुर्थ संस्करण १६६० ई०

ध्वन्यालोक : आनन्दवर्धन, चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी, १६४०

ध्वन्यालोक : डॉ० नरेन्द्र वि० सं० २०४२

दशरूपक : धनञ्जय, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी संवत् २०११

गाथा शप्तशती : हाल– निर्णय सागर प्रेस बम्बई १६३३ ई०

हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन : वासुदेव शरण अग्रवाल बिहार–राष्ट्र भाषा परिषद, पटना, प्रथम संस्करण १६५३ ई०

हर्षचरितम् प्रथम उच्छवासः : पं० जगन्नाथ पाठक साहित्याचार्य – पं० विद्याविलास प्रेस वाराणसी वि०सं० २०२८

हर्षचरितम् : शंकरकृत संकेत टीका से युक्त, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी १६५८ ई०

हर्षचरितम् : रंगनाथ कृत व्याख्या, केरल विश्वविद्यालय १६५८ई०

काव्यालङ्कार : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, सन १६६२ ई०

काव्यादर्श : दण्डी, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, १६५८ ई०

काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति : वामन विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि की व्याख्या से युक्त आत्माराम एण्ड सन्स १६५४ ई०

कादम्बरी (प्रथमोभागः)[१] : डॉ० श्री निवास शास्त्री, साहित्य भण्डार सुभाष बाजार, मेरठ तृतीय संस्करण १६७४

कादम्बरी कथामुखम्[२] : डॉ० राजेन्द्र मिश्र, डॉ० गिरिजा शङ्कर चतुर्वेदी अक्षयवट प्रकाशन प्रथम संस्करण १६८६

कादम्बरी उत्तर भागः[३] : मोहनदेवपन्तः मोतीलाल बनारसी दास वाराणसी, प्रथम संस्करण १६७७

कादम्बरी – एक सांस्कृतिक अध्ययन : वासुदेव शरण अग्रवाल, चौखम्बा विद्याभवन, सं० २०१४

[१–२] प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के समस्त उद्धरण इसी संस्करण से दिये गये हैं।

[३] प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के समस्त उद्धरण इसी संस्करण से दिये गये हैं।

काव्यमाला, : निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
प्रथम गुच्छक(१९२६ ई.)
चतुर्थ गुच्छक(१९३७ ई.)

कथा सरित्सागर : सोमदेव, द्वितीयखण्ड, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना, १९६१

काव्यप्रकाश : झलकीकर की टीका से युक्त १९५० ई०

काव्यानुशासन : वाग्भट्ट, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९१५ ई०

कुमार सम्भवम् : कालिदास एकादश संस्करण, निर्णय सागर मुद्रालय, बम्बई सन् १९३०

काव्यलङ्कार : रूद्रट (सत्यदेव चौधरी सम्पादित) वासुदेव प्रकाशन दिल्ली १९६५ ई०

महाभारत : प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ भाग गीता प्रेस गोरखपुर

महाभारत मीमांसा : चिन्तामणि विनायक वैद्य, अनु० माधवराज १९२० ई०

महाकवि भास : एक अध्ययन, बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, १९६४ ई०

नलचम्पू : त्रिविकमभट्ट, सम्पादक कैलाशपति त्रिपाठी वि०सं० २०३४

नवसाहसाङ्कचरित : पद्मगुप्त (प्रथम भाग) बम्बई १८९५ ई०

नलचम्पू : चण्डपालकृत टीका, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९०३ ई०

प्रतापरूद्रयशोभूषण : विद्यानाथ, कुमारस्वामी की रत्नापण नामक टीका से संवलित १९०६ ई०

प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास : डॉ० विमलचन्द्र पाण्डेय, सेन्ट्रल बुक डिपो इलाहाबाद १६७३

प्रभावकचरित : प्रभाचन्द्राचार्य (प्रथमभाग) अहमदाबाद, कलकत्ता १६४० ई०

रसावर्णवालङ्कार : शिङ्गभूपाल – त० गणपति शास्त्री द्वारा संसोधित १६६१ ई०

रसनिरूपणम् : डॉ० राजेन्द्र मिश्र

श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण : गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् २०२०

संस्कृत साहित्य का इतिहास : कीथ (अनुवादक मंगलदेव शास्त्री) मोती लाल बनारसी दास, वाराणसी, १६६० ई०

संस्कृत साहित्य का इतिहास : कन्हैया लाल पोद्दार (प्रथम भाग) नवलगढ़ १६३८ ई०

संस्कृत साहित्य का इतिहास : वाचस्पति गैरोला

संस्कृत साहित्य की रूपरेखा : श्री चन्द्रशेखर पाण्डेय, डॉ० शान्ति कुमार नानूराम व्यास १६६७

संस्कृत साहित्य का इतिहास : डॉ० बलदेव उपाध्याय चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी, सं० २०१५

संस्कृत साहित्य का इतिहास : डॉ० रामदेव साहू, श्याम प्रकाशन जयपुर २००१ ई०

संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास : डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, कटरा रोड, इलाहाबाद २०००

सरस्वती कण्ठाभरण : निर्णय सागर प्रेस बम्बई १६२५ ई०

सूर्यशतकम् :

सूक्ति मुक्तावली : जल्हण – ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट बड़ौदा १९३८ ई०

सदुक्ति कर्णामृत : श्रीधर पाठक, मोती लाल बनारसी दास १९३३ ई०

सरस्वती कण्ठाभरण : भोजदेव सम्पादक डॉ० कामेश्वर नाथ मिश्र १९७६ ई०

साहित्यदर्पणः : डॉ० सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी वि०स० २०२६

संस्कृत–कवि–दर्शन : डॉ० भोला शङ्कर व्यास, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी सं० २०१७

संस्कृत गद्यकार बाण : चुन्नी लाल शुक्ल, साहित्याचार्य, साहित्य भण्डार सुभाषबाजार

शार्ङ्गधर पद्धति : शार्ङ्गधर, गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल बुक डिपो १८८८

श्रृङ्गार प्रकाश : भोजदेव, द्वितीय भाग, कारोनेशन प्रेस, मैसूर १९६३ ई०

दि ग्रेट एपिव ऑफ इंडिया : हापकिन्स

तिलकमञ्जरी : धनपाल, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९३८ ई०

उदयसुन्दरी कथा : सोड्ढल– सी०डी० दयाल आदि द्वारा सम्पादित १९२० ई०

वृहदारण्यकोपनिषद् : आनन्दाश्रम मुद्रणालय, १९२७ ई०

.C. Majumdar, C. Raychaudhari and Kaliklinkar Datta : An Advanced History of India, London, 1958.

i-Vu-Ki (Tr. by Samuel Beal) vol. I, London, 1906.

iee supplimen to IHQ, March 1929 vol. V.

.I.Krishnamachariar : History of Classical Sanskrit Literature, Madras, 1937.

.N.Das Gupta and S.K. De : A History of Sanskrit Literature, vol. I, University of Calcutta, 1947.

R.Samasastry : Kautilya's Arthasastra, 1915

K.C.Chattopadhyaya : 'The Date of Kalidas' Allahabad University Studies, vol. II (1929).